



ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्रीज्यामभगवान्.



ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री ज्ञानानन्दजी.

प्रस्तावना.



भारतभूनिवासी-सनातन-धर्मके सर्व-प्रेमी-सज्जनोंको त० भग-
वद्भक्तजनको त० ब्रह्मविज्ञानमुक्तिको निमित्त होकि—इस संसारमें
परमात्मदेवने गानविद्याको प्रगटकर जीनोपर बटा भारी उपकार किया
है क्योंकि—इसके प्रतापसे चित्त एकाग्र होकर अपने इष्टदेव परमेश्वरके
ध्यानमें सम्यक् जमजाता है सो गानेमुननेवाले सज्जनलोग जानते
ही होंगे परंतु ऐसी उत्तम संगीतविद्याके व्याजसे सर्व दुःखोंकी अत्यंत
निवृत्तिपूर्वक परमानंदविर्भावलक्षण—मोक्षका साधन ब्रह्ममेव ज्ञान त०
ताका भेद, त० ताके बहिर्ग अंतर्ग साधनोंका भेद मोक्षकारण
मामर्गमें गुरुर्दक्षभक्तिकी प्रधानता; भक्तिका स्वरूप; तत्साधन—प्रेमका
स्वरूप त० आसद, सज्जनदुर्जनलक्षण; सत्यंगमहिमा; दुर्गुणनिंदाद्वारा
दुर्गुणीजनोंका संग त्याग; सगुणनिर्गुणउपाननाके भेद; न० तामें प्रमा-
णोपन्यास; रामकृष्णादि अवतारोंकी ईश्वरतामें युक्तिमहित—प्रमाणोप-
न्यासपूर्वक—तत्परिवर्णन; तामें रहस्यका प्रकटीकरण; ईश्वर—प्रार्थना,
देवामुरमपत्ति; तीन गुणोंमें वंशनकारिता, गुणानिक्रमणोपाय, गुणातीत,
तत्क्षण त० आचार; साधनसहितजीवमुक्ति त० विदेहमुक्तिका स्वरूप;
अवाच्य निश्चित; इत्यादि अनेकप्रकारेण पदपरज्ञानलिनामक ग्रंथमें
दिखाये गये हैं । ता इस ग्रंथके दो भाग हैं, जिनमें प्रथमभाग उपमया

है, औ इस भागमेंभी संस्कृत प्राकृत भाषामें (१४२) पदोंका संग्रह कियागया है । त० सं० प्रा० पद्यबद्ध ग्रंथोंको त० स्तोत्रोकोभी स्थान दियागया है, जिनोके नाम अनुक्रमणिकामें दियेगये हैं । औरभी श्रुति-स्मृतिवाक्य, त० इतिहासपुराणवाक्य, त० वेदातके प्रकरण त० आक्रमणोंके उत्तमोत्तम वाक्य त० प्रा० भाषाके पद्य छांट०२के तिनका संग्रहकरके तिनका भावार्थ तिनकेनिम्न लि० पदोंमें दिखायागया है । और कितनेक पद सं० प्रा० पदोंके ही बनायगये हैं । और कितनेक महान पुरुषोंके रचे हुये पदोंका संग्रहमात्रही कियागया है । तिन पूर्वोक्तग्रंथ त० सं० प्रा० पद्य त० पदोंमें छिष्टशब्दोंका अर्थभी समासव्याससे प्रमाणयुक्ति भूषित करके श्री स्वा० ज्ञा० नें टिप्पणीमें लिखदिया है । किंच प्रथम-भागसे इसभागमें पदपदार्थ त० रागरागणीसी विशेषता है त० प्रथमी उसकी अपेक्षासे बढगया है । सो दोनों भागोंके अनुक्र० द्वारा अवलोकन करनेसे विदित होसकेगा । परंतु इसका संपूर्ण अर्थ त० गंभीराशय तौ ब्रह्मविद्वद्के विना स्वतंत्र समुझमें आवना कठिन है । ऐसे अमूल्य ग्रंथ त० पद्यरत्नखचित मालाको जो सज्जनपुरुष श्रद्धाभक्तिपूर्वक पूरण ज्ञानी गुरुद्वारा परीक्षा करवायके हृदयमें धारण करेगा सो पूरणभक्तिज्ञानको पायके ज्ञानानंद—सिंधुमें मग्न होकर परमपदको प्राप्त होगा इति शम्-

इसग्रंथको श्रीस्वा० ज्ञा० की आज्ञासें जिन सद्गुरुओंने मुद्रित करवाके प्रसिद्ध किया तिनके नाम ये हैं.

१ शेठ वनमालीदास जीवणदास (गोरगांधी),

२ शेठ भवानजी हरीभाई.

३ शेठ त्रिकमदास सिंघजी.

४ शेठ छगनलाल पुरुषोत्तमदास.

यह ग्रंथ विरक्तोंको विनामोल श्रीस्वामी ज्ञा० के पाससें मिलेगा ।
और गृहस्थोंके लिये:—

१ मुंबई माटुंगा ज्ञानेश्वर महादेवाध्यक्ष संस्कृत धर्मब्रह्मविद्यालयमें श्रीस्वा० ज्ञा० केपास.

२ पं० ज्येष्ठाराम मुकुंदजीके पुस्तकालयमें मु० मुंबई जवेरवाग.

३ भ० छगनलाल पुरुषोत्तमदास इष्टेष्टोकर ठे० माधववाग
ट्रामरस्तेपर घर नं० ३१

४ कच्छमांडवीमें श्रीस्वा० सुखात्मानदर्जा हरिगिरिजी ठे० खत्री-
चकलेमें स्वकीय वेदान्तश्रवणाश्रममें.

५ कच्छभुजमें स्वा० श्रीज्ञा० ह० की वेदान्तश्रवणाध्ययनशा-
लाके अधिकारी स्वा० सोमेश्वरानंदजी पि० ज्ञा० के पास.

६ कराचीमें भाई ऊधवदास ताराचदकेपास.

७ सिंधसिकारपुरमें भाई ठेकचंद सुंदरदास के पास.

लि० स्वा० श्री ज्ञा० का०

से० भानुराम आनंदराम.

अनुक्रमणिका.



पद्यप्रतीकादि.	पृष्ठांक.	पद्यप्रतीकादि.	पृष्ठांक.
भंगलपद्य ३२ १		सदाशिव रक्षण मार्ग करो० (विभाग) ६८	
हरे सहस्रो दयानिधानदेवा० (दिठो) ६		प्र० श्लोक १५ (शिवप्रार्थना वि०) ६९	
मनुजा कर हरिगुरुपद प्यार० (टोडी) ८		सदाशिव सकृत् सर्व हरो० ... ७२	
भज भगवाना तज अभिमाना० १०		प्र० श्लोक ११ (शिवभजन वि०) ७३	
सृष्टिप्रयोजनाभावप्र० श्लो० त० दोहा १२		सदाशिव शबरमा मन धरो० ... ७६	
वचन शुणो गुरुसामना० ... १३		सदाशिव एकज धियमा धरो० ७८	
गालिकनी मरजीना दोहा १२. १५		सदाशिव वाछापूर्ण करो० ... ८०	
मालिकनी मरजी थई० ... १६		सुसुष्ठु प्रत्यक् पूजन करो० ... ८१	
मालिकनी मरजी घडें० ... १८		शिवमानस पूजा (कृष्णानंदम०) ८३	
वेदउदधिबिन गुरु लखे० ... २१		शिवपडक्षर तथा पंचाक्षरस्तोत्र ८६	
नरदेह मल्यो भाग्य योग भाई० २२		महादेवकी आराधिका- (सायका०) ८८	
प्रमाणिक श्लोक १४ वैराग्यवि० २४		आचार्य पुष्पाजलि- (सायं०) ... ९१	
हुं वल्लेहारि निर्वेदनी० २६		श्रीगोविंदनामध्वनि ९३	
सदिप्पण वेदातसार मूल (स्वा० शंकरा- चार्य) द्वि० (स्वा० ज्ञानानंद) २८		मुखकर एक गुरुचा सग इत्यादि- विश्वदुष्टकिके पद १७ तथा अभग महाराष्ट्र भाषामे ९५	
प्र० श्लोक ११ तथा० दोहा (तीप्र११ वैराग्यविषे०) ... ५३		लघुसाम सुबोधनमे पद्य ७६... ११३	
हुं बलिहारी वैराग्यनी० ... ५५		शक्र एरुहिं सद्गुरुसग० (नट) १२५	
साम समाहित सतको० (दोहा २०) ५८		प्र० सप्रह (बुद्धिरूप नारीको शिक्षा) १२७	
ज्ञानिजनवाग्म्य विचारोरे० (काव्यो) ६१		बनिते अंगविभूषण धार० (टोडी) १२७	
प्रमाणिक श्लोक २८ शिवस्तुतिवि० ६३		बिनुसमता सुप्रहानी जगम० (भंगलताल ३) १२९	

पदप्रतीकादि. पृष्ठांक.
 निजघरमें अविनाशी शोधो० १३१
 सूत्र तथा धुतिवाक्य (पंचकोश०) १३३
 मुनोचनुरपंछो समयानी (लावणी) १३३
 जोबिचारिजीवतारिनार क्याभमे० १३५
 रामचंद्र० ३जी कृष्णचंद्र० ३जी १३६
 हे उमाधिकास दासपाशनें हरो० १३७
 समस्तलोक शंकर उमामि सहस्रम्० १३९
 श्लोक १८ तथा दोहा २८- तिनमें
 (सज्जनप्रशसा हुज्जननिदा०) १४०
 मुक्तिद्वार सतसग सर्वदा सजो० १४५
 श्लोक ६ तथा दोहा १ रामनामम० १४६
 सर्व कामधाम रामनाम लीजिये० १४६
 मोक्षधाम काम रामनाम भीधरो० १५०
 अध्यात्म रामायणके श्लोक १४
 (वाल्मीकिरामसवाद) ... १५३
 गुलसीरामायणके दोहा चोपाइ १५५
 मुनिवर करिये पुननिवास. (टोडी) १६१
 रघुवर करिये अन्न निवास० ... १६२
 कर हरि सखन हृदय निवेत० १६४
 कर हरिमुनिजनमनसि निवास० १६६
 रमाधर कष्ट निवारो परो० १६८
 श्लोक ३३ टिप्पणी समेत
 तिनमें (श्रीकृष्णस्तुति०) ... १६९
 गोविंदाष्टक (स्वा० शंकराचार्य०) १७७
 गोविंदाष्टक लघुव्याख्या-
 (स्वा० ज्ञानानंद गिरि०) १७९

पदप्रतीकादि. पृष्ठांक.
 सर्वेश केशव कृष्ण श्रीगोपालमु-
 भरनसार है० (लावणी) १८८
 भज प्रेमपूरण भारधी श्री० १८९
 गुणधाम सुंदरदयाम आतम-
 काम सुमरो श्रीहरि० ... १९१
 गुणवंत श्रीभगवंत सेवत सत० १९२
 हरि सत्य ज्ञानागत सब जग-
 कल्पनाआधार है० ... १९३
 हरिप्रज्ञमें नहि भेद कछु इम० १९५
 असुरागपर है प्रेमपदपर अर्थ० १९६
 है आकृष्टहि वेद कदै जो० ... १९८
 इकप्रीतहीं कर्तव्य है पर कहा-
 करणी चाहिये० ... २००
 अब देख निपुण विचारसे मन० २०२
 भूमाहि सुख है वेदमें गुरकृपिहि० २०४
 सबमें हमेहि विराजते परकाश० २०७
 सर्वज्ञप्रेरक बिभु सुना हे० ... २०८
 क्या जीताहीं समजत होगे० २१०
 गुनलो सुनावे क्या एक मह० २११
 यह प्रेमकाहि स्वभाव है सो जानता-
 जाकों लगे० ... २१३
 सोरठा तथा दोहा (भेदहृष्टिनिदा) २१५
 क्या तनुको मलमल धोता है० २१६
 दृश्य खेहनिपेधक श्लोक० त० सूत्र-
 त० दोहा ६ ... २१८
 सरकार परिणाम ताप दुख० २१९

पद्यप्रतीकादि. पृष्ठांक.
 रसकों चले ओ रसिक कहते० २२१
 बैठ इकंतमें समझ सोचले०... २२२
 निजदेहके निर्वाहकीभी-
 संताचिता नाकरे० ... २२५
 संचित नशे सब ज्ञानसें क्रियमाण० २२८
 नद्वेष्टि संप्रवृत्तानि इ० श्लो० ९. २२९
 प्रारब्धके वैचित्र्यसें नहि नियम० २३१
 श्लोक ५ (ज्ञानीका महत्त्वसू०) २३४
 है कर्मगति अति कठिन बहुनर-
 ज्ञानकी निंदा करै० ... २३५
 जे मोते हैं सविष तेहि ध्रुव०... २३७
 संतनकी सेवा सुखदायक० ... २३९
 सर्वत्र चेतन ध्येय है ध्याता-
 चिदाभासहि सदा ... २४०
 निर्गुणोपासनाके श्लोक १५ टि० २४२
 आयुः क्षणलवमानं० श्लोक० २... २४४
 जनते जगमें जियरा जमाया (ध०) २४४
 शुद्ध शरण हरण सत्तार हैरे० (रा०) २४६
 म्यात्मनिष्पणके आर्याष्टद० ५... २४७
 कारणपंचक्रेरापिनाशविषेक० ... २४८
 चिह्नन आत्मदेव समारो० (स०) २५०
 नर तव अवगर्भव्यपं वयो० आ० २५२
 संतो अचरजपात कहाई० (ध०) २५३
 अथ तो मनवा मेरा० इ० पद २. २५५
 कुमंतमं रामहिं राखन हारा० (ध०) २५८
 नारायणनं नाटक रचकर० (ध०) २६०

पद्यप्रतीकादि. पृष्ठांक.
 नारायण करुणा विन किसनें० २६१
 संतो श्रौतविचारहिं करिये० (ध०) २६३
 सतसंग जगतमें सार है रे० (रा०) २६५
 नारायणमय ज्ञान चराचर० (मं०) २६६
 दोहा १२ (मुक्तिसाधनदुर्लभता) २६८
 परब्रह्मपद अति कठिनसाधन० २७०
 गुरुमुख ध्रुवण कर महावाक्य० २७२
 शिवरूप आत्मदेव सेवत
 शुद्धता पावे मति० ... २७६
 अशुचिमें शुचितामतिकरलई० २७८
 ध्रुव है अविद्या चतुरपर्वा० (ला०) २८०
 रे जीवजाग्रहि इ० श्लोक ८ ... २८२
 जाग जाग जन जाग तूं० इ० दो० ७. २८३
 जागजाग जन मोहनीदत्त-
 इत्यादि प्रमाति० ६ ... २८४
 सत्त्वं ज्ञानमनेतं ब्रह्म हिं० (मं) २९३
 मन एव मनुष्याणा इ० श्लोक० ७. २९५
 विगुमात्म दर्शन० इ० दो० १३. २९६
 मनकारका संसार शूद्र वि० २९८
 संतारेच महापोरे इ० श्लोक ५... २९९
 भुतिसार आपत्तिगार जगमें० ... ३००
 शिवंकर गुह्यतर भवभय हरे (वि०) ३०१
 दोहा १२ तथा श्लोक० २१ ;
 (सर्वोत्तम सिद्धांत) ... ३०३
 नहि रह्य है गुप्तविद्या किंचित० ३०८

पद्यप्रतीकादि. पृष्ठांक.
 विनयानके साधक कवन-जगका० ३१०
 आत्माके स्वप्रकाशतादिक
 धर्मप्रदर्शक श्लोक १७ ... ३११
 अपना स्वरूप अखंडचिह्न
 जान मान मिलायके (ला०) ३१४
 सब वेदशास्त्रोंकी अद्वैतपरता-
 प्रदर्शक श्लोक० ९ ... ३१५
 सतो वेद अखंड लखाई० (ध०) ३१७
 संतो भेद तजत मुख पाई० ... ३१९
 करमिध्यातनअभिमाना० (फाफी) ३२१
 दूजा कर्ता कवन भुवनमें०-(रा०) ३२२
 जगमें कर्ता हता एपसृपाहकार है० ३२३
 अहंकारक्ष तादात्म्य० ३०-
 श्लोक ५ त० दो० ३ ... ३२४
 जीता जगतमें एक क्षानी०-(ला०) ३२५
 आत्मौपम्येन सर्वत्र ३० प्र० स० ३२७
 पूजा अनेकप्रकार आगमज ३२८
 श्लोक० ५ (विष्णुवैके लक्षण०) ३३०
 हरिदासपूरा सोइ जो हरिवचन-
 नहि लेवे कदा० (लावणी) ३३०
 भजिये सदा भगवान तन अभि० ३३३
 सो साधु जो आकाश धोकर
 क्षीर पीयनहार है० ... ३३४
 सच्चित्सुख निजरूप न समुदा
 क्या तुम योग कमाते हो. . ३३६
 प्र० श्लोक ३ (राजयोग०) ... ३३७

पद्यप्रतीकादि पृष्ठांक.
 जन क्या ते योग कमाया० (फाफी) ३३८
 (ब्रह्मानंदप्रदर्शक) प्र० श्लोक ६. ३३९
 परानंद धनरूप आपनो० (ला०) ३४०
 निर्वाण पारावार भूमानंद-
 चिद्विद्वान है ... ३४३
 अनुभूतिविंदु सौख्यसिन्धु-
 तत्र मन्त्रनमानसे .. ३४५
 श्लोक ३ (जीवन्मुक्तविहारप्र०) ३४७
 हरिगुण श्यामचरण रजचूमत० ३४९
 श्रीहरि सहस्रश्याम कृपावल० ३४९
 बिना समुदा भूदनका झगरा० ३५१
 संस्कृत पद० (ब्रह्मात्म-
 वस्तुदर्शनोपाय प्र०) ... ३५३
 संस्कृत पद० (इंद्रियाणि पराणि०) ३५४
 (आत्मानुसंधान वि० प० प्र०) ३५५
 स० पद० (शैलपौवैपसद्भावा०) ३५६
 मालिकने मत्प्राविनाजीवपणू नव० ३५६
 कवन तुमें हम हे परदेशी (ला०) ३५७
 स० पद० (मन्मना भव०) . ३५८
 सदानंद श्रीकृष्णभजो० (लावणी) ३५९
 शुद्धसत्त्वविसारी सदाशिव० (वि०) ३६०
 तत्त्वज्ञ संसृतिजाल० प्र० प० ३६२
 परमानंद प्रमोदकी० (गोपीचंद०) ३६५
 स० पद० (परमपद विजिलै०) ३६६
 प्रथमनासिके पद्य १० कापद ३६७

शुद्धिपत्रं



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२	सामेंदु	श्यामेंदु
०	६	साम	श्याम
५	४	शश्रूषु	शुश्रूषु
१८	८	वत्तैते	वत्तैते
३६	११	यथार्थ	यथार्थ
३७	१३	पिशाची	पिशाच्या
५६	१३	हूडामाकाउ	ऊडामाकाऊ
५८	५	०	पद १०॥
६८	४	परो	परो ॥ स०
६९	८	॥ १५ ॥	स० ॥ १५ ॥
०	९	॥ १६ ॥	स० ॥ १६ ॥
७५	२	क्षते	क्षेते
११८	११	श्रोतिय	श्रोत्रिय
१२८	३	सोदर देखे	वधुतनयलघु
०	६	प्रशाति	प्रशातिग
१३६	२	॥ ८ ॥	जो० ॥ ८ ॥
०	३	॥ ९ ॥	जो० ॥ ९ ॥
०	५	॥ १० ॥	जो० ॥ १० ॥
१४१	१०	मन्य	मनन्य
१५२	१	वर्णवे	वर्णवे
१६३	६	घर	कर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७८	१०	उपदानु	उपादानु
१९३	४	रहेहैं	रहेहैं
१९९	६	कहूं	कतहूं
२०५	७	ध्रुव	ध्रुव
२०६	८	सलक	सकल
२०८	१३	यामें कहें	यौना लहें
२१०	१	तहा	तहाँ
२१६	३	तनुको	तनुकों
२१८	१	प्रारब्धके	प्रारब्धोंके
२१९	११	कार्य है । सुक्ष्म	कार्यअहै । सूक्ष्म
२२२	७	हैं	हैं ॥
२२३	१२	॥ है	है ॥
२३३	३	॥	प्रा० ॥
०	४	हैदर्श	करदर्श
२३४	४	हमहै	इमहै
२३८	९	प्रारब्धके	प्रारब्धनके
२३९	४	प्रारब्धके	प्रारब्धनके
२४०	२	॥	संत ॥
२४२	१	बनात	बनात
२५०	९	॥	चि० ॥
०	१२	गुणियें	गुणियें
२५१	६	॥	चि० ॥
२६९	१५	रग	रंग
२७६	१४	जयगा	जायगा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८४	११	भवति चेत्	यदि भवेत्
०	१२	भवतिचेत्	यदिभवेत्
२८५	४	जलताजावे	धूल मिलावे
२८७	१४	०	अ०
३०७	१४	सप	सर्प
३१८	२	गोप्प	शुप्त
३३३	३	तनभान	तन
३३९	१५	सुधा	सिता
३५४	७	लिंगं	लिंग
०	१४	दात्मक	दात्मकं
३५६	६	प्रमय	प्रम
३६८	६	भवेद्यदि	भवत्येव

टिप्पणीका शुद्धिपत्र.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	१	कवेन	कनेन
१२४	१	है	भयाहै
०	०	जिसमें	जिसमेंसे
१३३	१	जेतुगारे	ये जुमारे
१३७	१	मारा	हुं
१४८	३	“बलीनि	बली“नि
१४९	८	तेने	तेना
१५२	२	विभाग	विभाग करि
०	८	सम्बनोना	सम्बनोनो

हृद.	संखि.	हृद.	अष्टक.
१५३	१	दिगन्त	दिगन्त
१०२	२	मेरु	मेरुनिग
१०६	३	अर्धरिच्छ	विशिष्ट
"	४	भवि	भव
१८०	१	ममयो	ममयो
१८५	८	होनर्तु	होनर्तु
१९९	१	मयर्	मयर्
२३१	१	बर्मेरिधित	बर्मेरी रिधितपाठे
"	५	हर्षण	अर्धण
२३२	२	दापो	दापोः
"	६	देहे	देही
"	७	मगरमे	मरमे
२३३	३	मुगीरः	मुगीरः
२३४	५	छरु	छरु
२४३	१६	नाग्या	नाग्या
२२७	१	मिर्द	मिर्द
२३१	४	नाभिष	नाभिष

दोहा

विघन हरन सब-सुख करन, सुर नर कर कल्याण ।
वंदों गुरु गोविंद पद, दान विरति विज्ञान ॥ १ ॥

(त्रिभंगी छंद)

निजसुख परकाशी, योगाम्यासी दानसुधासी अघनाशी ।
है रिघसिध दासी सत्यप्रकाशी द्वंद्वविनाशी सुखराशी ॥
चरननमें काशी तीरथराशी पाश निरासी पापहरम् ।
गुरुज्ञानानंद आनंदकंद ज्ञानदान भवमुक्तकरम् ॥ २ ॥
न्यायनमें मत्ता कणभुक्नत्ता जगहितचाता अतिदाता ।
सांख्य व्याख्याता कापिलगाता कीरगवाता विख्याता ।
वेदांत सुमत्ता व्याससमत्ता ज्ञाता भूमानंदभरम् ॥ गुरु० ३ ॥
श्रोताहितचंड घोषप्रचंड मारविखंड वरिचंडम् ।
विद्याकरफंड शुद्धमखंड देतमदंड लेदंडम् ॥
शिवमतिकरशुंड अघहरतुंड घोषमखंड शमितपरम् ॥ गुरु० ४ ॥
माया अलबेली नारनबेली यौवनगेली दुखबेली ।
ले संगसहेली जगमें फेली करत सुकेली नभगेली ॥
मिथ्या-पथखेली बुद्धि नशेली तासविनाशन दानधरम् ॥ गुरु० ५ ॥
आकाशपताल जगज्ञज्ञाल शिरपरकाल विकरालम् ।
ताकरचेहाल ठालेठाल भर्मभराल तमसालम् ॥
तासैं रखवाल परमदयाल कविजयमाल शरणधरम् ॥ गुरु० ६ ॥

दोहा-मवअटवी भटकत रह्यो, ज्यों तैलीको घेल ।
 सुखपर पायो सहजमें, कीन कृपा जिसवेल ॥ ७ ॥

कवित्त

भक्तन उगारी सुरलोगको सुधारी काज ।
 कैसें रघुवीर विन रावण मरीशके ॥
 सीया सुध पाई निशिचरकों संहार कर ।
 विना हनुमंत नाहिन लंका जरीशके ॥
 सरल स्वभावहुंसें अतिदी निःशंक होके ।
 अगमन विन कीन पान अन्धी करीशके ॥
 तैमें जयमाल महामोह अंधकार भार ।
 ज्ञानानंद बोधहंस विन को हरिशके ॥ ८ ॥
 दोलत दियाना मान मतमें मनेंग गाई ।
 हुए अनिचारी पदे धर्मधन दरनों ॥
 जारी दुराचारी भारी कर्मको बरगारी और ।
 अन्यकी सुचारी करी पेट पटे भरनों ॥
 हरिगुन गावे नही जागे नही भंतसिग ।
 पावे नही मोई कपी नरकहुंमें तरनों ॥
 मोई पाई दर्शनको नगमें मिथाय जेरु ।
 तेने जयमाल ज्ञानानंदहुंको जगनों ॥ ९ ॥

काहुकों आधार है अमीर चादशाहनको ।
 काहुकों आधार नरपति नेहचंदको ॥
 काहुकों आधार अहे शेठ शाहुकारनको ।
 काहुकों आधार है कमाऊ निजनंदको ॥
 काहुकों आधार अहै ग्रामग्रास वासहुंको ।
 काहुकों आधार अहै गानविद्या छंदको ॥
 दीनके दयाल प्रतिपाल जयमाल कहे ।
 मेरे तो आधार एक गुरुज्ञानानंदको ॥ १० ॥

शिखरणीछंदः

अहो शास्त्रं शास्त्रात्किमिह यदि न श्रीगुरुकृपा ।
 चिता सा किं कुर्यान्ननु यदि न बोधस्य विभवः ॥
 किमालम्ब्यश्चासौ न यदि परतत्त्वं भमं तथा ।
 नमः स्वस्मै तस्मै यदवधिरिहाश्चर्यधिपणा ॥ १ ॥
 यदालोकादन्तर्वहिरपि च लोको वितिभिरो ।
 न मंजूया यस्य त्रिजगति न शाणो न च खनिः ॥
 यतंते चैकांतं रहसि यतयो यत्प्रणयिनो ।
 नमस्तस्मै स्वस्मै निखिल-निगमोत्तंसमणये ॥ २ ॥



तत्सत्परमात्मने नमः

अथ पद्यरत्नावल्याः ।

द्वितीयो भागः

तत्रतावन्मंगलपद्यानि

अखण्डसच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम् ॥

आत्मानमखिलाधारमाश्रयेमोहनुत्तये ॥ १ ॥

मंगलं दिशतु मे शिवासुतो

मंगलं दिशतु मे शिवापतिः ।

मंगलं दिशतु मे सरस्वती

मंगलं दिशतु मे रमापतिः ।

मंगलं दिशतु मे दिवापति-

मंगलं दिशतु मेऽजसागुरुः ॥ २ ॥

अगंजाननपद्मार्क, गजाननमहर्निशम् ।

अनेकदन्तं भक्तानामेकदन्तमहं भजे ॥ ३ ॥

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा, व्याजाद्वलिं बध्नाता ।

स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं, शेषेण धर्तुं धराम् ॥

पार्वत्या महिषासुरप्रमथने, सिद्धाधिपैः सिद्ध्ये ।

ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात्सनागाननः ४

शारदा शारदांभोज-वदना वदनाम्बुजे ।

सर्वदा सर्वदाऽस्माकं, संनिधिं संनिधिं क्रियात् ५

पार्वतीशंकरौ वंदे, भक्तिविज्ञानरूपिणौ ।

याभ्यां विना न जानंति जनाः स्वान्तस्थमीश्वरम्

माधवोमाधवौ वंदे, भक्ताऽभीष्टफलप्रदौ ।

ईशौ परस्परात्मानौ, परस्पर-नुतिप्रियौ ॥ ७ ॥

व्यासं वसिष्ठनसारं, शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।

पराशरात्मजं वन्दे, शुक्तातं तपोनिधिम् ॥ ८ ॥

शंकरः शंकरस्साक्षाद्व्यासो नारायणः स्वयम् ।

सूत्रभाष्यकृतौ वंदे, करुणा-वरुणालयौ ॥ ९ ॥

प्रणौमि संविदाचार्यान्सद्गुरुन्हरिभूधरान् ।
 पर्वतेश्वरसामेन्दु-संज्ञांश्च प्रमितिप्रदान् ॥ १० ॥
 प्रणवस्योपदेष्टारं शांति-दांति-समाश्रयम् ।
 शिष्यसंताप-हन्तारं हरि-सद्गुरुमाश्रये ॥ ११ ॥
 परिपूर्णपरिज्ञान-परितृप्तिमते सते ।
 ब्रह्मविद्याकृतेश्रीमत्सामनामभूतेनमः ॥ १२ ॥
 नगुरोरधिकंनगुरोरधिकं, नगुरो० (४)
 शिवशासनतःशिवशासनतः शिव० (४) ॥ १३ ॥
 हरिरेवगुरुर्गुरुरेव हरिर्हरिरेव जगज्जगदेव हरिः ।
 हरिरेव वयं वयमेव हरिर्नभिदास्तिमनाग्नभिदा-
 स्तिमनाक् ॥ १४ ॥
 ईश्वरोगुरुरात्मेति, मूर्तिभेदाद्विभागिने ।
 व्योमवद्भ्यासदेहाय, दक्षिणामूर्त्तयेनमः ॥ १५ ॥
 यस्यास्ति सद्गुरौ भक्तिः सफलं तस्य जीवितं ।
 यस्य नास्ति गुरौ भक्तिर्विफलं तस्य जीवितम् १६
 गुरवो बहवः संति शिष्यवित्तापहारकाः ।

दुर्लभा गुरवः संति, शिष्यहृत्तापहारकाः ॥ १७ ॥

संस्कृतैः प्राकृतैश्चैव, गद्यपद्याक्षरैस्तथा ।

शिष्याय देशभाषाभिर्वोधयेत्स गुरुः स्मृतः ॥ १८ ॥

परमाद्वैतविज्ञानं, दययैव देदाति यः ।

सोऽयंगुरु-गुरुःसाक्षाच्छिवएव न संशयः ॥ १९ ॥

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यंतु, माकश्चिदुःखभागभवेत् ॥ २० ॥

दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन चित् ।

सर्वेन्द्रियोपशांत्या च तुष्येदाशु जनार्दनः ॥ २१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र दयां कुर्वति साधवः ।

प्राणायथात्मनोऽभीष्टा देहिनामपि ते तथा ॥ २२ ॥

यदीच्छसि बलीकर्तुं, जगदेकैककर्मणा ।

परापवाद-सत्येभ्यो गां चरंतीं निवारय ॥ २३ ॥

शांतेः समं तपो नास्ति, संतोषान्नपरं सुखम् ।

न तृष्णायाः परोव्याधिर्न च धर्मो दयापरः ॥ २४ ॥

मात्रा-समं नास्ति शरीर-पोषणं, भार्यासमं नास्ति

शरीरतोषणम् ॥ चिन्ता-समं नास्ति शरीर-
 शोषणं, विद्यासमं नास्ति शरीर-भूषणम् ॥ २५ ॥
 यथा खनन्खनित्रेण, नरो वार्यधिगच्छति ॥ तथा
 गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ २६ ॥ क्षमा
 दया सत्यमुदारभावोऽसंगो विरागः समता प्र-
 बोधः ॥ एते गुणा यस्य हरेः सखाऽसौ, शीले
 समानेहि वदन्ति सख्यम् ॥ २७ ॥ सस्नातः सर्व-
 तीर्थेषु, सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ स च दानफलं
 प्राप्नोति यस्तु संकीर्तयेद्धरिम् ॥ २८ ॥ हरिर्हरति
 पापानि, दुष्टचित्तेरपि स्मृतः ॥ अनिच्छयापि
 संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥ २९ ॥ यदीच्छसि
 परं ज्ञानं, ज्ञानाच्च परमं पदम् ॥ तदादरेण स-
 ङ्गत्तया कुरु श्रीहरिकीर्तनम् ॥ ३० ॥ आनन्दमूल-
 गुणपल्लवतत्त्वशाखं, वेदांतपुष्पफलमोक्षरसाधि-
 पूर्णं ॥ चेतो-विहंगहरितुंगतरुं विहाय, संसार-
 शुष्कविटपे वद किं रतोसि ॥ ३१ ॥ सर्वदा सर्व-

कार्येषु, नास्ति तेषाममंगलम् ॥ येषां हृदिस्थो
भगवान्मंगलायतनो हरिः ॥ ३२ ॥

॥ दिंडी ॥

हरे सद्गुरो दयानिधान देवा । दिजें प्रेम-ने-
म-पाद-कंज-सेवा ॥ आप देशकालवस्तुथी अ-
पार । निराकार निराधार निर्विकार ॥ १ ॥
नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त अंजनाशी । सदाकार चि-
दाकार स्वप्रकाशी ॥ मनोधीगिरा-अगम्य तद्वि-
भासी । नित्य-आनंद-स्वरूप अविनाशी ॥ २ ॥
आप सर्वना आधार सर्ववासी । जगत-यंत्रने
चलावतां उदासी ॥ पुण्यपुंज-लोक-भावनानु-
सारी । गुणातीत गुणागार देहधारी ॥ ३ ॥ भे-
द-खेद-छेद-वेद-वागुचारी । भक्तलोक-शोक-मू-
ढता निवारी ॥ हृदाकाशमां प्रकाशता तमारि ।
स्वान्त-ध्वान्तहा नितान्त-भ्रान्ततारि ॥ ४ ॥ कर-
जोडिने मागुं छुं तम पास । आलो सर्वनें आ-

नंद अविनाश ॥ सर्वदोष-कोश हुंज देह मारो ।
 ए अंध्यास द्वैत भासधी निवारो ॥ ५ ॥ मनो-
 नाश त्रिधावासना सँहारो । शवाकार-शिवाका-
 रता सँवारो ॥ विषय-आशपाशरोपमोपकारी ।
 श्रेयअंतराय जाय माय मारी ॥ ६ ॥ त्रिधाताप
 हरो पाप पुण्यराशि । विषयकाम तज्जभाम भू-
 निरासि ॥ मारुं देणलेण आपनि संघाते । आलि
 कूडगृहुंसाचसौख्यदाते ॥ ७ ॥ गुरो दुर्गुणी-भं-
 डार तूल बालो । प्रभो सद्गुणीभंडारतालि आलो ॥
 सिंचो सत्य वाचि शांति धी-मजारि । ज्ञाना-
 नंद-प्रतिबन्धकापहारि ॥ ८ ॥ पद ॥ १ ॥

॥ श्लोक ॥

सद्गुरुं भज सद्गुरुं भज सद्गुरुं भज बुद्धिमन् ।
 येन संसृतिपारमेज्यसि मुक्त इत्यपि ग्रास्यसे ॥
 आसुरीं त्यजसंपदं विपदां पदं मुनिगर्हितां ।
 तर्हि तां भज संपदं मुनि-संस्तुतां भगवत्प्रियाम् ॥ १ ॥

गर्व-पर्वत-मस्तके तव संस्थितिर्नहि शोभते ।
 पातमेप्यसि घातकर्मणि युज्यसे न तु पूज्यसे ॥
 तात्त्विकं फलमश्रुषे यदि सत्यवृत्तपरायणो,
 दनुजसूतुरिवामरद्रुमगर्हणं भगवत्पदम् ॥ २ ॥

॥ पद राग ढोड़ी ॥

मनुजा कर हरिगुरुपद प्यार ॥ टेक ॥ श्रीस-
 द्गुरु विन कवन निवारे, जन्ममरण करधार ॥
 म० ॥ १ ॥ रोग प्रवलतर हरत शरीरं, मनसि त-
 पावन मार ॥ मृत्युर्नृत्यति कलयन्दिवसान्, श्वा-
 सरत्न अपहार ॥ म० ॥ २ ॥ क्षणपरिणामी देह
 विनाशे, ताकर गर्व निवार ॥ मन-मर्कट विष-
 यारण भटकत, धर कंरसदन मजार ॥ म० ॥ ३ ॥
 लक्ष्मी तोय-तरंग मजारी, भानु-किरन-चम-
 कार ॥ यौवन-शोभा सुमन-समाना, नशत न
 लागे वार ॥ म० ॥ ४ ॥ कामादिक-रिपु-संग
 प्रवलतर, निवल-शमादिकहार ॥ कृष्णकृपाकर

निवल प्रवल जिम, पृथापुत्र जयकार ॥ म० ॥ ५ ॥
 धर्मक्षेत्रकुरुक्षेत्रशरीरे, देवासुर मिलितार ॥ सं-
 ग्रहारभुवि जय देवनकर, नर-सहकार मुरार ॥
 म० ॥ ६ ॥ दीनो दैव दयाकर पुष्कल, मुक्ति-
 क-साधनसार ॥ न नरकाय नरकाय विभावय,
 साज शिवाय सँवार ॥ म० ॥ ७ ॥ सत्यं वद
 चर धर्म सनातन, क्षमा-दया दिल धार ॥ हरि
 श्रंभ्रमुख सतव्रतधारी, जन-प्रल्हाद निहार ॥
 म० ॥ ८ ॥ देवीसंपत्संपत्कारी, मुक्तिद हरि-
 उच्चार ॥ अशुच-आसुरी-संपत्सारी, विपदागार
 विदार ॥ म० ॥ ९ ॥ सत्यशौचकरुणा नहि जामें,
 सो राक्षस आकार ॥ धर्म-सनातन-पथ-परिपंथी,
 तनमदगिर शिर भार ॥ म० ॥ १० ॥ गर्वगुमानी
 सारे हारे, देवासुर-सरदार ॥ किन गिनतीमें
 मनुज विचारे, अल्पायुर्वलवार ॥ म० ॥ ११ ॥
 असुर-स्वभाव न जवलग जावे, वृथा सकल-उ-

पचार ॥ शुद्धाशयमें ज्ञानप्रकाशे, भासे ब्रह्मा-
कार ॥ भ० ॥ १२ ॥ पद ॥ २ ॥

॥ पद राग समयानुसार ॥

भज भगवाना तज अभिमाना, गुरुगम युक्ति
मिलाइ रे ॥ शंकर-परउपकार बनेतो, साची सोइ
कसाइ रे ॥ भज० ॥ टेक ॥ यथा देहमें प्रीत घ-
नेरी, तथा पृथाजर पाइ रे ॥ प्रीत यथा परमेश्वर
पदमें, गुरुपद तत अधिकाइ रे ॥ भ० ॥ १ ॥
ईश्वर एक अनेकरूप धर, नाम अनंत धराइ रे ॥
पृथक् नाममहिमा सुन मनवा, पावत नहि स्थिर-
ताइ रे ॥ भ० ॥ २ ॥ जब सहस्ररुकरशरनहिं जावे, स-
मज मर्म भ्रम जाइ रे ॥ गुरुज्ञानी मुखमंत्र मिलत
नित, जाप पाप परलाइ रे ॥ भ० ॥ ३ ॥ येनकेन
वा यस्य कस्य अपि, चित्तप्रसन्न कराइ रे ॥ परउप-
कार असल शिवसेवा, सवघट ईश्वर आइ रे ॥ भ०

॥ ४ ॥ अगजगसत्ता भानसमाना, है पूरन प्रिय-
ताइ रे ॥ सुप्रिय वचन सुनत जनसारे, हुइ प्रसन्न
मनमांइ रे ॥ भ० ॥ ५ ॥ तार्ते हितमित सत्यमधु-
रव, वदत न निर्धनताइ रे ॥ अप्रियवचन दारि-
द्रसरल जन, होनहार विरलाइ रे ॥ भ० ॥ ६ ॥ ख-
लरव हालाहल कर पाना, अमृतवचन सुनाइ रे ॥
निजमुख-चंद्रप्रसन्न दिखावन, सोवी सबसुख-
दाइ रे ॥ भ० ॥ ७ ॥ मनसावाचा कायकरनकर,
कबी किसे न दुखाइ रे ॥ एषअहिंसा शास्त्रभनत-
यमजननी सब समताइ रे ॥ भ० ॥ ८ ॥ मातपिता
गुरुदेव निसेवन, गोब्राह्मण शिरनाइ रे ॥ दीन-
नकों दीजे कलु दाना, अशनवसन वर्षाइ रे ॥ भ०
॥ ९ ॥ जोतुं दाना है मरदाना, कर सब साज
सवाइ रे ॥ मनिओर्डरकर भेजसदा, परलो-
कविपे मिलजाइ रे ॥ भ० ॥ १० ॥ तनअभि-
माना जन्मखजाना, दोषकोश भटकाइ रे ॥

मोक्षपथप्रतिबंध प्रवलरिपु, ज्ञानानल जलजाइ रे
॥ भज० ॥ ११ ॥ पद ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

किं निमित्तेश्वरस्येयं, सृष्टिर्नोभोगसिद्धये ॥
साक्षिचिन्मात्र-रूपत्वान्नोक्तृत्वं नास्तितस्यैव ॥ १ ॥
अतएव न मोक्षार्था, बन्धाभावतये शिलुः ॥
न वाप्यन्योस्ति भोक्ताऽत्र, तदन्यत्रास्ति चेतनम् २
जीवरूपेण तस्यैव, सर्वत्र स्थित-भावतः ॥
अचितो नास्ति भोक्तृत्वमित्याद्यनुपपत्तितः ॥ ३ ॥
सृष्टेर्मायामयत्वं ये, साधयंतोऽत्र वादिनः ॥
प्रतिकूला न चास्माकं, निराकार्या न ते किल ॥ ४ ॥
मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥
न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ॥
न मुमुक्षुर्न वैमुक्त, इत्येवापरमार्थता ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥

मालिककी मरजी भई, एकोऽहं बहुस्याम ।

आत्मदेव-स्वभाव अस, आसकाम क्याकाम ॥१॥
 मालिककी मरजी भई, फोकट कीन फजीत ।
 उदाहरण इह आपको, सुपनसृष्टिकी रीत ॥ २॥
 मालिककी मरजी भई, आपउठाई वेठ ।
 अमितारोपी आपदा, निर्णय कियो न नेठ ॥ ३॥
 मालिककी मरजी भई, मायाशक्ति पसार ।
 रूपरूपप्रतिरूप न्है, विलसों विविधाकार ॥ ४॥
 मालिककी मरजी भई, धारों वेशविचित्र ।
 स्थिरचरवर्णाश्रम भयो, पटविरचितइव चित्र ॥ ५॥
 मालिककी मरजी भई, फोकट कीनो फंद ।
 वास्तव तत्त्वतपासते, नहि गडबडको गन्ध ॥ ६॥

॥ पद-हुं बलहारि गुरुदेवनी ए ढालमां ॥

वचन शुणो गुरुसामना, निगमागमनो सारजी ॥
 गुरुमुख अर्थविचारतां, संशय सकल निवारजी ॥
 वचन० ॥ टेक ॥ मालिकनी मरजी थई, एकोहं

बहुस्यामजी ॥ नित्यमुक्त परमात्मा, आसकाम
 अकामजी ॥ व० ॥ १ ॥ मालिकनी मरजी थई,
 फोकट कीधी फजीतजी ॥ उदाहरण अत्र आ-
 पनुं, स्वप्नसृष्टिनी रीतजी ॥ व० ॥ २ ॥ मालिकनी
 मरजी थई, आप उठावी वेठजी । अमित आ-
 रोपी आपदा, निर्णय कीधो न नेठजी ॥ व०
 ॥ ३ ॥ मालिकनी मरजी थई, करुं निज-शक्ति
 पसारजी । रूपरूप प्रतिरूप हुं, विलसुं विवि-
 धाकारजी ॥ व० ॥ ४ ॥ मालिकनी मरजी थई,
 धारुं विचित्रित वेशजी । स्थिरचर वर्ण आश्रम
 थयो, पटचित्रित-दरवेसजी ॥ व० ॥ ५ ॥ मालिकनी
 मरजी थई, कीधो फोकट फंदजी । वास्तव तत्त्व
 तपासतां, नहिं गडवडनो गंधजी ॥ व० ॥ ६ ॥
 अघ्यारोप उडावतां, द्वैताद्वैत विलायजी । खो-
 लनहार गमावतां, ज्ञानानंद रहायजी ॥ व० ॥ ७ ॥
 पद ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

मालिककी मरजी भई, सुखी होय संसार ॥
 निम्यों भोगाराम मम, दर्शन अग्रकरार ॥ १ ॥
 मालिक० ॥ प्यारो लगो प्रमाद ॥ बह्मभवस्तु वि-
 सारके, भोगत व्यर्थ विपाद ॥ २ ॥ मा० ॥ स्वयं
 कीन आरोप ॥ स्वयं विमुह्यति शोचति, कवन-
 करे अवलोप ॥ ३ ॥ मा० ॥ स्थानक थाप्यो
 स्थूल ॥ प्रतीकूल अनुकूल वश, शोचत संसृ-
 तिशूल ॥ ४ ॥ मा० ॥ खेल करणके काज ॥
 ममता मेरु उठायके, भयो आप नाराज ॥ ५ ॥
 मा० ॥ प्रत्यय करुपराक ॥ केतिक ऊठी क-
 ल्पना, वरनीशके न वाक ॥ ६ ॥ मा० ॥ कल्पन
 किय आभास ॥ धार धर्मविपरीत-धी, करत न
 तत्त्व तपास ॥ ७ ॥ मा० ॥ घटघट प्रगटे दीप ॥
 तैल अनलवाती बिना, रहे सदैव समीप ॥ ८ ॥
 मा० ॥ कियो तमासो आप ॥ खुसी भयो नहि

खेलमें, प्रत्युत पायो ताप ॥ ९ ॥ मा० ॥ करुं
 निजसुख अनुभूति ॥ आत्मसंस्थ मनकुं कियो,
 विरस विसार विभूति ॥ १० ॥ मा० ॥ करुं
 स्वयं संभार ॥ नेह नानास्ति किंचिदपि, विकल्प
 मात्रविकार ॥ ११ ॥ मा० ॥ करुं असल एकांत ॥
 नेतिनेति निर्धारि नय, कयों ध्वंस द्वयध्वांत ॥ १२ ॥

॥ पद ॥

मालिकनी मरजी थई, करवा असल एकां-
 तजी ॥ प्रथम रचुं संसारनें, अंते शांत नितां-
 तजी ॥ मा० ॥ टेक ॥ सूत्र अव्याकृत नभविपे,
 पंच प्रपंच विस्तारजी ॥ वाग वनाव्यो ब्रह्मांडनो,
 शोभा अपरमपारजी ॥ मा० ॥ १ ॥ सुखदेवां
 संसारनें, मरजीवंत महारायजी ॥ दुखविण सुख
 भासे नहि, दुखहर करसुंडपायजी ॥ मा० ॥ २ ॥
 लक्ष चोराशी घट रच्या, प्रतिघट प्रगट्यो प्रदी-
 पजी ॥ तैल अनल वाती विना, लसतो दीप

संमीपजी ॥ मा० ॥ ३ ॥ दीपाऽऽभासक जीवडा,
 तेमां जे सरदारजी ॥ हुकम थयो ते लोकने,
 मम दर्शन करतारजी ॥ मा० ॥ ४ ॥ पाछल
 भोगो वागने, पामो आनंद अपारजी ॥ हुं
 मारुं करशो नहि, मुक्ति विन तकरारजी ॥
 मा० ॥ ५ ॥ आज्ञा भंगी भंगिया, खासे यम-
 डानि मारजी ॥ ममता-मेरु उपाडतां, पडशे
 केद मजारजी ॥ मा० ॥ ६ ॥ मूढ-मिजासी
 जीवडा, करवा लाग्या प्रमादजी ॥ विष-फल
 लाग्या भोगवा, वर्धन रोग विषादजी ॥ मा० ॥ ७ ॥
 रोगनिवारण कृत करे, गदवर्धक फल खायजी ॥
 लडवा लाग्या लोकशुं, लडतां जीवन जायजी ॥
 मा० ॥ ८ ॥ राजपुरुष पकडी गया, यमदंड
 कारागारजी ॥ रखडि रोलाया रणविपे, कोण
 छोडावनहारजी ॥ मा० ॥ ९ ॥ आज्ञा पालक
 भूपना, सेवि सद्गुरु-पायजी ॥ प्रीत निवारी

भोगनी, करवा दर्शन रायजी ॥ मा० ॥ १० ॥
 तजतां त्रय सोपाननें, चोथे पद सम्राजजी ॥
 अमृत फल भोगावे आ, गोपति गरिव-निवा-
 जजी ॥ मा० ॥ ११ ॥ निज सिंहासन सोंपियुं,
 जीवन्मुक्तिर्क माणजी ॥ निज अधिकार पूरण
 करी, पामो पद निर्वाणजी ॥ मा० ॥ १२ ॥ अ-
 सल एकांत प्रदेश छे, नेति वीप्साऽवसानजी ॥
 यद्वत्त्वाननिवर्तते, जेनुं रूप न नामजी ॥ मा०
 ॥ १३ ॥ काम शमावन श्यामनो, मायिक बचन
 विलासजी ॥ हृद वेहृद परपार छे, ज्ञानानंद-नि-
 वासजी ॥ मा० ॥ १४ ॥ पद ॥ ५ ॥

॥ पद ॥

मालिकनी मरजीवडे, कार्य सिद्ध थनार जी ॥
 निज-कृति कारण तेहमां, इच्छा-मात्र मकार
 जी ॥ मा० ॥ टेक ॥ अशुभ तजि शुभ आवरो,

अर्पो प्रभुपदमांय जी ॥ पडिध-कारक नाथनें,
समजे काम विलाय जी ॥ मा० ॥ १ ॥ निष्का-
मी नर नाथने, प्यारा प्राण-समान जी ॥ का-
मीथी उपराम छे, इच्छा जन्मनिदान जी ॥
मा० ॥ २ ॥ काम न फलदातार छे, फल कृति-
अनुसार जी ॥ आम्नतरूदक सिंचतां, बांछा
विण फलधारजी ॥ मा० ॥ ३ ॥ रोग-प्रमुख
दुख-कामना, कीधा विण भोगाय जी ॥ एम
ज सुख इच्छा विना, आवि प्राप्तज थाय जी ॥
मा० ॥ ४ ॥ तजिये मननी दीनता, भजिये
श्रीभगवान जी ॥ मात गणो परनारनें, परधन
लोष्ट समान जी ॥ मा० ॥ ५ ॥ सत्य संतोष न
छोडिये, तन-मद-मान-निवार जी ॥ गौ ब्राह्मण
संत सेविये, वृद्ध-सेवन सार जी ॥ मा० ॥ ६ ॥
दीन-जनोनुं दुख हरो, करुणा नजर निहार
जी ॥ परनिंदा दुर्वासना, रागद्वेष नकार जी ॥

मा० ॥ ७ ॥ श्रुति अनुशासन शिरधरी, वेदो-
 दित कृतकार जी ॥ सारासारविचारतां, सज्यां
 साधन चार जी ॥ मा० ॥ ८ ॥ शरण गृही गुरु
 देवनुं, पडेओ चरण मजार जी ॥ निगम नगारां
 गडगडे, श्रीसद्गुरु दरवार जी ॥ मा० ॥ ९ ॥
 तत्त्वं सोहं धुन सुनि, सम्यक् सार विचार जी ॥
 सत् चिद् आनंद आत्मा, सोहं ब्रह्माकार जी ॥
 मा० ॥ १० ॥ मालिकनी मरजी फली, शमया
 कोटि तरंग जी ॥ ज्ञानानंद अमृत भर्यो, आ-
 तम अविधि अभंग जी ॥ मा० ॥ ११ ॥ पद ॥६॥

॥ श्लोकः ॥

वेदाब्धौ बहु रत्नाति, मुख्यं तत्र चतुष्टयम् ॥
 ज्ञान विज्ञान वैराग्यं, भक्तिस्तेषां च जन्मभूः ॥१॥
 जलं वारिनिधेः क्षारं मेघद्वाराऽमृतोपमम् ॥
 गुरु-मुखागता विद्या ह्यद्वैतानंदकृत्तथा ॥ २ ॥

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ॥
सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया ॥ ३ ॥

॥ पद ॥

वेद उदधि चिन गुरु लखे, लागे लवण स-
मान जी ॥ वादल गुरु मुखद्वारथी, अमृतथी
अधिकान जी ॥ वे० ॥ टेक ॥ सागररत्न अनेक
छे, तेमां उत्तम चार जी ॥ ज्ञान विज्ञान वैरा-
ग्यनी, माता भक्ति उदार जी ॥ वे० ॥ १ ॥
गुरुमुख सार ए चारनो, समजी धियमां धार जी ॥
लक्षचोरासी फेरो टले, मले आनंद अपार जी
॥ वे० ॥ २ ॥ प्रभुपद पूरण प्रीतडी, भक्ति शुभ-
कृत सार जी ॥ विरसगणे भव भोगनें, ते वै-
राग्य सुधार जी ॥ वे० ॥ ३ ॥ अरति आ नर-
लोकमां, तीव्रविरति कवाय जी ॥ अरति तथा
परलोकमां, तीव्रतर ते गवाय जी ॥ वे० ॥ ४ ॥
श्रवणमननजं ज्ञान छे, निदिध्यासनज-विज्ञान

जी ॥ चिज्जड-भेदक-ज्ञान ते, परमविवेक प्रमान
 जी ॥ वे० ॥ ५ ॥ सर्व खलुपरमातमा, धीविज्ञान
 वदाय जी ॥ अथवा ज्ञान परोक्ष-धी, दृढ अप-
 रोक्ष विज्ञाय जी ॥ वे० ॥ ६ ॥ दृढ अपरोक्ष वि-
 ज्ञानथी, ग्रंथि समूल विलाय जी ॥ मुक्ति कहे
 निगमांतगी, राजे निज-महिमाय जी ॥ वे० ॥
 ॥ ७ ॥ त्यागी रूप बनावटी, स्वस्वरूपे रहाय
 जी ॥ मुक्ति भणे शुकदेवजी, अभिमन्यु-सुताय
 जी ॥ वे० ॥ ८ ॥ शोक विमोह शमेसहि, आवा-
 गमन गमाय जी ॥ मालिकनी मनकामना,
 सगलि सहज शंमाय जी ॥ वे० ॥ ९ ॥ बंध
 विमोक्षण भावना, माया मात्र विलास जी ॥
 औपनिषदपद मापति, ज्ञानानंद निवास जी ॥
 वे० ॥ १० ॥ पद ॥ ७ ॥

॥ दिंडी ॥

नरदेह मल्यो भाग्य-योग भाई । भजो

राम-नाम कामना विहाई ॥ काम क्रोध लोभ
 नरक-प्रदाई । त्याग तेमनो मनोज-तात गाई ॥
 ॥ १ ॥ पांच-विषयो विषोषम जाणो । प्रेम नर-
 क-प्रदायक प्रमाणो ॥ आ छे नाटक न अटको
 एमांहि । मूढ अटके ते भटके सदाहि ॥ २ ॥
 आ-संसार दिवस-चार वाजि खोटी । तेमां
 आश तें पसारि बहु मोटी ॥ बलि देह थशे
 खेह नेह त्यागी । जेमां प्रीतडी प्रबलतर लागी ॥
 ॥ ३ ॥ रमा-गार दार पुत्रने प्रवार । अंतवार
 कष्ट-भार-कार धार ॥ छे असार सार धार भर्म
 भारी । बाल लाल करे पान स्तन्य धारी ॥ ४ ॥
 आ छे मायिक प्रपंच दुःखकारी । गुरुद्वार सार
 धार सौख्यकारी ॥ एमां सद्गुरु-महाराज लाज
 राखे । सर्व-दुर्गुणो समूल बालि नाखे ॥ ५ ॥ भ-
 व-तरण-उपाय गुरु-पाय । ते शिवाय नो शिवाय

नरकाय ॥ ज्ञानवंत-संत-सद्गुरु करीजे । वपुर्विच-
 धी समर्पि शरण लीजे ॥ ६ ॥ भक्तिश्रद्धया
 प्रणाम अष्टअंगी । समित्पाणि प्रेम आणि अंत-
 रंगी ॥ चरण धोई चरणामृत लहिये । गणि
 ईशथी विशेष शीख रहिये ॥ ७ ॥ गुरो कोऽह-
 मस्मि किं जगच्च कोऽसौ । एक एव त्रिधा-रू-
 पकः परोऽसौ ॥ एक-तर्जनी चतावि मौन
 कीधुं । ज्ञानानंद सानमान कार्य सीधुं ॥ ८ ॥

पद ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

वैराग्यान्न परं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मन-
 स्तच्चेच्छुद्धतरात्मबोधसहितं स्वाराज्यसाम्राज्यधुक्
 एतद्द्वारमजस्रमुक्तियुवतेर्यस्मात्त्वमस्मात्परं
 सर्वत्रास्पृहया सदात्मनि सदा प्रज्ञांकुरु श्रेयसे ॥१॥
 वैराग्यबोधो पुरुषस्य पक्षिवत्पक्षो विजानीहि
 विचक्षण त्वम् । विमुक्तिसौधाग्रलताधिरोहणं,

ताभ्यां विना नान्यतरेण सिद्ध्यति ॥ २ ॥
 इह जगति हि सर्व एव जंतुर्निरतिशयं सुखमु-
 त्तमं ममास्तु ॥ उपरमतु तथोपघातरूपं विषय-
 जदुःखमिति स्पृहां करोति ॥ ३ ॥ सुखमस्यात्म-
 नोरूपं, सर्वेहोपरतिस्तनु ॥ यावती २ जन्तो,
 रिच्छोदेति यथा यथा ॥ तावती २ दुःख-
 बीजमुष्टिः प्ररोहति ॥ ४ ॥ सन्त्यन्ये प्रति-
 बन्धाः पुंसः संसारहेतवो दृष्टाः । तेषामेवहि मूलं,
 प्रथमविकारो भवत्यहंकारः ॥ ५ ॥ यस्मिन्व-
 स्तुनि ममता, ममतापस्तत्र तत्रैव । यत्रैवाह-
 मुदासे तत्र मुदासे स्वभावसंतुष्टः ॥ ६ ॥ बंधना-
 नि खलु संति बहूनि, प्रेमबंधनमहं बहुमन्ये ।
 काष्ठभेदनिपुणोपि पडंघ्रिर्निष्क्रियो भवति पंकज-
 कोशे ॥ ७ ॥ रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
 भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः ॥ इत्थं वि-
 चिन्तयति कोशगते द्विरेफे, हा हंतहंत नलिनी

गज उज्जहार ॥ ८ ॥ अहंता ममता सत्ता प्री-
 तिश्चेति चतुष्टयं ॥ मनोहरिणवंधाय, वागुरा
 रूपमीरितम् ॥ ९ ॥ आत्मप्रेम्णि समुत्पन्ने,
 विषयप्रेम नश्यति ॥ योपित्प्रेम्णि समुत्पन्ने,
 मातृप्रेमेव कामिनाम् ॥ १० ॥ ब्रह्म सत्यं जग-
 न्मिथ्या, जीवो ब्रह्मेव केवलं ॥ इतिज्ञानं गुरोर्ल-
 ब्ध्वा मुच्यते बंधनत्रयात् ॥ ११ ॥ जाग्रत्स्वप्न-
 सुषुप्त्यादि-प्रपञ्चं यत्प्रकाशते ॥ तद्ब्रह्माहमिति
 ज्ञात्वा सर्वबंधैः प्रमुच्यते ॥ १२ ॥ संतो-
 यैश्वर्यसुखिनां चिरं विश्रान्तचेतसाम् ॥ सा-
 भ्राज्यमपि शांतानां जरत्तृणलवायते ॥ १३ ॥
 ह्यैरण्यगर्भमैश्वर्यं, यस्मिन्दृष्टे तृणायते ॥ सीमा
 सर्वपुमर्थानां सोहमानंदवारिधिः ॥ १४ ॥

॥ पद ॥

हुं बले हारि निवेदनी, वेदन सहित विरा-
 जजी ॥ भवतरु कापे मूलथी, आपे सुख सा-

आजजी ॥ हुं० टेक ॥ पक्षी ऊडे आकाशमां,
 पक्ष उभय सहायजी ॥ विषय-विराग विज्ञानथी,
 चिदाकाशें चढाय जी ॥ हुं० ॥ १ ॥ तन-मन-
 इंद्रिय वश करी, निर्जन-देश निवासजी ॥ आश
 निरासे भोगनी, आठोय याम उदासजी ॥ हुं०॥२
 पूरणसुख सहुको चहे, दुःखमात्र निरासजी ॥
 जाण अजाण समान छे, मुक्ति-पदनी आशजी
 ॥ हुं० ॥ ३ ॥ साधन सूजं सुजाननें, नहि पामर
 पहिचानजी ॥ तेणे फलविपरीतता, सुख दुख
 जान अजानजी ॥ हुं० ॥ ४ ॥ पामर लखि सुख
 भोग्यमां, वांछा यतन अपारजी ॥ प्रत्युत अधकी
 आपदा, इच्छा शांति न कारजी ॥ हुं० ॥ ५ ॥ सुख
 अभिव्यंजक शान्त धी, ते विण सुख न लगारजी ॥
 कृष्ण कहे कौंतेयने, रागादिक-रिपु मारजी ॥ हुं०॥
 ॥ ६ ॥ सुख-सागर परमात्मा, मानसमीनागा-
 रजी ॥ प्यासें मरे बहु कालथी, ए विभ्रम उपधारजी

॥ हुं० ॥ ७ ॥ बंधन बहुत प्रकारना, प्रेम प्रबंध
 महानजी ॥ दारु-विदारणमां पट्ट, अलि कमल-
 विलानजी ॥ हुं० ॥ ८ ॥ अहं मम सत्ता प्रीतडी,
 बंधनिबंधन चारजी ॥ रौद्र पराचि प्रीतडी, मो-
 दक प्रत्यक प्यारजी ॥ हुं० ॥ ९ ॥ गुरु श्रुति
 ईश प्रसादथी, प्रत्यक्प्रेम वधारजी ॥ प्रत्यक्प्रेम
 वधारतां, प्रीतपराचि पधारजी ॥ हुं० ॥ १० ॥
 ब्रह्म स्वरूप लखि आपने, अहं ममता परिहा-
 रजी ॥ मायिक मिथ्या जग लखि, सत्ता विभ्र-
 मवारजी ॥ हुं० ॥ ११ ॥ ज्ञान विरागी-संतने,
 सेवे मन वच कायजी ॥ ज्ञानानंद-पद पामवा,
 साधन सहज संधायजी ॥ हुं० ॥ १२ ॥ पद॥९॥

अथ वेदांतसारप्रारंभः ।

कर्स्ते वोढुं प्रभवति परं देवदेव प्रभावं ।
 यस्मादित्थं विविधरचना सृष्टिरेषा बभूव ॥

१ ते प्रभावं वोढुं कोपि समर्था नभवति । कोमलवेदक-प्रयोक्तृ इयं सिद्धि-
 र्दल आबभूव ।

भक्तियाह्यस्त्वमिति भगवंस्त्वामहं भक्तिमात्रा-
 त्तोतुं वाञ्छाम्यति महदिदं साहसं मे सहस्र ॥१॥
 सर्वस्यानित्यत्वे, सावयवत्वेन सर्वथा सिद्धे ।
 वैकुण्ठादिषु नित्यत्व-मतिर्भ्रमएव मूढबुद्धीनाम् ॥२॥
 कुक्षौ स्वमातुर्मलमूत्रमध्ये, स्थितिं तथा विद्वृ-
 मिदंशनंच ॥ तदीयकौक्षेयकवह्निदाहं, विचार्य
 को वा विरतिं न याति ॥ ३ ॥ स्वकीयविण्मूत्र
 निमज्जनं यच्चोत्तानगत्या शयनं तदार्तिः । बाल-
 ग्रहव्याहतिशालि शैशवं, विचार्य को वा विरतिं
 न याति ॥ ४ ॥ स्त्रीयैः परैस्ताडनमज्ञभावम-
 त्यंतचापल्यमसत्क्रियांच ॥ कुमारभावे प्रीति-
 पिद्धवृत्तिं, विचार्य को वा विरतिं न याति ॥
 ॥ ५ ॥ मंदोद्धतिं मान्यतिरस्कृतिंच, कामातु-
 रत्वं समयति लंघनम् ॥ तां तां युवत्योदितदुष्ट

१ तदुरां. २ काले-कृतं केशप्रदणं ताडनं च ताम्बां युक्तं. ३ निषिद्धकर्म-
 करणे मनोवृत्तिर्यस्यतं. ४ मन्दोन्मत्तता. ५ मान्यानां मातृपित्राचार्यादीनां
 विरक्तारं. ६ नित्यादिषु कर्मसमयस्य उत्पन्नं.

चेष्टां, विचार्य को वा० ॥ ६ ॥ विरूपतां सर्व ज-
 नादवज्ञां, सर्वत्र दैन्यं निजबुद्धिहैन्यम् ॥ वृद्धत्व
 संभावित-दुर्दशां तां, विचार्य० ॥ ७ ॥ पित्त-
 ज्वरार्शःक्षयगुल्मशूल-श्लेष्मादिरोगोदिततीव्रदुः-
 खम् ॥ दुर्गन्धमत्वास्थ्यमनूनचिन्तां, विचार्य०
 ॥ ८ ॥ यमावलोकितभीतिकंपं, मर्मव्यथो-
 च्छासगतीश्च वेदनाम् । प्राणप्रयाणे परिहृद्य-
 मानां, विचार्य० ॥ ९ ॥ अंगारनद्यां तपने च
 कुंभीपाके च वीच्यामसिपत्रकानने । दूतैर्यमस्य
 क्रियमाणवाधां, विचार्य० ॥ १० ॥ पुण्यक्षये
 पुण्यकृतैर्नभस्यैर्निपाल्यमानाञ्जिथिलीकृतांगान् ।
 नक्षत्ररूपेण दिवश्च्युतांस्तान्, विचार्य० ॥ ११ ॥
 वाय्वर्कवर्हीद्रमुखान्सुरेंद्रानीशोऽग्रभीत्याव्यथितां-
 तरंगान् । विषक्षल्लोकैः परिभूयमानान्, श्रुत्वात्र

१ हीनता. २ उत्पादित. ३ उत्पन्न. ४ यमदर्शनादुत्पन्नभीतिकंपं.
 ५ यमलोकप्रगिद्धार्थंगारप्रवृत्ततां. ६ शङ्खतुल्यगण्युक्तदृष्टप्रवृत्तने.
 ७ पशुलोकैः.

कोवा विरतिं न याति ॥ १२ ॥ श्रुत्वा नि-
 रुक्तं सुखतारतम्यं, ब्रह्मादिमारभ्य महामही-
 शम् । औपाधिकं तत्तु न वास्तवं चेत्यालोच्य कोवा
 विरतिं न याति ॥ १३ ॥ सालोक्य सामीप्य स-
 रूपतादिभेदस्तु सत्कर्म-विशेषसिद्धः । नै क-
 र्मसिद्धस्य तु नित्यतेति, विचार्य कोवा विरतिं न
 याति ॥ १४ ॥ यत्रास्तिलोके गतितारतम्यमु-
 च्चावचत्वान्वितमत्र तत्कृतम् । यथेह तद्वत्खलु-
 दुःखमस्तीत्यालोच्य कोवा विरतिं न याति ॥ १५ ॥
 को नाम लोके पुरुषो विवेकी, विनश्वरे तुच्छ-
 सुखे गृहादौ । कुर्याद्रतिं नित्यमवेक्षमाणो वृथैव
 मोहान्म्रियमाणजंतून् ॥ १६ ॥ सुखं किम-
 स्त्यत्र विचार्यमाणे, गृहेषु वा योपिति वा
 पदार्थे । मायातमौधीकृतचक्षुषो ये, त एव

१ यत्कृतकतदनित्यमिति न्यायादित्यर्थः. २ तथयेह कर्मचितो लोकः क्षीयत
 एवमेवामुपेति ध्रुवेः दृष्टानुसारेणादृष्टरूपनेति न्यायाच्च.

मुह्यन्ति विवेक-शून्याः ॥ १७ ॥ अविचारित-र-
मणीयं, सर्वमुदुंबरफलोपमं भोग्यम् । अज्ञाना-
मुपभोग्यं, नतु तज्ज्ञानामुदुंबरं कापि ॥ १८ ॥
गतोऽपि तोये सुषिरं कुलीरो हातुं ह्यशक्तो भ्रि-
यते विमोहात् । यथा तथा गेहसुखानुपक्तो
विनाशमायाति नरो भ्रमेण ॥ १९ ॥ कोशक्रि-
मिस्तंतुभिरात्मदेहमावेष्टयचावेष्टयच गुप्तिमिच्छन्
स्वयं विनिर्गन्तुमशक्त एव ततस्तदंतर्भ्रियतेऽव-
लम्बः ॥ २० ॥ यथा तथा पुत्रकलत्रमित्रस्नेहानु-
बन्धैर्ग्रथितो गृहस्थः । कदापि वा तान्परि-
भाव्य गेहान्, गंतुं न शक्तो भ्रियते मुधैव
॥ २१ ॥ कारागृहस्यास्य च नो विशेषः प्रदृश्यते
साधु-विचार्यमाणे । मुक्तेः प्रतीपत्वमिहास्ति
पुंसः, कांतासुखादुत्थितमोहपाशैः ॥ २२ ॥

१ विलं. २ कर्षटक. ३ लक्ष्म. ४ तिरस्कृतगंतुमसमर्थः सन्मुधैवभ्रियत
इत्यर्थः. ५ सम्यग्बिचारे कृते सति. ६ प्रतिवृत्तार्थ.

गृहंस्पृहापादनिर्वेद्धशृङ्खला कांता सुखाशा पटु-
 कंठपाशः । शीर्षे पतद्भूर्यशनिर्हि साक्षात्प्रा-
 णांतहेतुः प्रवला धनाशा ॥ २३ ॥ आशा-
 पाशशतेन पाशितपदो नोत्थातुमेवं क्षमः । काम-
 क्रोधमदादिभिः प्रतिभटैः संरक्ष्यमाणोऽनिशम् ।
 संमोहावरणेन गोपेनवतः संसारकारागृहान्निर्गन्तुं
 त्रिविधैपणा-परिवृतः कः शक्नुयाद्भागिषु ॥ २४ ॥
 कामांधकारेण निरुद्धदृष्टिर्मुह्यत्यसत्यप्यवलास्व-
 रूपे । नह्यंधदृष्टेरसतः सतो वा, सुषुप्त-
 दुष्टत्वविचारणास्ति ॥ २५ ॥ श्रेष्मोद्गारि
 मुखं स्रवन्मलवती नासाऽश्रुमल्लोचनं, खेदस्त्रावि
 मलाभिपूर्णमभितो दुर्गंधि दुष्टं वपुः । अन्यद्रक्तु-
 मशक्यमेव मनसा मंतुं कचिन्नार्हति, स्त्रीरूपं क-
 थमीदृशं सुमनसां पात्रीभवेन्नेत्रयोः ॥ २६ ॥
 दूरादवेक्ष्यान्निशिखां पतंगो, रम्यत्वबुद्ध्या वि-

१ वज्रम्. २ बद्धपदः. ३ कीर्तिः. ४ परिव्रियमाणः. ५ आच्छादकात्.
 १ प० भा० दु०

निपत्य नश्यति । कामेन कांतां परिगृह्य तद्वज्जनो-
 प्ययं नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ २७ ॥ मांसास्थिमज्जा-
 मलमूत्रपात्रं, स्त्रियं स्वयं रम्यतयैव पश्यति ।
 यतस्ततो नष्टदृष्टेः सूक्ष्मं, कथं निरीक्षेत विमु-
 क्तिमार्गम् ॥ २८ ॥ काम एव यमः साक्षात्कांता
 वैतरणी-नदी । विवेकिनां मुमुक्षूणां, निलयस्तु
 यमालयः ॥ २९ ॥ यमालये वापि गृहेऽपि नो
 नृणां, तापत्रयक्लेश-निवृत्तिरस्ति । किञ्चित्समा-
 लोक्य तु तद्विरामं सुखात्मना पश्यति मूढलोकः
 ॥ ३० ॥ यमस्य कामस्य च तारतम्यं, विचार्य-
 माणे महदस्ति लोके । हितं करोत्यस्य यमोऽ-
 प्रियः सन्, कामस्त्वनर्थं कुरुते प्रियः सन् ॥ ३१ ॥
 यमोऽसतामेव करोत्यनर्थं, सतां तु सौख्यं कुरुते
 हितः सन् । कामः सतामेव गतिं निरुन्धन्, क-

१ विगततरणीका-मांसपूयपुरीषप्रचुरा यमलोकप्रसिद्धानदी. २ गृहं.
 ३ तापत्रयक्लेशनिवृत्तिः. ४ सत्पुरुषाणाम्.

रेत्यनर्थं ह्यसतां तु का कथा ॥ ३२ ॥ विश्वस्य
 वृद्धिं स्वत एव कांक्षन्, प्रवर्धकं काममजः ससर्ज ।
 तेनैव लोकः परिमुह्यमाणः, प्रवर्धते चंद्रमसेव
 वार्धिः ॥ ३३ ॥ कामोनाम महान् जगद्धमयिता
 स्थित्वांतरंगे स्वयं, स्त्रीपुंसोरितरेतरांगकगुणै-
 र्हावैश्च भावैः स्फुटम् । अन्योन्यं परिमोह्य नैज-
 तमसा प्रेमानुबन्धेन तौ, वद्धा भ्रामयति प्रपंच-
 रचनां संवर्धयन् ब्रह्मणः ॥ ३४ ॥ अतोतरंगस्थित-
 कामवेगाद्भोग्ये प्रवृत्तिः स्वत एव सिद्धा । स-
 र्वस्य जंतोर्ध्रुवमन्यथा चेदधोधितार्थेषु कथं प्र-
 वृत्तिः ॥ ३५ ॥ तेनैव सर्वजंतूनां कामना बल-
 वत्तरा । जीर्यत्यपि च देहेऽस्मिन्, कामना नैव जी-
 र्यति ॥ ३६ ॥ कामस्य विजयोपायं, सूक्ष्मं व-
 द्याम्यहं सताम् । संकल्पस्य परित्याग, उपायः
 सुलभो मतः ॥ ३७ ॥ श्रुते दृष्टेऽपि वा भोग्ये,

यस्मिन्कस्मिंश्च वस्तुनि । समीचीनत्वधीत्यागा-
 त्कामो नोदेति कर्हिचित् ॥ ३८ ॥ कामस्य वीजं
 संकल्पः संकल्पादेव जायते । वीजे नष्टेकुर इव
 तस्मिन्नेष्टे विनश्यति ॥ ३९ ॥ न कोपि सम्यक्त्व-
 धियं विनेव, भोग्यं नरः कामयितुं समर्थः । यत-
 स्ततः कामजयेच्छुरेतां, सम्यक्त्वबुद्धिं विषये
 निहन्यात् ॥ ४० ॥ संकल्पानुदये हेतुर्यथाभू-
 तार्थदर्शनम् । अनर्थचिंतनं चाभ्यां नावका-
 शोऽस्य विद्यते ॥ ४१ ॥ रत्ने यदि शिलाबुद्धिर्जा-
 यते वा भयं ततः । समीचीनत्वधीनेति नोपादेय-
 त्वधीरपि ॥ ४२ ॥ यथार्थ-दर्शनं वस्तुन्यनर्थ-
 स्यापि चिंतनम् । संकल्पस्यापि कामस्यानुदयो-
 पाय इष्यते ॥ ४३ ॥ धनं भयनिबन्धनं सतत-
 दुःख-संवर्धनं, प्रचंडतरगर्जनं घटितबन्धुसंस्पर्श-
 नम् । विशिष्टगुणवौधनं कृपणधीसमाराधनं

न मुक्तिर्गति-साधनं भवति नापि हृच्छोधनम्
 ॥ ४४ ॥ राज्ञो भयं चोरभयं प्रमादाद्भयं तथा
 ज्ञातिभयं च वस्तुनः । धनं भयग्रस्तमनर्थमूलं
 यतः सतां तन्न सुखाय कल्पते ॥ ४५ ॥ सता-
 मपि पदार्थस्य लोभाल्लोभः प्रवर्तते । विवेको
 लुप्यते लोभात्तस्मिँल्लुप्ते विनश्यति ॥ ४६ ॥ दह-
 त्यलाभे निःस्वत्वं लाभे लोभो दहत्यमुम् । त-
 स्मात्संतापकं वित्तं कस्य सौख्यं प्रयच्छति ॥ ४७ ॥
 भोगेन ममता जंतोर्दानेन पुनरुद्भवः । वृथैवोभ-
 यथा वित्तं नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ ४८ ॥ धनेन
 भूदबुद्धिः स्यान्मदेन स्मृतिनाशनम् । स्मृति-
 शानौ बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ४९ ॥
 सुखयति धनमित्येवांतराशापिशाचीदृढतरमुपै-
 गूढो मूढलोको जडात्मा । निवसति तंदुपांते संततं
 प्रेक्षमाणो व्रजति तदपि पश्चात्प्राणमेतस्य हृत्वा

॥ ५० ॥ संपन्नोऽन्धवदेव किञ्चिदपरं नो वीक्षते
 चक्षुषा, सद्भिर्वर्जितमार्ग एव चरति प्रोत्सारित-
 स्तादृशैः । तस्मिन्नेव मुहुस्खलन्प्रतिपदं गत्वांध-
 कूपे पतत्यस्यांधत्वनिवर्तकौषधमिदं दारिद्र्यमेवा-
 जनम् ॥ ५१ ॥ लोभः क्रोधश्च दंभश्च मदो
 मत्सर एव च । वर्द्धते वित्तसंप्राप्त्या कथं त-
 च्चित्तशोधनम् ॥ ५२ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन भ-
 यर्चित्तानपायिना । चित्तस्वास्थ्यं कुतो जंतोर्गृ-
 हस्थेनाहिना यथा ॥ ५३ ॥ कांतारे विजने वने
 जनपदे सेतौ विरीतौ च वा, चोरैर्वापि तथेत-
 रैरपि नैर्युक्तो वियुक्तोपि वा । निःस्वः स्वस्थतया
 सुखेन वसति ह्याद्रीयमाणो जनैः, क्लिश्नात्येव
 धनी सदाऽऽकुलमतिर्भीतः स्वपुत्रादपि ॥ ५४ ॥
 तस्मादनर्थस्य निदानमर्थः पुमर्थसिद्धिर्न भवत्य-

१ सम्पदं प्राप्तं. २ असम्भारगोत्रिवारितोषि. ३ रात्पुण्ये. ४ अविनाशकारिणा
 वधंकेनेति यावत्, ५ निर्जनप्रदेशभवानदीतस्या.

नेन । अतो वनांते निवसन्ति संतः संन्यस्य सर्वं
 प्रतिकूलमर्थम् ॥ ५५ ॥ श्रद्धाभक्तिमतीं सतीं
 गुणवतीं पुत्रान् सतां संमतानक्षय्यं वसु दान-
 भोगविभवैः श्रीसुन्दरं मंदिरम् । सर्वं नश्वरमित्य-
 वेत्य कवयः श्रुत्युक्तिभिर्युक्तिभिः, संन्यस्यंत्यप-
 रे तु तत्सुखमिति भ्राम्यन्ति दुःखार्णवे ॥ ५६ ॥
 सत्कर्मक्षत-पाप्मनां श्रुतिमतां श्रद्धात्मनां
 धीमतां नित्यानित्यपदार्थशोधनमिदं युक्त्या
 मुहुः कुर्वताम् । तस्मादुत्थं-महाविरक्त्यासिमतां
 मोक्षककांक्षावतां । धन्यानां सुलभं समस्तवि-
 विषयेष्वालताच्छेदनम् ॥ ५७ ॥ संसारमृ-
 त्योर्वलिनः प्रवेशद्वाराणि तु त्रीणि महान्ति लोके ।
 कांता च जिह्वा कनकं च तानि रुणद्धि य-
 स्तस्य भयं न मृत्योः ॥ ५८ ॥ मुक्तिश्रीनगरस्य
 दुर्जयतरं द्वारं यदस्त्यादिमं, तस्य द्वे अररे धनं च

१ पडिमताप्रियम्. २ त्वद्भोग्यजनं सुगमाधनमिति मन्वा. ३ नाशित.
 ४ उत्पन्न. ५ निपूयति. ६ कपाटे.

युवती, ताभ्यां पिनेद्धं दृढम् । कामौढ्यार्गल-
 दारुणा बलवता चांतस्तदेतन्नयं धीरो, यस्तु
 भिनन्ति सोऽर्हति सुखं भोक्तुं विमुक्तिश्रियः
 ॥ ५९ ॥ आरूढस्य विवेकाश्वं तीव्रवैराग्य-स्व-
 द्धिनः । तितिक्षोरुपशांतस्य प्रतियोगी न दृश्यते
 ॥ ६० ॥ विवेकजां तीव्रविरक्तिमेव मुक्तेर्निदानं
 निर्गदन्ति संतः । तस्माद्विवेकी पुरुषो मुमुक्षुः
 संपादयेत्तामतुलप्रयत्नैः ॥ ६१ ॥ मनःप्रसादस्य
 निदानमेतन्निरोधनं यत्सकलेंद्रियाणाम् । वा-
 ह्येन्द्रिये साधु-निरुध्यमाने बाह्यार्थभोगो मनसो
 वियुज्यते ॥ ६२ ॥ तेन स्वदौष्ट्यं परिमुच्य चित्तं
 शनैःशनैः शांतिमुत्पादयति । चित्तस्य बाह्यार्थ-
 विमोक्षमेव मोक्षं विदुर्मोक्षणलक्षणज्ञाः ॥ ६३ ॥
 दमं विना साधु मनःप्रसादहेतुं न विद्मः सु-

१ नियंत्रितं बद्धमित्यर्थः. २ बाष्पपिण्डलवशात्पट्टमकं काष्ठं तेन. ३ उद्धा-
 टयति. ४ प्रतिबंधकः. ५ व्यर्थं वर्धति. ६ तीव्रविरक्तिः. ७ सम्यक्. ८ शुद्धाति.

खदं मुमुक्षोः । दमेन चित्तं निजदोषजातं
 विसृज्य शान्तिं समुपैति शीघ्रम् ॥६४॥ प्राणायामा-
 न्भवति मनसो निश्चलत्वं प्रसादो यद्यप्यस्य
 प्रतिनियतदिग्देशकालाद्यपेक्षा । सम्यग्दृष्ट्या
 कचिदपि तथा नेदमस्यास्ति तस्मात् कुर्याद्धी-
 मान् दममनलसश्चित्तशान्त्यै प्रयत्नात् ॥ ६५ ॥
 सर्वेन्द्रियाणां गतिनिग्रहेण भोग्येषु दोषाद्यवमर्श-
 नेन । ईशप्रसादाच्च गुरुप्रसादाच्छान्तिं समायात्य-
 चिरेण चित्तम् ॥ ६६ ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसा च साधू-
 नामप्यगर्हणम् । पराक्षेपादिसहनं तितिक्षोरेव
 सिद्ध्यति ॥ ६७ ॥ उपरमयति कर्माणीत्युपरति-
 शब्देन कथ्यते न्यासः । न्यासेन हि सर्वेषां
 प्रोक्तः श्रुत्यापि कर्मणां न्यासः ॥ ६८ ॥ प्रत्यग्
 ब्रह्मविचारपूर्वमुभयोरेकत्वबोधाद्विना, कैवल्यं
 पुरुषस्य सिद्ध्यति परं ब्रह्मात्मतालक्षणम् । न

१ विषयेषु प्रवृत्तिनिग्रहेण. २ अवलोकनेन आदिशब्दादु सादिकं प्राशं तदुक्तं
 भगवता येद्विषयसंज्ञामोहा दु एवोनयएवते इत्यादि. ३ समापयति.

कश्यते श्रूयतां बुधैः ॥ ७४ ॥ तापैस्त्रिभिर्नित्यमने-
करूपैः संतप्यमानः क्षुभिर्तांतरात्मा । परिग्रहं
सर्वमनर्थबुद्ध्या, जहाति सा तीव्रगतिर्मुमुक्षा
॥ ७५ ॥ तापत्रयं तीव्रमवेक्ष्य वस्तुदृष्ट्या कलत्रं
तनयादि हातुम् । मध्ये द्वयोर्दोलनमात्मनो
यत्सैषा भवेन्माभ्यामिकी मुमुक्षा ॥ ७६ ॥ मो-
क्षस्य कालोऽस्ति किमद्य मे त्वरा भुक्तवैव भोगान्
कृतसर्वकार्यः । मुक्त्यै यतिष्येऽहमथेति बुद्धिरे-
पैव मंदा कथिता मुमुक्षा ॥ ७७ ॥ मार्गे प्रया-
तुर्मणिलाभवन्मे लभ्येत मोक्षो यदि तर्हि धन्यः ।
इत्यादिनां मूढधियां मतिर्या, सैषातिमंदाभि-
मता मुमुक्षा ॥ ७८ ॥ यस्तु तीव्रमुमुक्षुः स्यात्स
जीवन्नेव मुच्यते । जन्मांतरे मध्यमस्तु तद-
न्यस्तु युगांतरे ॥ ७९ ॥ चतुर्थः कल्पकोट्या वा
नेव बंधाद्विमुच्यते । तस्मान्मुख्यमुमुक्षुत्वं

यत्नात्साध्यात्मविद्भवेत् ॥ ८० ॥ लब्ध्वा सुदुर्ल-
 भतरं नरजन्म जंतुस्तत्रापि पौरुषमतः सदस-
 द्विवेकम् । संप्राप्य चैहिक-सुखाभिरतो यदि स्या-
 द्द्विक्तस्य जन्म कुमतेः पुरुषाधमस्य ॥ ८१ ॥
 खादते मोदते नित्यं शुनकः सूकरः खरः । तेषा-
 मेषां विशेषः को वृत्तिर्येषां तु तैः समा ॥ ८२ ॥ सं-
 प्रीतिमक्ष्णोर्वदनप्रसादमानन्दमन्तःकरणस्य सद्यः ।
 विलोकनं ब्रह्मविदस्तनोति छिनत्ति मोहं
 सुगतिं व्यनक्ति ॥ ८३ ॥ शिवप्रसादेन विना
 न सिद्धिः शिवप्रसादेन विना न बुद्धिः । शिव-
 प्रसादेन विना न युक्तिः शिवप्रसादेन विना
 न मुक्तिः ॥ ८४ ॥ मनोऽप्रसादः पुरुषस्य बन्धो
 मनःप्रसादो भवबन्धमुक्तिः । मनःप्रसादाधि-
 गमाय तस्मान्मनोनिरोधं विदधीत विद्वान्
 ॥ ८५ ॥ द्रष्टा श्रोता वक्ता कर्ता भोक्ता भवत्य-

हंकारः । स्वयमेव सर्वकृतिनां साक्षी निर्लेप ए-
 वात्मा ॥ ८६ ॥ आत्मस्वरूपमनवेक्ष्य विमूढ-
 बुद्धिरारोपेयत्यखिलमेतदनात्मकार्यम् । स्वा-
 त्मन्यसंगचित्तिनिश्चल एव चन्द्रे दूरस्य मेघकृतधा-
 वनवद्भ्रमेण ॥ ८७ ॥ भ्रांत्या मनुष्योऽहमहं द्विजोहं
 तज्ज्ञोहमज्ञोऽहमतीव पापी । भ्रष्टोऽस्मि शिष्टोऽस्मि
 सुखी च दुःखीत्येवं विमुह्यात्मनि कल्पयन्ति ॥ ८८ ॥
 विवेकवानप्यतियौक्तिकोऽपि श्रुतात्मतत्त्वोऽपि च
 पण्डितोऽपि । शक्त्या यथा संवृतबोधदृष्टिरात्मानमा-
 त्मस्थमिमं न वेत्ति ॥ ८९ ॥ सम्यक् समाधि-
 निरतैर्विर्मलांतरंगैः साक्षादवेक्ष्य निजतत्त्वम-
 पारसौख्यम् । संतुष्यते परमहंसकुलैरजस्रं यद्
 ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ९० ॥ श्रु-
 त्युक्तमव्ययमपारमनंतमाद्यमानंदचिद्धनमनाम-
 यमद्वितीयम् । अव्यक्तमक्षरमनाश्रयमप्रमेयं

यद्ब्रह्म तत्त्वमसि केवलबोधमात्रम् ॥ ९१ ॥
 श्रद्धाभक्तिपुरःसरेण विहितेनैवेश्वरं कर्मणा,
 संतोष्यार्जिततत्प्रसादमहिमा जन्मांतरेणैव यः ।
 नित्यानित्यविवेकतीव्रविरतिन्यासादिभिः साध-
 नैर्युक्तः सन् श्रवणे सतामभिमतो मुख्या-
 धिकारी द्विजः ॥ ९२ ॥ अध्यारोपापवादक्रममनु
 सरता देशिकेनात्मवेद्या, वाक्यार्थे बोध्यमाने
 सति सपदि सतः शुद्धबुद्धेरमुष्य । नित्यानंदा-
 द्वितीयं निरुपमममलं यत्पदं तत्त्वमेकं, तद्
 ब्रह्मैवाहमस्मीत्युदयति तु पराखंडिताकारवृत्तिः
 ॥ ९३ ॥ नाहं देहो नाप्यसुर्नाक्षवर्गो, नाहं-
 कारो नो मनो नापि बुद्धिः । अंतस्तेषां चापि
 तद्विक्रियाणां, साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९४ ॥
 वाचः साक्षी प्राणवृत्तेश्च साक्षी, बुद्धेः साक्षी
 बुद्धिवृत्तेश्च साक्षी । चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणां क्रि-
 याणां साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९५ ॥

नाहं स्थूलो नापि सूक्ष्मो न दीर्घो नाहं वालो नो
 युवा नापि वृद्धः । नाहं काणो नापि मूको न
 खंजः, साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९६ ॥
 नास्म्यागंता नापि गंता न हंता नाहं कर्त्ता न
 प्रयोक्ता न वक्ता । नाहं भोक्ता नो सुखी नैव दुःखी,
 साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९७ ॥ नाहं
 योगी नो वियोगी न रागी, नाहं क्रोधी नैव
 कामी न लोभी । नाहं बद्धो नापि युक्तो न मुक्तः,
 साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९८ ॥ नांतः-
 प्रज्ञो नो बहिःप्रज्ञको वा, नैव प्रज्ञो नापि चा-
 प्रज्ञ एव । नाहं श्रोता नापि मंता न वोद्धा,
 साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि ॥ ९९ ॥ ज्ञात्वा
 देवं सर्वपाशापहानिः, क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्यु-
 प्रहाणिः । इत्येवैषा वैदिकी वाग्ब्रवीति, क्लेश
 क्षत्या जन्ममृत्युप्रहाणिः ॥ १०० ॥ भूयो ज-

न्माद्यप्रसक्तिर्विमुक्तिः क्लेशक्षत्या भाति ज-
 न्माद्यभावः । क्लेशक्षत्या हेतुरात्मैकनिष्ठा तस्मा-
 त्कार्या स्वात्मनिष्ठा मुमुक्षोः ॥ १०१ ॥ यम-
 नियमविनिष्ठः साधुसिद्धासनस्थः सततमसु-
 नियामी रुद्धधीर्धारणाढ्यः । रहसि परमतत्त्वं
 निष्कलं चिंतयानः प्रदहति भवबंधं निर्विकल्पे
 निरूढः ॥ १०२ ॥ माया-ध्वांते त्वहमिदमिति
 भ्रांतिबीजे विनष्टे श्रुत्याचार्यप्रकटवचनोद्धूत-
 बोधारुणेन । ब्रह्मात्मैक्ये द्वयविरहिते केवला-
 नंदरूपे, किं कर्तव्यं किमुत करणं किं फलं
 कोनु कर्ता ॥ १०३ ॥ यत्राशेषं जगदिदम-
 भूद्भ्राममात्रावशेषं, सर्पस्फूर्तेर्गुणवदसतः कल्पना-
 धारमात्रे । ज्ञाते तस्मिन्निरवधिसदानंदपीयूष-
 सिंधौ किं कर्तव्यं किमुत करणं किं फलं कोनु कर्ता
 ॥ १०४ ॥ भ्रांत्या कर्ता कैरणपटली कर्म काम्यं

विहंसं सत्येकस्मिन्नभसि पुरवद्वस्तुतो द्वैतशून्ये ।
 तद्विध्वंसे किमिह निवसेत्केवले बोधमात्रे किं
 कर्तव्यं किमुत करणं किं फलं कोनु कर्ता ॥१०५॥
 कालांभोधा विदमिदमिति ग्राह्यशून्यार्थजाते क-
 स्याद्वापिप्रहिन्दनदीभेदकल्पावकाशः । तद्वद्
 ब्रह्मण्यपगतभिदे सुप्तिवन्निर्विशेषे किं कर्तव्यं
 किमुत करणं किं फलं कोनु कर्ता ॥ १०६ ॥
 यत्र त्वस्येत्युपनिषदिसत्केवलत्वं ब्रुवंत्यां, सुप्तौ
 सर्वानुभवविषये बाध्यभेदं वदेत्कः । तस्मिन्नित्ये
 निरवधि-सुखे निर्गुणे निर्विकल्पे किं कर्तव्यं किमुत
 करणं किं फलं कोनु कर्ता ॥१०७॥ देहेंद्रियेष्वात्म-
 धियाभिमानिनो विधिर्निषेधो नतु तत्त्वदर्शिनः ।
 अतो यथेष्टाचरणं न तस्य तच्चापि देहाभिनि-
 वेशतः स्यात् ॥ १०८ ॥ यथेष्टाचरणं यस्य भेद-

१ विवक्षितम्. २ अहि इवः ३ यत्रत्यस्य सर्वमात्मव्याभूतभेदकं परदेहिना-
 दिभूतः. ४ बाध्यप्रदार्पभेदः. ५ श्वेष्टाचारः. ६ यथेष्टाचरणं. ७ देहादां दृष्टा-
 मिमानतः.

दर्शनपूर्वकम् । न तस्य ज्ञानगंधोऽस्ति विवेको
वाऽणुमात्रकः ॥ १०९ ॥ अन्यत्यक्तमलं भुंक्ते
शुनकः सूकरः खरः । स्वयं त्यक्तमलं भुंक्ते स
तस्मादधमः खलः ॥ ११० ॥ ब्रह्मानंदरसं सुदुर्ल-
भतरं ब्रह्मादिकानामपि प्राप्यानेकसहस्रजन्मसु-
कृतैर्धातुः प्रसादाद्यतिः । कोन्वेनं समुपेक्ष्य दर्प-
णतलव्याभांसि वस्तूपलं तुच्छं सेवितुमुत्सहेत
विषयं ज्ञात्वा मृषा लक्षणम् ॥ १११ ॥ स्वात्मानं-
दरसं सुखेन पिवतः स्वं पश्यतः सर्वतः प्रत्यग्वृ-
त्युपसंहर्तेन्द्रियगतेः शान्तप्रवृत्तेर्यतेः । स्वप्ने वापि
च नो यथेष्टचरणं संभाव्यते धीमतो हंसस्येव
पयोभुजः सुमनसः पंकोदकप्राशनम् ॥ ११२ ॥
मानावमानसुखदुःखहिताहितादावेकात्मना स्थि-

१ सर्वस्य धारक परमाना तस्य. २ दर्पणतले प्रतिबिम्बितं वस्तूपलं उपलभ्यं
गलु. ३ मिथ्यारूपम्. ४ अंतरात्माकारश्लोपसंहर्तेन्द्रियविषयप्रवृत्तेः. ५ शान्ता-
प्रवृत्तिर्यस्य तस्ययतेः.

तमनाः प्रशमाभिरामः । प्रैत्यङ्मुखो निजसु-
 खार्थपराङ्मुखः सन् । जीवन् विमुक्त इति तिष्ठति
 विद्वरिष्ठः ॥ ११३ ॥ प्रारब्धमारुतवशाद्विषये प्रवृत्तं
 तस्मान्निवृत्तमपि देहमनीक्षमाणः । स्वात्मानुभूति-
 रससेवनमत्तचित्तो जीवन् विमुक्त इति तिष्ठति
 विद्वरिष्ठः ॥ ११४ ॥ अन्येच्छयैव परिकल्पितदे-
 हवृत्तिर्निद्रालवच्च शिशुवत्प्रतिबोध्यमानः । य-
 तेन भावितपदार्थविशेषबोधो जीवन् विमुक्त
 इति तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥ ११५ ॥ अंतर्बहिश्च
 विषये भवदात्ममात्रः स्वान्यप्रमाणपरिकल्पितदे-
 हभानः । एकात्मताधिगमनेन विमूढवृत्तिर्जीव-
 न्निमुक्त इति तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥ ११६ ॥ प्रा-

१ प्रशान्तिप्रमाणः. २ अन्तर्मुखः. ३ सेनभोग्यविषयमुखरुपात्प्रयोजना-
 द्विमुखः. ४ मरितमदान्धवदनवहितः. ५ शरीरयात्रानिर्बाह इति यावत्.
 ६ परप्रयत्नेन गमापित-प्रत्युत्थाने प्राप्यमाणः. ७ परप्रयत्नेन कारितो बाह्यपदार्थ-
 भेदबोधो यस्य. ८ स्वमादन्यः पुरुषः प्रमाणेन परिकल्पितं देहभानं यस्य.
 ९ पूर्वादिदिक्षा विभागम्.

गादिदिग्विभजनं स्वपरान्यभावं स्वप्नप्रजागरवि-
 भागविवेकशुद्धिम् । विस्मृत्य केवलचिदाकृतिरेव
 भूत्वा जीवन्विमुक्त इति तिष्ठति विद्वरिष्ठः ॥११७॥
 कर्माकर्मविकर्ममार्गविमुखः सन्मार्गवर्ती सदा
 संप्रज्ञातसमाधिना तिग्गमितप्रारब्धशेषो मुनिः ।
 प्राणे ब्रह्मणि लीनतामुपगते ब्रह्मैव सन् ब्रह्म-
 विद्ब्रह्माप्येति घटे लयं गतवति व्योम्नि स्वयं
 व्योमवत् ॥ ११८ ॥ प्रारब्धस्य गतिर्यथा खलु
 तथा दुःखं सुखं प्राणिनां नैवैतां समतीत्यसि-
 द्ध्यति फलं पुंसः प्रयत्नादतः । प्रारब्धाय समर्प्य
 देहमदतश्चिंतांविहायानिशं नैश्चल्येन समाधि-
 माचर चिरं नैकैत्र तिष्ठ स्थितम् ॥ ११९ ॥ क्षुत्ता-
 पनुत्तये भुक्तिर्वस्त्रं शीतनिवृत्तये । व्यापृतिक्षतये
 मौनं संचारः स्नेहकृतये ॥ १२० ॥ तिष्ठत्वेष उपा-

१ उपपितः समापितः प्रारब्धकर्मशेषोपेयनसः २ नियतनिकेतं मा गुरु अनि-
 केत-स्थिरमतिरितिगीतोक्तः, ३ निवारणाय भोजनम्, ४ व्यापारनिवृत्तये, ५ स्नेह-
 कृतेदनाय.

धिप्रतिविंवमसौ मम प्रतिच्छाया । नैतत्कृतमी-
 यन्मां साक्षिणमेतद्विलक्षणं स्पृशति ॥ १२१ ॥
 चिरकालमनेनाहमहंकारेण वंचितः । पिशाचेन
 यथा ग्रस्तः स्वस्वरूपविरोधिना ॥ १२२ ॥ विज्ञा-
 तोयं मया चोरश्चिरकालं विचिन्वता । समा-
 ध्यन्तौ निर्धायैनं निर्धक्ष्यामि सवासनम् ॥ १२३ ॥
 यदस्त्यधस्तादपि चोपरिष्ठात्पश्चात्पुरस्तादपि द-
 क्षिणस्याम् । अप्युत्तरस्यां परिपूर्णमद्वयं तदस्मि
 साक्षादिति मौनमाश्रये ॥ १२४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्य-
 विरचितो ज्ञानानन्दयतिकृतदिप्पण्याच
 समलंकृतो वेदांतसारः समाप्तः

॥ श्लोक ॥

आव्रह्मभुवनालोकाः पुनरावर्तिनोर्जुन ॥ मामु-
 पेक्ष्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १ ॥ श्वोभा-

वामर्त्यस्य यदंतकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयंति तेजः ॥
 अपि सर्व जीवितमल्पमेव, तवैव वाहास्तव
 नृत्यगीते ॥ योयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं त-
 स्मान्नचिकेता वृणीते ॥ २ ॥ मार्गे (२) नूतनं
 चूतखंडं, खंडे (२) कोकिलानां विरावः ॥ रावे (२)
 मानिनीमानभंगो, भंगे (२) मन्मथः पंचबाणः
 ॥ ३ ॥ मार्गे (२) जायते साधुसंगः संगे (२)
 श्रूयते कृष्णकीर्तिः ॥ कीर्तौ (२) नस्तदाकार-
 वृत्तिर्वृत्तौ (२) सच्चिदानन्दभासः ॥ ४ ॥ गेहे (२)
 जंगमाहेमवल्ली वल्ल्यां (२) पार्वणं चंद्रविम्बं ॥ विंवे
 (२) दृश्यते मीनयुग्मं, युग्मे (२) पंचबाणप्रचारः ॥
 ॥ ५ ॥ तीर्थे (२) निर्मलं ब्रह्मवृंदं, वृन्दे (२) तत्त्व-
 चिन्तानुवादः ॥ वादे (२) जायते तत्त्वबोधो बोधे
 (२) भासते चंद्रचूडः ॥ ६ ॥ स्थाने (२) दृश्यते
 रत्नवेदी, वेद्यां (२) सिद्धगंधर्वगोष्ठी । गोष्ठ्यां

(२) किन्नरद्वंद्वगीतं, गीते (२) गीयते रामचन्द्रः ॥
 ॥ ७ ॥ समस्तशृंगारविनोदशीला, लीलावती
 कोकिलकंठनाला ॥ विलासिता नो नवयौवनेन,
 वृथा गतं तस्य नरस्य जीवितम् ॥ ८ ॥ अचि-
 न्त्यरूपो भगवान्निरंजनो, विश्वंभरो ज्ञानमयश्चि-
 दात्मा ॥ विशोधितो येन हृदि क्षणं नो, वृथा गतं
 तस्य नरस्य जीवितम् ॥ ९ ॥ रे चित्त चिन्तय
 सदा चरणौ मुरारेः, पारं गमिष्यति भवान् भ-
 वसागरस्य ॥ पुत्रकलत्रमितरे सुहृदः सहायाः,
 सर्व विलोक्य सखे मृग-तृष्णिकांभः ॥ १० ॥ य-
 त्कामा ब्रह्मचर्यं त इन्द्राद्याः, प्राप्तसम्पदः ॥ स्वस्व-
 भोगं परित्यज्य सद्गुरोः शरणं गताः ॥ ११ ॥

॥ दोहा ॥

साम सकलशमशान यह, यावद्भौतिक भावः ।
 सार नहीसंसारमें क्या करिये चित चाव ॥ १ ॥

॥ पद ॥

हुं बलिहारी बैराग्यनी, तीव्रतर शिवकारजी ॥

तुच्छगणे त्रयलोकने, आत्मा संत सुखसारजी ॥
 हुं० टेक ॥ कर्मोपासन साध्यते, लोक अनित्य
 असारजी ॥ पुनरावर्तन लोकनुं, श्रीमुख आप
 उद्धारजी ॥ हुं० ॥ १ ॥ राज्यमले त्रैलोकनुं, मम
 शोक नजायजी ॥ कुंतीतनय एमओचरे, गीता
 गत दर्शायजी ॥ हुं० ॥ २ ॥ धन्य उद्दालक वा-
 लनें, पुत्र शब्द सुधारजी ॥ वचने वांधीं निज-
 तातनें, पोच्यो यमदरवारजी ॥ हुं० ॥ ३ ॥ वर
 त्रयरात्र निवासथी, दाता शैमन उदारजी ॥
 शांति पमाडो मम तातने, वर प्रथम मजारजी
 ॥ हुं० ॥ ४ ॥ अग्नि विद्या बीजेवरें, जेथी जग
 उपकारजी ॥ आत्म विद्या कुंदीजिये, त्रीजुं वर
 निर्धारजी ॥ हुं० ॥ ५ ॥ हुंडामां कां ऊतरे, एमां
 शुं छे सारजी ॥ धीधन पंडित हारेया, ज्ञान
 खडगनी धारजी ॥ हुं० ॥ ६ ॥ भोगी वनावुं आ-

पने, महा-भूमिनुंराजजी ॥ गज रथ हय रामा
 गृहो, भोगो सुख साम्राजजी ॥ हुं० ॥ ७ ॥ वं-
 चन सुणी यम रायनां, सहुमां दोष निहारजी ॥
 आत्मविज्ञान विनानही, अन्यवस्तु लेनारजी ॥
 हुं० ॥ ८ ॥ धन्य विवेक विचारने, सत्य धृति
 वैरागजी ॥ श्रेय चहे तजि प्रेयने, पुत्र तव व-
 डभागजी ॥ हुं० ॥ ९ ॥ धन्य मुनि शुक-वैरा-
 ग्यने, जेनी नाकमां धाकजी ॥ रंभा पधारी वं-
 चवा, वनीआप वराकैजी ॥ हुं० ॥ १० ॥ वचन
 बदी बहुभांतना, कीधुं नाट्य अपारजी ॥ उंची
 नीची ऊछली, चाल्युं चल न लगारजी ॥ हुं० ॥ ११ ॥
 डंड्र तजी सुखसंपदा; गुरुपास निवासजी ॥ ए-
 कोत्तरशतवर्षमां, पाम्यो ब्रह्म प्रकाशजी ॥ हुं० ॥
 ॥ १२ ॥ एवा अन्य अनेकनो, गणतां नावे पा-
 रजी ॥ कृतक विनाशी लोकनी, इच्छामात्र निवा-

रजी ॥ हुं० ॥ १३ ॥ ब्रह्म जिज्ञासा धी धरी,
 सेवे सद्गुरुपायजी ॥ ज्ञान मले संशय टले, शोक
 समूल शमायजी ॥ हुं० ॥ १४ ॥ गिरिजावर
 मरजीकरे, तो दुर्लभ न लगारजी ॥ मालिकशिव
 सर्वात्मा, ज्ञानानंदाकारजी ॥ हुं० ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

साम समाहित संतको, एकहि वचन अमोल ॥
 सुनेशास्त्र शतवर्ष लों, तुलेन ताके तोल ॥ १ ॥
 साम समाहित संतने, लीनो निगम निचोय ॥
 अद्वय सुख संततफुरे, कल्पन करे न कोय ॥ २ ॥
 साम समाहित संतको, शीतल स्वांत सदाय ॥
 नही आन उपमानको, चंदन शशि अल्पाय ॥ ३ ॥
 साम समाहित संगतें, सयो बोध उदीत ॥
 दत्तात्रय जडभरतमुनी, यदूरहूगणरीत ॥ ४ ॥
 साम समाहित संतको, सम पारसवच एक ॥
 पूजालाभ लालच लगे, ताके व्यर्थ अनेक ॥ ५ ॥

साम समाहित सत्य वच, कहत न मन सकुचाय ॥
 पंडित डरपे लोकतें, वचन न सत्य वदाय ॥ ६ ॥
 साम समाहित संतकी, शांति लखावत सेन ॥
 अंतिक आशय सुख सदा, निःसंधीमननेन ॥ ७ ॥
 साम समाहित संतको, अद्भुत सुख एकांत ॥
 विना शांतिनर बावरे, इत उत भटकत भ्रांत ॥ ८ ॥
 साम समाहित भव सदा, जो चाहत चितचेन ॥
 मोदनीय पद पायके, मुदित रहो दिनरेन ॥ ९ ॥
 साम न सुख मन-शांतिविन, शांतिन विनु दृढबोध
 बोध न दृढ-वैराग्यविनु, साथे क्रम अनुरोध ॥ १० ॥
 साम समाहित चित्तमें, सदाविमल वैराग ॥
 अद्वय-बोध-समेतनित, शांतिशुद्धतरजाग ॥ ११ ॥
 साम समाहित संतको, अंतर सुख आराम ॥
 अंतर ज्योति उपेत नित, बाह्य राम उपराम ॥ १२ ॥
 साम समाहित स्वादहिं, स्व-संवेद्य सुखसोइ ॥

आत्मप्रसादज अभयसो, अन्यालंघ न कोइ॥१३॥
 साम समाहित स्वज्ञसो, स्वयं स्वरूपानंद ॥
 अहो अमृतमय-सोमइव, नभ निभ नित निस्पंद ॥
 साम समाहित चित्तविनु, मिटे न मनको खेद ॥
 अद्वय बोध न शांति सुख, विदित बखाने वेद॥१५॥
 साम न सुख संसारमें, याज्ञवल्क्य निज^{गा}द ॥
 निर्णय किय निवेद निज, विविध प्रवृत्ति-विषाद १६
 साम समाहित चित्तविनु, बोध वाल मृतजात ॥
 अभिमत अर्थ न साधहीं मिटे न मन उत्पात॥१७॥
 साम समाहित-चित्तहि^{र्}, याज्ञवल्क्य निजगाम ॥
 गृहिविद्वत्सन्न्यासकों, अद्भुत आत्माराम ॥ १८ ॥
 साम समाहित सर्वदा, संवर्तक साकैान्य ॥
 वामदेव सनकादि शुक, महापुरुष करमान्य ॥१९॥
 सहजावस्था शंकरी, यया शांतिमायाति ॥
 सुखमास्ते शेते सुखं, सुखमायाति च याति ॥२०॥

ज्ञानिजन वाक्य विचारोरे, अनुभव अंगमें
 धारो ॥ टेक ॥ श्रुति स्मृति पदशास्त्र पुराना, कुल
 कंचन कोढेर ॥ निज अनुभव पारसमनि-कनि-
 का, जामें लाख सुमेर ॥ ज्ञानि० ॥ १ ॥ ब्रह्म-
 समाहित ज्ञानिजननको, एक हि वाक्य अ-
 मोल ॥ सुने शास्त्र शतवर्ष अनेक हि, तुले न
 ताके तोल ॥ ज्ञा० ॥ २ ॥ नेति २ क्षर अक्षर
 बाधि, पुरुषोत्तम धी धार ॥ ब्रह्मसमाहित सो
 मुनि ज्ञानी, वृत्तिब्रह्माकार ॥ ज्ञा० ॥ ३ ॥ सोइ
 समाहित संत कहावे, सोइ शिष्य समुजाय ॥
 भूमानंद समाहित चेतोभव, उपशांत सदाय ॥
 ॥ ज्ञा० ॥ ४ ॥ अहोवात आश्चर्य-करी भव-
 मालिक होत मजूर ॥ भूल भई निजकोशन-
 भासे, भूमा सुख भरपूर ॥ ज्ञा० ॥ ५ ॥ प्रति-
 जनको पृष्ठत नरपागल, उपजे क्यों आनंद ॥

उपजे सो आनंद न साचो, मर्म न जाने मन्द ॥
 ज्ञा० ॥६॥ जाग २ जन मोहनिशातें, पुनि २ करत
 पुकार ॥ निगम नगारा गुरुघर वाजे, सुख
 निजघर निर्धार ॥ ज्ञा० ॥ ७ ॥ तेरो आनंद
 पस्यो प्यारे, लोक चतुर्दशमांहि ॥ विनसद्गुरु
 कल अकल अलौकिक, लोक विलोकत नाहिं ॥
 ॥ ज्ञा० ॥ ८ ॥ साची २ वात असल सुन, सा-
 वधान मन कान ॥ यावद्भौतिक भाव सकल-
 शिव, सच्चित्सुख भगवान ॥ ज्ञा० ॥ ९ ॥ तव-
 लग मिथ्याऽध्यास न नाशे, मदनमदादि न
 जात ॥ अगजगव्यापक एक अखंडित, भवत
 नहिं साक्षात ॥ ज्ञा० ॥१०॥ तवलग दीन दुखित
 भवशोकी, मिटत न मोह मनाक ॥ ज्ञानानंद
 सदाशिवपदकी, निज-मनमों न दमाक ॥
 ॥ ज्ञा० ॥ ११ ॥ पद ॥ ११ ॥

॥ श्लोकः ॥

जय शंकर पार्वतीपते, मृडशंभौ शशिखंडमं-
 डन । मदनांतक भक्तवत्सल, प्रियकैलास दया-
 सुधांबुधे ॥ १ ॥ सदुपायकथाखण्डितो, हृदये
 दुःखशरेण खंडितः । शशिखंडशिखंडमंडनं, शरणं
 यामि शैरण्यमीश्वरम् ॥ २ ॥ महतः परितः प्र-
 सर्पतस्तमसो दर्शनभेदिनो भिदे । दिननाथ इव
 स्वतेजसा, हृदयव्योम्नि मर्नागुदेहि नः ॥ ३ ॥ न
 वयं तव चर्मचक्षुषा, पदवीमप्युपवीक्षितुं क्षमाः ।
 कृपयाऽभयदेन चक्षुषा, सकलेनेश विलोकयाशु
 नः ॥ ४ ॥ त्वदनुस्मृतिरेव पावनी, स्तुतियुक्ता
 न हि वक्तुमीश सा । मधुरं हि पयः स्वभावतो,
 ननु कीदृक्स्मितशर्करान्वितम् ॥ ५ ॥ सविपो-
 प्यमृतायते भवान्छवमुंडाभरणोऽपि पावनः ।

१ मृडयति मुण्डयति नर्तनं आदिभिः मृदङ्गयोगेणुद्धो हे मृडः । २ संतुल्यं भवज्ञ-
 स्मारिणि धेनुनाम् । ३ राक्षसम् । ४ द्विबिभुष्यं आमुदि-

भव एव भवांतकः सतां, समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि
 सन् ॥ ६ ॥ अपि शूलधरो निरामयो, दृढवै-
 राग्यरतोऽपि रागवान् । अपि भैक्ष्यचरो महेश्व-
 रश्चरितं चित्रमिदं हि ते प्रभो ॥ ७ ॥ वित्तरत्यभि-
 वाञ्छितं दृशा, परिदृष्टः किल कल्पपादपः । हृ-
 दये स्मृत एव धीमते, नमतेऽभीष्टफलप्रदो भवान्
 ॥ ८ ॥ सहसैव भुजंगपाशवान्विनियुह्णाति न
 द्यावदंतकः । अभयं कुरु तावदाशु मे, गतजीवस्य
 पुनः किमौषधैः ॥ ९ ॥ सविपैरिव भीमपन्नगैर्वि-
 पयैरेभिरलं परिक्षतम् । अमृतैरिव संभ्रमेण
 मामभिर्पिचाशु दयावलोकनैः ॥ १० ॥ मुनयो
 ब्रह्मवोऽथ धन्यतां, गमिताः स्वाभिमतार्थदर्शिनः ।
 करुणाकर येन तेन मामवसन्नं ननु पश्य च-
 क्षुषा ॥ ११ ॥ प्रणमाम्यथ यामि चापरं, शरणं
 कं कृपणाभयप्रदम् । विरहीव विभो प्रियामयं,

परिपश्यामि भवन्मयं जगत् ॥ १२ ॥ वहवो भ-
 वताऽनुकंपिताः, किमितीशान न माऽनुकंपसे ।
 दधता किमु मंदराचलं, परमाणुः कमठेन दुर्धरः
 ॥ १३ ॥ अशुचिं यदि माऽनुमन्यसे, किमिदं
 मूर्ध्नि कपालदाम ते । उत शाठ्यमसाधुसंगिनं,
 विपलक्षमासि न किं द्विजिह्वधृक् ॥ १४ ॥ क्व दृशं
 विदधामि किं करोम्यनुतिष्ठामि कथं भयाकुलः ।
 क्व नु तिष्ठसि रक्ष रक्ष मामयि^१ शंभो शरणागतो-
 ऽस्मि ते ॥ १५ ॥ विलुठाम्यवनौ किमाकुलः, किमु^२रो
 हन्मि शिरश्छिनद्मि वा । किमु रोदिमि रारंटीमि
 किं, कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो ॥ १६ ॥ शिव सर्वग
 शर्व शर्मद, प्रणतो देव दयां कुरुष्व मे । नम
 ईश्वर नाथ दिक्पते, पुनरेवेश नमो नमोऽस्तु ते

१ मयि अनुत्पन्नं कथं नं करोषि. २ विपचिह्नवात् मयसि किम्. ३ अयि
 शंभो इति श्लोमलसंजीवनं गूढाभिप्रायबोधकम्. ४ वसत्यलम्. ५ अतिशयेन
 पुनःपुनः रटनं कुर्ये.

॥ १७ ॥ शरणं तरुणेंदुशेखरः, शरणं मे गिरि-
राजकन्यका । शरणं पुनरेव तावुभौ, शरणं ना-
न्यदुपैमि दैवतम् ॥ १८ ॥ हे विश्वनाथ शिवशंकर
देवदेव गंगाधर त्रिनयन त्रिजगन्निवास ॥ स-
र्वज्ञ सर्वहृदयैकनिवास नाथ संसारदुःखगहना-
जगदीश रक्ष ॥ १९ ॥ अशनं गरलं फणी क-
लापो वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः ॥ मम
दास्यसि किं किमस्ति शंभो तव पादांबुजभक्ति-
मेव देहि ॥ २० ॥ अन्ये त्वादुः ॥ किं भिक्षुणा प्र-
देयं दिगम्बरेणेति वंचनां न कुरु ॥ नहि भूति-
मन्तमन्यं भवतः सुरमंडलीषु पश्यामि ॥ २१ ॥
भिक्षुकोपि सकलेप्सितदाता, श्रेतभूमिनिलयोऽपि
पवित्रः । भूतमित्रमपि योऽभयसत्री, तं विचित्र-
चरितं शिवमीडे ॥ २२ ॥ गरलादः प्रियनागो,
गिरिशो गीर्वाणगुरुरथो गूढः । गेयो मुनिभि-
रसंगैर्गोपो गौरोऽवताद्विधृतगंगः ॥ २३ ॥ श्री-

गौर्या सकलार्थदं निजपदांभोजेन मुक्तिप्रदं । प्रौढं
 विघ्नवनं हरंतमनघं श्रीधुण्डितुंडासिना ॥ वन्दे च-
 र्मकपालिकोपकरणैर्वैराग्यसौख्यात्परं । नास्तीति
 प्रदिशंतमंतविधुरं श्रीकाशिकेशं शिवम् ॥ २४ ॥
 आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं
 यौवनं । प्रत्यायांति गताः पुनर्न दिवसाः
 कालो जगद्भक्षकः ॥ लक्ष्मीस्तोयतरंगभंगच-
 पला विद्युच्चलं जीवितम् ॥ तस्मान्मां शरणा-
 गतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाऽधुना ॥ २५ ॥
 अपराध-सहस्र-संकुलं, पतितं भीमभवार्णवोदरे ।
 अगतिं शरणागतं प्रभो, कृपया केवलमात्मसा-
 त्कुरु ॥ २६ ॥ यत्कृतं यत्करिष्यामि तत्सर्वं न
 मया कृतम् ॥ त्वया कृतं तु फलभुक्त्वमेव पर-
 मेश्वर ॥ २७ ॥ क्रीडार्थं सृजसि प्रपंचमखिलं
 क्रीडामृगास्ते जना यत्कर्माचरितं मया च भ-
 वतः प्रीत्यै भवत्येव तत् । शंभो स्वस्य कुतूह-

लस्य करणं मच्चेष्टितं निश्चितं नित्यं मामक-
रक्षणं पशुपते कर्तव्यमेव त्वया ॥ २८ ॥

पद राग विहाग.

सदाशिव रक्षण मारुं करो ॥ टेक ॥ श्वास
रत्नहर कालप्रवलरिपु, क्षण २ भक्षण परो ॥१॥
पंच विषय-वन भुवमां भटके, मनोव्याघ्र धी हरो॥
स० ॥ २ ॥ अति अगाध दुस्तर भवसागर, ते-
मांथी उद्धरो ॥ स० ॥ ३ ॥ जनि मृति जल चिन्ता
वडवानल, रागादिक जलचरो ॥ स० ॥ ४ ॥
कर्म समीरण तरलतरंगी, जीवविविध विस्तर ॥
स० ॥ ५ ॥ काम क्रोध मद मोह-तिमिगिल,
गजमर्दन संहरो ॥ स० ॥ ६ ॥ विश्वंभर हर
मुजने भरिये, नोचेत्कर वाहरो ॥ स० ॥ ७ ॥
जो असमर्थ उभय करवामां, संज्ञानें परि-
हरो ॥ स० ॥ ८ ॥ ब्रह्मा विष्णु सुरासुरनायक,
भक्तगणी आदरो ॥ स० ॥ ९ ॥ भक्तिविना

वशमां नहि आवो, निष्फल आडंवरो ॥ स० ॥ १० ॥
 मृत्युविभीत मृकंडतनयहित, यमराहारे लरो ॥
 स० ॥ ११ ॥ भद्रायुः शिवयोगीसेवक, भद्रंकर
 शंकरो ॥ स० ॥ १२ ॥ उपमन्युनी अर्ज कबूली
 भक्तभाव अनुसरो ॥ स० ॥ १३ ॥ भक्तिनभाव
 विशुद्ध न बुद्धि, लुं विपयी पामरो ॥ स० ॥ १४ ॥
 माराकृत सामुं नव जोसो, निजवृदने संस्मरो
 ॥ १५ ॥ गुरूपलीरत कुंटिल कलंकी, शशधर
 शेखरधरो ॥ १६ ॥ अधमगणो तेथी तो आलो,
 चरणकमल आसरो ॥ स० ॥ १७ ॥ ज्ञानानन्दनां
 मननी जाणो, बोले सूंवावरो ॥ स० ॥ १८ ॥ पद १२

॥ श्लोकः ॥

गंगापूरप्रचलितजटास्रस्तभोगीन्द्रभीता-
 मालिंगंतीमचलतनयां सस्मितं वीक्षमाणः ॥
 लीलापांगैः प्रणतजनतां नंदयंश्चन्द्रमौलि-
 मोंहध्वांतं हरत्तु परमानंदमूर्तिः शिवो नः ॥ १ ॥

तव कालकूट काटवपरिपहणे पाटवं तदा मन्ये ।
 दारिद्र्याख्यं पास्यसि, सुमनस्तापं यदा भवाब्धि-
 भवम् ॥ २ ॥ आस्तां किं दारिद्रे, शक्तिः स्मरदाहद-
 क्षनयनाग्नेः । हन्त ज्ञातं ज्ञातं, पीडयितुं को भवा-
 श्रितं शक्तः ॥ ३ ॥ वपुषि वहसि भोः शम्भो
 त्वं हि भुजङ्गान् विभूषणत्वेन । शिरसि तु गुरु-
 दाररतं किमहं चरणेऽपि दुःसहो जातः ॥ ४ ॥
 उचितं विभर्षि वपुषि द्विजिह्वसङ्घान् प्रभो
 कृपासिन्धो । सोऽहं न वाथवेत्थं पञ्चमुख विचा-
 रयाखिलं विश्वम् ॥ ५ ॥ विपकण्ठस्य तव शिव,
 प्रभवन्त्याशीविषाः प्रिया इति चेत् । आस्ते
 ममापि वदने, किञ्चिद्यच्छ्रवणमेव मरणपरम् ॥ ६ ॥
 मम नैव सौख्यलिप्ता, देह्यापदमेव किन्त्वपूर्वा
 ताम् । अवलोक्य यत्प्रभावं, प्रभवतु सर्वं सवि-
 स्मयं विश्वम् ॥ ७ ॥ विपदः संतु नः शश्वद्यत्र

यत्र जगद्गुरो । भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवेद-
 र्शनम् ॥ ८ ॥ भव तव नवनवमोद-प्रदमिदम-
 क्षरयुगं हि भवनान्नः । अपवर्गदं पवर्गगमन्त-
 स्थात्मकमनन्ततादायि ॥ ९ ॥ भो भव भणति
 भवान्यदि, सततं मां सौम्यचिन्तयेति वचः ॥
 भवचिन्तन एव सदा, मम मानसमीश भवति
 सोल्लासम् ॥ १० ॥ रचयसि चेद्वच इति मां, कुरु
 चेतश्चंचलं समाधिपरम् । सरहर निरंतरं मे,
 मानसमेतत्समाधिपरम् ॥ ११ ॥ चित्तभूवित्तभू-
 मत्तभूपालकोपासनावासनायासनानाश्रमैः । सा-
 धुतासाधुता साधितासाधिता, किं तया चिन्तया
 चिन्तयामः शिवम् ॥ १२ ॥ शिरसि वहसि जड-
 रूपां, गंगां चरणेऽपि नो मदीयमतिम् । सा

१ भवार्पणारात्मकं तत्र भवतः पवर्गगः पसरयानम्य इति त्रिवेदः.

२ मुक्तिदम्. ३ मानसमीशपरम्. ४ चित्तभू-काय-वित्तभूमेदः ताभ्यां मत्ता ये
 भूपालकाद्येवामुपासनायाः वसना तनूता आयासान्वेया नानाविधैः कृत्वा
 पुराऽस्याहं या भाषुनासीत्तापुनायिनाक्षिता । किं नु साधिता साधिता.

स्वर्णदीनताढ्या, भोगवती चेति चेत्तथैवैषा ॥१३॥
 दोषाकरं तु विभृषे, किमनेन विभो यदर्ध ए-
 वासौ । पूर्णं मां यदि विभृयास्तत्तेस्यात्प्रौढता
 प्रभावस्य ॥ १४ ॥ रागश्चेत्त्वयि निहितस्त्वं तु
 विरागं ददासि चेत्तस्मिन् । परमेश्वरस्य मनसि
 त्रपाङ्कुरः कथमिवापि नोदेति ॥ १५ ॥

॥ पद ॥

सदाशिव संकट सर्व हरो ॥ टेक ॥ अपराधो
 अगणित में कीधा, तेपर नजर न करो ॥ सदा०
 ॥ १ ॥ कर जोडी हुं विनति करुं छुं, ईश्वर चित्त
 धरो ॥ स० ॥ २ ॥ अन्याश्रय तजि राखुं
 तमारो, आश्रय एक ज खरो ॥ स० ॥ ३ ॥
 हरति हरोऽसौ नाम तमारुं, अन्वर्थक अचारो ॥
 स० ॥ ४ ॥ मनहुं मारुं वारभमेछे, अंतर्मुख वि-
 स्तरो ॥ स० ॥ ६ ॥ देहांदिकमां हुं ने मारुं,

शोक मोह संहरो ॥ स० ॥ ७ ॥ सुख करता ए माटे
 शंकर, संज्ञाने अनुसरो ॥ स० ॥ ८ ॥ सत्ता
 अगमां सच्चिजगमां, अंबर सभर भरो ॥ स० ॥ ९ ॥
 अद्वय आनंद जियमां जागे, ते उपाय आदरो ॥
 स० ॥ १० ॥ भव भय संकट मूल अविद्या, ति-
 मिर निवारो परो ॥ स० ॥ ११ ॥ श्रीसद्गुरुवर
 वदन विराजि, वैदिक वागुच्चरो ॥ स० ॥ १२ ॥
 श्रवण मनन निदिध्यास करावि, निज अनुभव
 संचरो ॥ स० ॥ १३ ॥ ज्ञानानंद स्वरूप सदो-
 दित, संतत अंतस्फुरो ॥ स० ॥ १४ ॥ पद १३ ॥

॥ श्लोकः ॥

चेतश्चंचलतां विहाय पुरतःसंधाय कोटिद्वयं ।
 तत्रैकत्र निधेहि सर्वविषयानन्यत्र च श्रीशिवम् ।
 विश्रांतिर्हितमप्यहो क्वनु तयोर्मध्ये तदालोच्यतां ।
 युक्त्यावाऽनुभवेन यत्र परमानंदश्च तत्सेव्यताम् १
 शारदशशांकलचिरे, नारदमुखमोनिगीतगुणनि-

करे । मारदहनचतुरे मे, पारदचलमपि मनश्चिरं
 रमताम् ॥ २ ॥ प्रचरत्यभितः प्रगल्भवृत्त्या
 मदवानेष मनःकडंगरीयः । परिगृह्य नयेन
 भक्तिरज्ज्वा परमं स्थाणु पदं दृढं नयामि ॥ ३ ॥
 चटुर्वा गेही वा यतिरपि जटी वा तदितरो, नरो वा
 यः कश्चिद्भवतु भव किं तेन भवति । यदीयं हृत्पद्मं
 यदि भवदधीनं पशुपते, तदीयस्त्वं शंभो भवसि
 भवभारं च वहसि ॥ ४ ॥ गुहायां गेहे वा बहिरपि
 वने वाद्रिशिखरे, जले वा बह्वौ वा वसतु वसतेः किं
 वद फलम् । यदीयं स्वच्छांतःकरणमपि शंभो
 तव पदे, स्थितं चेद्योगोसौ स च परमयोगी स
 च सुखी ॥ ५ ॥ मनस्ते पादाब्जे निवसतु वचः
 स्तोत्रमणितौ । करौ चाभ्यर्चायां श्रुतिरपि कथा-
 कर्णनविधौ ॥ तव ध्याने बुद्धिर्नयनयुगलं मूर्ति-
 विभवे । परं ग्रन्थान्कैर्वा परमशिव जाने बहुमतान्

॥ ६ ॥ सारसना ते नयने तावेव करौ स एव
 कृतकृत्यः । या ये यौ यो भर्ग वदतीक्षाते सदा-
 र्चतः स्मरति ॥ ७ ॥ गभीरे कासारे विशति
 विजने घोर-विपिने, विशाले शैले च भ्रमति कु-
 सुमार्थ जडधिया । समर्प्येकं चेतःसरसिजमु-
 मां नाथ भवते, सुखेनैव स्थातुं जन इह न जानाति
 किमहो ॥ ८ ॥ भज भज शंकरदेवं, त्यज त्यज
 तृष्णां दुरत्ययां विषये । इच्छसि भवमुक्तिं चेत्स्वां-
 तं शंभौ सदाऽऽर्धेत्स्व ॥ ९ ॥

॥ श्लोकः ॥

किंवाऽनेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन
 किं किं वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभिर्देहेन गेहेन किम् ।
 ज्ञात्वैतत्क्षणभंगुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः,
 स्वात्मार्यं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम्
 ॥ १० ॥ भक्तिविना चश नोहे, वीण्याने वा

मृदंगनादानें । कन्यादानफलातें, पावे कैसा मृदंग-
नादानें ॥ ११ ॥

॥ पद ॥

सदाशिवशंकरमां मन धरो ॥ टेक ॥ अन-
न्यभाव आराधन करिये, आश्रय एकज खरो ॥
सदा० ॥ १ ॥ वाजीगरनी मिथ्या-वाजी, पूरण
प्रीत न करो ॥ सदा० ॥ २ ॥ तनधनदोलत
नारसुतादिक, काल अनलनो चरो ॥ स० ॥ ३ ॥
भूतदीप छायाजलधरनी, स्थिर नहि ए आसरो ॥
स० ॥ ४ ॥ श्वासोच्छ्वासा वेग चलावे, काल-क्र-
कंच आकरो ॥ स० ॥ ५ ॥ माथाऊपर मोतभ-
मेछे, अनवधान परिहरो ॥ स० ॥ ६ ॥ टकाटका
रटता कां भटको, चानसने अनुसरो ॥ स०
॥ ७ ॥ धार्युं थाशे धून धणीनुं, प्रेरक परमेश्वरो ॥
स० ॥ ८ ॥ लौकिक वैदिककर्म न छोडो, नि-

ष्कामें आचरो ॥ स० ॥ ९ ॥ प्रेमनियम सतश्र-
 द्धाभक्त्या, शिवसेवा विस्तरो ॥ स० ॥ १० ॥
 भक्ति विना हर हाथ न आवे, गान तान उपचरो ॥
 स० ॥ ११ ॥ सत्यप्रेमवश विश्वविनेता, नारी किंवा-
 नरो ॥ स० ॥ १२ ॥ विश्वचराचरजलथलव्यापी,
 एकलचिदअम्बरो ॥ स० ॥ १३ ॥ सत्ताभान स-
 मानसकलगत, नामरूप व्यभिचरो ॥ स० ॥ १४ ॥
 रागद्वेषमदमदन हननकरि, नम्र भाव भुवि चरो ॥
 स० ॥ १५ ॥ सुखदुख समता मोह न ममता,
 भेद भाव कर परो ॥ स० ॥ १६ ॥ खातां पीतां
 हरतां फरतां, परमेश्वर संस्मरो ॥ स० ॥ १७ ॥ ईश
 विसारी लक्ष चोरासी, फेरा साने फरो ॥ स०
 ॥ १८ ॥ साची प्रीत हशे जो हरमां, नडसे नहि
 व्यवहरो ॥ स० ॥ १९ ॥ कृष्ण कहे कौंतेय युद्धपण
 करो मामनुस्मरो ॥ स० ॥ २० ॥ सद्गुरुमुख सारी
 विध समजो, आत्मा ज्ञानेश्वरो ॥ स० ॥ २१ ॥
 पद ॥ १४ ॥

॥ पद ॥

सदाशिव एकज धियमां धरो ॥ टेक ॥ पंच-
 देवमां भेद न राखो, स्मार्तज मत शंकरो
 ॥ सदा० ॥ १ ॥ गौरि दिनेश गणेश रमेश्वर,
 शंकर माहेश्वरो ॥ स० ॥ २ ॥ जेमां प्रेम भजो ते
 नामें, छे एकज ईश्वरो ॥ स० ॥ ३ ॥ एक
 खांडना सकल खिलौना, ईश्वर सचराचरो ॥
 स० ॥ ४ ॥ कारणरूपें एकज ईश्वर, कार्यरूप बहु
 तरो ॥ स० ॥ ५ ॥ एक देवनें वन्दे निन्दे,
 अन्यदेव पामरो ॥ स० ॥ ६ ॥ लोचन हीन
 मल्या गुरु लोभी, अंधगजांगजागरो ॥ स०
 ॥ ७ ॥ राग द्वेष अवकाश न दीसे, व्यापक वि-
 श्वंभरो ॥ स० ॥ ८ ॥ व्यवसायात्मिक एकज
 बुद्धि, एकज ईश्वर खरो ॥ स० ॥ ९ ॥ अव्यव-
 सायी बहुधा बुद्धि, पावू पीर वाछरो ॥ स० ॥
 ॥ १० ॥ यद्यपि सहुमां शंकर राजे, भावगफलदा

तरो ॥ स० ॥ ११ ॥ मुक्ति एक अद्वय-विज्ञाने,
 सर्वात्मा श्रीहरो ॥ स० ॥ १२ ॥ जाग्याविण निज
 स्वप्न विनाश न निजघर पाटंतरो ॥ स० ॥ १३ ॥
 मन निर्मल निश्चलता साधन, कर्म उपासन
 करो ॥ स० ॥ १४ ॥ निष्कामें ईश्वरनें सेवे, फल
 आंतर ऊजरो ॥ स० ॥ १५ ॥ सहकामें सेवे ते
 लेवे, फलमायिकनापरो ॥ स० ॥ १६ ॥ काम्यकर्ममां
 तेना फलमां, विघ्न बहुल अंतरो ॥ स० ॥ १७ ॥
 मालिक सहनुो अंतर्यामी, तत्रांतर नहि वरो ॥
 स० ॥ १८ ॥ काम क्रोध लोभादिक बैरी, नहि
 तेनें आदरो ॥ स० ॥ १९ ॥ भूतभाविनी चिंता
 त्यागी, वर्तमान अनुसरो ॥ स० ॥ २० ॥
 दुर्वासन मनमां जागे तो, शिव ३ उच्चरो ॥ स०
 ॥ २१ ॥ आपत्काल अनामय रेवुं, धीरज ना
 परिहरो ॥ स० ॥ २२ ॥ ज्ञानानंद गुरुमुख सुख-
 कारी, शंकर मत आसरो ॥ स० ॥ २३ ॥ पद ॥ १५ ॥

सदाशिव बांछा पूरण करो ॥ टेक ॥ तव सेव-
 नमें जीवन जावे, सारो सो दिल धरो ॥ स० ॥ १ ॥
 मंगलकर हर नाम तिहारे, रसना कर उच्चरों
 ॥ स० ॥ २ ॥ विमलनयन हरकों हर हेरों,
 नांतरकर आंधरो ॥ स० ॥ ३ ॥ चिदाकाशमें
 चित्र न देखों, नहि क्षर वा अक्षरो ॥ स० ॥ ४ ॥
 रूप तिहार निहार सकल जग, परउपकार विस्तरों
 ॥ स० ॥ ५ ॥ मनमें संतत ध्यान तिहारो,
 अंतराय परहरो ॥ स० ॥ ६ ॥ श्रवन करी
 सुनिहों यश थारे, सगुन अगुन नांतरो ॥ स० ॥
 ७ ॥ स्थावर जंगम हरमय हेरी, भुविपतेत
 मम शिरो ॥ स० ॥ ८ ॥ धी-कन्या अर्पणमें
 करिहों, सेवामें स्वीकरो ॥ स० ॥ ९ ॥ अहंकार
 गज अर्पण करिहों, तदारूढ संचरो ॥ स० ॥ १० ॥
 ब्रह्मेवाहं निष्ठा अंकुश, मन तुरंग रावरो, ॥ स० ॥

॥ ११ ॥ जनताऽऽरामविस्तार रमणहित, निज
 साम्राज्य संस्मरो ॥ स० ॥ १२ ॥ देहरूप देवा-
 लय राजो, अथवा बाहिर फिरो ॥ स० ॥ १३ ॥
 त्वत्ता मत्ता भेद-भरमभर-हरण कैरण विस्तरो
 ॥ स० ॥ १४ ॥ ज्ञानानंद प्रतिबंध-अविद्या,
 सहविलास संहरो ॥ स० ॥ १५ ॥ पद ॥ १६ ॥

मुमुक्षु प्रत्यक् पूजन करो । सदाशिव मानस
 पूजन करो ॥ टेक ॥ सर्वात्मा शंकरने जाणि,
 भेदभाव परिहरो ॥ मुमुक्षु० ॥ १ ॥ नामरूप
 सगला शंकरनां, वास्तव सहुधी परो ॥ मु० ॥
 ॥ २ ॥ अंतर्मुख मन सदन-प्रवेशन, श्रद्धा आ-
 सन थिरो ॥ मु० ॥ ३ ॥ मायामय निर्माल्य
 विसर्जन, ज्ञान स्नान सुंदरो ॥ मु० ॥ ४ ॥ ब्रह्मा-
 कार प्रवाह मनोवृत्त, जलधारा सेचरो ॥ मु० ॥
 ॥ ५ ॥ धरारूपधर हर वरभावन गंधसमर्पण

खरो ॥ मु० ॥ ६ ॥ जगदाकाश-कुसुम सम-
 जाणो, पद्मार्पण शंकरो ॥ मु० ॥ ७ ॥ उपशम-
 बोध. विराग त्रिदलमय विल्वार्पण आदरो
 ॥ मु० ॥ ८ ॥ वायु तेज ईश्वरमय धारी, धूप
 दीप संचरो ॥ मु० ॥ ९ ॥ निजानंद नैवेद्य निवे-
 दन, प्रीति जनक पाधरो ॥ मु० ॥ १० ॥ शंकर
 शंकर एषमनीषा, अमृत अर्पण नरो ॥ मु० ॥
 ॥ ११ ॥ नाहं कर्ता भोक्ता भावन, कर-प्रक्षालन
 चरो ॥ मु० ॥ १२ ॥ चिद्धासन मुखवास समर्पो
 धी-दुर्वासन हरो ॥ मु० ॥ १३ ॥ दृश्य विलक्षण
 सच्चित्सुखधन, भूमाहं भाखरो ॥ मु० ॥ १४ ॥
 एवं निदिध्यासन-वचनानि, शंकर स्तुति वि-
 स्तरो ॥ मु० ॥ १५ ॥ वचन विसर्जन श्रौत द-
 क्षिणा, महा मौन मन धरो ॥ मु० ॥ १६ ॥ एव-
 मेव अखंडा पूजा, सदा भवतु नांतरो ॥ मु० ॥

॥ १७ ॥ भेद विभेदन प्रत्यक्परयोरेतमेव वरवरो
 ॥ १८ ॥ कृष्णभिक्षुगीर्वाणगिरानिगमान्त-
 वचन अनुसरो ॥ मु० ॥ १९ ॥ ज्ञानानंद दि-
 व्यात्र प्रदर्शित । नरभाषाश्रुतिशिरो ॥ मु० ॥
 ॥ २० ॥ पद ॥ १७ ॥

अथ शिवमानसपूजा ।

॥ॐ॥ प्रत्यक् प्रवणधीवृत्त्या हृद्गृहांतःप्रवेशनम् ॥
 मंडपांतः प्रवेशोऽयं पूजार्थं तव शंकर ॥ १ ॥
 गुरुवाक्येषु विश्वास स्थितिरासनसंस्थितिः ॥
 सर्वसंकल्पसंत्यागः संकल्पस्तव पूजने ॥ २ ॥
 सर्वाधारस्त्वमेवेति निश्चयः पीठपूजनम् ॥
 ध्यातृध्यानध्येयबाधोध्यानमानंदकारणम् ॥३॥
 दृश्यप्रमार्जनं चित्ताग्निर्माल्यस्य विसर्जनम् ॥
 अहंब्रह्मेत्यखंडाया वृत्तिधारामिपेचनम् ॥ ४ ॥
 पृथिव्यात्मकतादृष्टिस्तव गंधसमर्पणम् ॥
 बोधोपशमवैराग्यं त्रिदलं विल्वमर्पये ॥ ५ ॥

आकाशात्मकतावोधः कुसुमार्पणमीश्वर ॥
 जगदाकाशपुष्पोभमिति पद्मं समर्पये ॥ ६ ॥
 वायुतेजोमयत्वं ते धूपदीपावनुत्तमौ ॥
 दृश्यासंभवबोधेन निजानंदेन तृप्तता ॥ ७ ॥
 सर्वतः प्रीतिजनकं नैवेद्यं विनिवेदये ॥
 जलात्मकत्वबुद्धिस्तु पीयूषं तेऽर्पये पिव ॥ ८ ॥
 कर्तव्येष्वप्रसक्तिस्तु हस्तप्रक्षालनं तव ॥
 दुर्वासनापरित्यागस्तांचूलस्य समर्पणम् ॥ ९ ॥
 वाचां विसर्जनं देव दक्षिणा श्रुतिसंमता ॥
 फलाभिसंधिराहित्यं फलार्पणमनुत्तमम् ॥ १० ॥
 अहमेव परं ब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणम् ॥
 निष्कलं निष्क्रियं शांतं निर्विकल्पं निरंजनम् ॥ ११ ॥
 एवं निदिध्यासवाक्यं स्तुतिः प्रियकरी तव ॥
 नामरूपाणि न त्वत्तो भिन्नानीति मतिस्तु या ॥ १२ ॥
 तव पुष्पांजलिः शंभो सर्वत्रोत्कीर्णपुष्पकः ॥
 स्वप्रकाशात्मबुद्धिस्तु महानीराजनं तव ॥ १३ ॥

प्रादक्षिण्यं सर्वतस्ते व्याप्तिबुद्धिः स्मृतं शिव ॥
 त्वमेवाहमिति स्थित्या लीनता प्रणतिस्तव ॥१४॥
 शुद्धसत्त्वस्याभिवृद्धिश्छत्रं तापापनोदनम् ॥
 रजस्तमस्तिरस्कारश्चामरांदोलने तव ॥ १५ ॥
 निजानंदपराघूर्णदोलनांदोलने वस ॥
 धन्योऽहं कृतकृत्योऽहमिति गानं तव प्रियम् ॥१६॥
 निरंकुश महातृप्त्या नर्तनं ते मुदे शिव ॥
 नानाविधैः शब्दजालैर्जृम्भणं वाद्यमुत्तमम् ॥१७॥
 शब्दातिगत्वबुद्धिस्तु कल्याणमिति डिंडिमः ॥
 वेगवत्तरंगतासौ मनोऽश्वस्ते समर्पितः ॥ १८ ॥
 अहंभावमहामत्तगर्जेन्द्रो भूरिलक्षणः ॥
 तत्र देहाद्यनारोपनिष्ठा दृढतरोंऽकुशः ॥ १९ ॥
 अद्वैतबोधदुर्गोऽयं यत्र शत्रुर्न कश्चन ॥
 जनतारामविस्तारो रमत्वात्र यथासुखम् ॥ २० ॥
 कल्पनासंपरित्यागो महाराज्यं समर्पये ॥
 भोक्तृत्वाध्यासराहित्यं वरं देहि सहस्रधा ॥ २१ ॥

अखंडा तव पूजेयं सदा भवतु सर्वदा ॥
 आत्मत्वात्तव मे सर्वपूजैवास्ति न चान्यथा ॥२२॥
 इमां पूजां प्रतिदिनं यः पठेत् यत्र कुत्रचित् ॥
 सद्यः शिवमयो भूत्वा मुक्तश्चरति भूतले ॥ २३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्कृष्णानंदसर-
 स्वतीविरचिता शिवमानसपूजा समाप्ता ॥

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ॥
 कामदं मोक्षदञ्चैव ओंकाराय नमो नमः ॥ १ ॥
 नमन्ति ऋषयो देवा नमन्त्यप्सरसांगणाः ॥
 नरा नमन्ति देवेशं नकाराय नमो नमः ॥ २ ॥
 महादेवं महात्मानं महाध्यानं परायणम् ॥
 महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः ॥ ३ ॥
 शिवं शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रहकारिणम् ॥
 शिवमेकपदं नित्यं शिकाराय नमो नमः ॥ ४ ॥
 वाहनं वृषभो यस्य वासुकिः कंठभूषणम् ॥
 वामे शक्तिधरं देवं वकाराय नमो नमः ॥ ५ ॥

यत्र यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ॥

यो गुरुस्सर्वदेवानां यकाराय नमो नमः ॥ ६ ॥

पडक्षरमिदं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥

शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ७ ॥

इति पडक्षरस्तोत्रं समाप्तम् ॥

नागेंद्रहाराय त्रिलोचनाय, भस्मांगरागाय महे-

श्वराय । देवाधिदेवाय दिगंबराय, तस्मै नकाराय

नमः शिवाय ॥ १ ॥ मातंगचर्माम्बरभूषणाय, सम-

स्तगीर्वाणगणार्चिताय ॥ त्रैलोक्यनाथाय त्रि-

पुरान्तकाय, तस्मै मकाराय नमः शिवाय ॥ २ ॥

शिवाभुखांभोजविकाशनाय, दक्षस्य यज्ञस्थिति-

नाशकाय ॥ चन्द्रार्कवेश्वानरलोचनाय, तस्मै

शिकाराय नमः शिवाय ॥ ३ ॥ वशिष्टकुभोजव-

गोतमादि-मुनीन्द्रबन्धाय गिरीश्वराय ॥ श्री-

नीलकंठाय वृषध्वजाय, तस्मै वकाराय नमः

शिवाय ॥ ४ ॥ यज्ञस्वरूपाय जटाधराय, पिना-

कहस्ताय सनातनाय ॥ नित्याय शुद्धाय निरं-
जनाय, तस्मै यकाराय नमः शिवाय ॥ ५ ॥ पञ्चा-
क्षरमिदं पुण्यं, यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥ शिवलो-
कमवाप्नोति, शिवेन सह मोदते ॥ ६ ॥

इति शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं ।

अथारार्तिका लिख्यते ॥

ॐ नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपा-
दाक्षिशिरोरुवाहवे ॥ सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥ १ ॥ हरिः ॐ
एकं पूर्णं नित्यं, सर्वाधिष्ठानं, हर० २ ॥ नि-
ष्कल निर्मल देवं, वन्दे सर्वेशं ॥ सत्यं शान्तं
सर्वानन्दं, चैतन्याभरणं, हर० २ ॥ कर्माध्यक्षं
केवल सर्वाङ्तरभूतं ॐ हरहरहर महादेव ॥ १ ॥
चंडाङ्गिन्द्रोपेंद्राः शीतांशुर्वायुर्हर० २ ॥ अग्नि-
र्मृत्युर्देवा भीत्या तत्र शंभो ॥ तंतं खंखं सर्व व्या-
पारं कर्तुं हर० २ ॥ उन्निद्रास्ते नित्यं वर्तते

नीतौ, ॐ हर हर० ॥ २ ॥ ब्रह्माविष्णू साहंकारौ,
 ऊर्ध्वमधोयातौ, हर० २ ॥ ऐश्वर्यांतं गंतुं शीघ्रं ते
 शंभो ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं, पारं नायातौ हर० २ ॥
 भ्रांत्वा निरहंकारौ शरणं ते यातौ ॐ हरहर०
 ॥ ३ ॥ पूजानिष्ठो विष्णुर्नेत्रं ते पादे धृत्वा,
 हर० २ ॥ त्रैलोकस्याविरतं साम्राज्यं भजते ॥
 अत्यंतं ते भक्तिं कृत्वा, पौलस्त्यो मानी हर० २ ॥
 गीर्वाणानां व्रातं स्वाधीनं कुरुते, ॐ हरहर० ॥ ४ ॥
 देवा दैत्या गंधर्वाद्या, लोके चानंताः हर० २ ॥
 ऐश्वर्यं ते प्राप्य स्वानंदीभूताः ॥ शुद्धो बुद्धो
 मुक्तो, नित्यस्त्वं देव, हर० २ ॥ अर्वाचीनं यत्त-
 त्सर्वं त्वं भासि, ॐ हरहर० ॥ ५ ॥ भूतेशस्तव-
 मेतं, सायं यो धीते, हर० २ ॥ धर्मार्थं शुभकामं
 कैवल्यं भजते ॥ भक्तिश्रद्धानिष्ठो, बाह्यांतरपूतः,
 हर० २ ॥ देवादीनामिष्टं सन्निधिरिगीतं, ॐ
 हरहर० ॥ ६ ॥

वन्दे देवसुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं,
 वन्दे पद्मगभूषणं मृगधरं, वन्दे पशूनां पतिम् ॥
 वन्दे सूर्यशशांकवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं,
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शंकरम्
 ॥ १ ॥ कर्पूरगौरं करुणावतारं, संसारसारं भुज-
 गेंद्रहारम् ॥ सदा वसंतं हृदयारविन्दे, भवं भवा-
 नीसहितं नमामि ॥ २ ॥ असितगिरिसमं
 स्यात्कज्जलं सिंधुपात्रे, सुरतरुवर-शाखा-लेखनी
 पत्रमुर्वी ॥ लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व-
 कालं, तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ ३ ॥
 शांताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं, विश्वाधारं
 गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम् ॥ लक्ष्मीकांतं क-
 मलनयनं योगिभिर्घ्यानगम्यं, वन्दे विष्णुं भव-
 भयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥ ४ ॥ त्वमेव माता च
 पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥ त्वमेव
 विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ ५ ॥

हरशिवशंकर गौरीशं, वन्दे गङ्गाधरमीशं ॥ रुद्रं
 पशुपतिमीशानं, कलये काशीपुरनाथम् ॥ जय
 शंभो जय शंभो शिव गौरीशंकर जय शंभो० ॥
 महादेव शिवशंकर शंभो उमाकांत हर त्रिपुरारे
 ॥ मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन् गङ्गाधर मृड मदन-
 नारे जय शंभो० ॥ ६ ॥

अथ पुष्पांजलिः

हरं हरिं पद्मभवं वसिष्ठं, शक्तिं च तत्पुत्रपरा-
 शरं च । व्यासं शुक्रं गौडपदं महातं गोविन्दयोगी-
 द्रमथास्य शिष्यम् ॥ १ ॥ श्रीशंकराचार्यमथास्य
 पद्म-पादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ॥ तं तोटकं
 वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरुन्संततमानतोसि ॥ २ ॥
 विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरी-तुल्यं निजांतर्गतं ।
 पश्यन्नात्मनि मायया वहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ॥
 यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं ।
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥ ३ ॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं ।
 विश्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
 एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी-साक्षिभूतं ।
 भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥४॥
 वेदांता यस्य वदने वेदवेद्यं हृदि स्थितम् ।
 कैवल्यं च करे यस्य तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ५ ॥
 शंकरं शंकराचार्यं केशवं वादरायणम्—।
 सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवंतौ पुनः पुनः ॥ ६ ॥
 ब्रह्मानन्दे निमग्नाय शांताय ज्ञानमूर्तये ।
 प्रपन्नदेवतरवे देवाय गुरवे नमः ॥ ७ ॥
 स्मारं स्मारं जनिमृतिभयं जातनिर्वेदवृत्ति ।
 ध्यायं ध्यायं पशुपतिमुमाकान्तमन्तर्निर्षणम्
 पायं पायं सपदि परमानन्दपीयूषधारां ।
 भूयो भूयो निजगुरुपदांभोजयुग्मं नमामि ॥८॥
 यस्मात्कृपापरवशो मम दुश्चिकित्सं ।
 संसाररोगमपनेतुमसि प्रवृत्तः ।

त्वत्पादपंकजरजः शिरसा दधान-
स्त्वामाशरीर-पतनादहमप्युपासे ॥ ९ ॥

श्रीगोविंदनामध्वनिः ।

गोविंद गोपाल रे, जय राधे गोविंद । राधे
गोविंद बाल मुकुंद० २ गोविंद गोपाल रे ।
जय राधे० ॥ टेक ॥

दीनानाथ दयाल रे । जय० १ ॥

केशव कृष्ण कृपाल रे । जय० २ ॥

सुन्दर श्याम तमाल रे । जय० ३ ॥

शोभत उर वनमाल रे । जय० ४ ॥

सुमरत करत निहाल रे । जय० ५ ॥

काटत मायाजाल रे । जय० ६ ॥

मुरली वाद विशाल रे । जय० ७ ॥

माधुर शब्द रसाल रे । जय० ८ ॥

नंद यशोदा बाल रे । जय० ९ ॥

नटवर नाटक ख्याल रे । जय० १० ॥

कुंचित मस्तक वाल रे । जय० ११ ॥
 भंजन जन जंजाल रे । जय० १२ ॥
 यत्र न कर्म न काल रे । जय० १३ ॥
 मारण कंस कराल रे । जय० १४ ॥
 धारण धरण धराल रे । जय० १५ ॥
 विश्व चराचर पाल रे । जय० १६ ॥
 तारण तरण तराल रे । जय० १७ ॥
 कमलनयन नँदलाल रे । जय० १८ ॥
 तिलक सुशोभित-भाल रे । जय० १९ ॥
 शोभित कंठ प्रवाल रे । जय० २० ॥
 हरण भक्त-उर-साल रे । जय० २१ ॥
 मानस वास मराल रे । जय० २२ ॥
 भजत भक्त वरचाल रे । जय० २३ ॥
 कर लीनें करताल रे । जय० २४ ॥
 प्रभुपद प्रेम न जाल रे । जय० २५ ॥
 कीर्तन कर संभाल रे । जय० २६ ॥

मुक्तिद माप मयाल रे । जय० २७ ॥

ज्ञानानंद दलाल रे । जय० २८ ॥ पद १८

विश्वदुःखिः पद १९

सुखकर एक गुरुचा संग ॥ ध्रु० ॥ संगें
गुरुच्या हृदया सुचती, विमल प्रीतिचे रंग ॥
सुख० ॥ १ ॥ गुरुसंगाला शिवति न केव्हां,
वियोग आशाभंग ॥ सुख० ॥ २ ॥ गुरुपदा-
म्बुज अक्षय रसयुत, मन्मन हो इह भृंग ॥
सुख० ॥ ३ ॥ काय जर्गी तत्समागर्मी तीं, सर्व
सुखें हो दंग ॥ सुख० ॥ ४ ॥

॥ अभंग ॥

खड्गाहुनि तीक्ष्ण आह्मी सद्गुरुशिष्य, लाजवुं
फुलास मार्दवानें ॥ १ ॥ जगाचा आमुचा सदा
उभा दावा । जगाचीच सेवा रुचे आह्मा ॥ २ ॥
सदाचे भिकारी सदाचे श्रीमंत । निंदित वंदित
दोन्ही आह्मी ॥ ३ ॥ सदाचे मेलेले सदाचे

जीवंत । अलौकिक गुरु करी आह्वा ॥ ४ ॥ दास
ह्मणे आह्मी सदा वाटलेले । आह्मीच सोंवळें
सद्गुरुसंगें ॥ ५ ॥

पद २०

तुज सोडुनि सद्गुरु जाऊं कुठें ॥ ध्रु० ॥ वि-
रह तुझारे नरक भयंकर, भासे प्रलयानळ पेटे ॥
तुज० ॥ १ ॥ धर्मरवि तूं क्षणभर नसतां, मम
हृत्कोशीं तम दाटे ॥ तुज० ॥ २ ॥ तुज वांचु-
निया मार्ग जर्गी ह्या, मज दिसती तितुके
खोटे ॥ तुज० ॥ ३ ॥ पापी खट नट मी मज
माझें, तुजविण भारी भय वाटे ॥ तुज० ॥ ४ ॥
उलटें मन्मन तुजविण दुसरा, कोण जर्गी ह्या
करि सुलटें ॥ तुज० ॥ ५ ॥ मम जीवन तूं
जगदुद्धारा, मेलोंसें तुजविण वाटे ॥ तुज० ॥ ६ ॥
सहवासाहुन तुझ्या मलारे, स्वर्गाचें सुख नच
मोठें ॥ तुज० ॥ ७ ॥

॥ अभंग ॥

मनांत जनांत वनांत कुठेंही, । गुरुविण कांहीं
 दिसों नये ॥ डोळ्या पुढें गुरु सदैव दिसावा ।
 नाहिं तरि व्हावा आंधळा हा ॥ अंधपणें जग
 नाहींसं होईल । गुरुच दिसेल जेथें तेथें ॥ विद्या
 ती अविद्या गुरुविण सारी । माझा मीहि वैरी
 गुरुविण ॥ दास ह्मणे माझा गुरु आहे जेथें ।
 माझा स्वर्ग तेथें सर्वकाळ ॥ ५ ॥

पद २१

हर्ष करारे गुरुचरणीं लक्ष धरा रे ॥ ध्रु० ॥ गेलें
 वय हें निघूनि गेलें, तितुकें जवळ मरणही आलें,
 ह्यानें कितिदा तरि शिकवीलें, सकल नरा रे गुरु०
 ॥ १ ॥ लभ्य न पुनरपि गेली घटका, ह्यास्तव
 सोडुन गोंधळ लटका, अभिमानाला देऊन
 झटका, प्रेम बरा रे ॥ गुरु० ॥ २ ॥ हाणो कोणि
 शिरावरि काठी, घालो माळ फुलांची कंठीं,

जग हें सोडुं नका गुरुसाठीं, मी विसरा रे ॥ गुरु०
 ॥ ३ ॥ क्रोधें होउं नका वैरागी, मोहें गुंतुं नका
 उपभोगीं, परि सद्गुरुला पटण्याजोगी, वृत्ति धरा रे,
 गुरु० ॥ ४ ॥ यास्तव चोर लुटारु येति, फसवे देव
 नराचा करिति, शरणें जीवित त्या लघु वित्ति,
 पथ न वरा रे ॥ गुरु० ॥ ५ ॥ ज्याला गोड जगाचा
 मान, तो नर होय जगाचा श्वान, कंटकमुकुटा-
 साठीं मान, पुढति करा रे ॥ गुरु० ॥ ६ ॥ उडते
 जिकडे तिकडे धूळ, खेळति खेळ वहकले बाळ,
 जाजा आणा त्या गुरु जवळ, करुन त्वरा रे ॥
 गुरु० ॥ ७ ॥ माझा गुरु तसें म्यां व्हावें, जगता-
 साठीं देह झिजावें, बोधानंतर तृप्ति भुंजावे,
 हेतु वरा रे ॥ गुरु० ॥ ८ ॥

॥ अमंग ॥

नको नको काहीं दुर्जे मज देवा, घडो तव
 सेवा अहोरात्र ॥ १ ॥ जगाची ह्या चिंता, करीं

तूंच देवा, सांगितल्या कामीं ठेवीं मज ॥ २ ॥
 नको मज वित्त नको मज नांव, तुझ्यासाठीं
 धाव माथां पडो ॥ ३ ॥ चाकर मोलाचा नको
 मज करूं, तुझें मी लेंकरूं गुरु देवा ॥ ४ ॥
 लेकरपणा हा वाढताच राहो, सदा पूर वाहो
 आनंदाचा ॥ ५ ॥ तुझ्या कार्जीं माझें जिणें हें
 सरावें, हेंचि दान द्यावें कृपाघन ॥ ६ ॥ दास
 ह्मणे देवा आतां हीच आशा, इतर विनाशा
 हेतु जावो ॥ ७ ॥

पद २२

तव सहवास घडावा गुरु हो क्षणभर विरह
 नसावा ॥ ध्रु० ॥ राहो सुंदर सदनीं नगरीं,
 किंवा रानीं पर्वतकुहरीं । देह गुरू हा माझा,
 कोठें ही मग स्वर्गच जीवा ॥ तव० ॥ १ ॥
 मिळोत पडूस अत्रें खाया, कंदमुळें वा मज
 गुरुराया ॥ तूं जवळी मम असतां अमृतानुभ-

वच. मज तो 'व्हावा' ॥ तव० ॥ २ ॥ मृदुल
 फुलांची सुखकरं शय्या । किंवा प्रस्तरे खंड नि-
 जाया । हृदया तव टेकोनि असतां । कष्ट न
 शब्द हि ठावा ॥ तव० ॥ ३ ॥ हे प्रियकंदा सर्व
 सुखाचा । घे घे माझे तनु, मन वाचा ॥ सद्गुरु
 मंत्रिय सद्गुरु । अविनाशी तूं मात्र विसांवा ॥
 तव० ॥ ४ ॥

अभंग.

हेचि दान देगा देवा । घडो नित्य तुझी
 सेवा ॥ तुझ्या प्रीत्यर्थ विचार । घडो उच्चार
 आचार ॥ तुझी इच्छा तीच माझी । सदा असों
 दे देवाजी । तुझा लेंकरूं मी देवा । घेईं वाप
 सम सेवा ॥ तुझे चिंतन जीवन । मृत्यु तुझे
 विस्मरण ॥ दास हाणे पुरे झालें, सर्व वैभव
 हाता आलें ॥

पद २३

गुरुविण मज कोण पार करिल करिल करिल
 करिल॥मी पापी दोषनिधि चंचल अति पूर्ण कुधी,
 गुरुविण मज कोण हृदि धरिल धरिल धरिल
 धरिल ॥ गुरु० ॥ १ ॥ दुर्बल मी नीच भंड दुर्वि-
 चार करि उदंड, गुरुविण मम पाप दंड कवण
 भरिल भरिल भरिल ॥ गुरु० ॥ २ ॥ बंदू जन
 मज निंदू, तोच मात्र दया सिंधु हा माझा प्रिय
 वंधु ह्याणुन वरिल वरिल वरिल ॥ गुरु० ॥ ३ ॥
 आंवरील सांवरील तोच मला, वागवरील चिंता
 भय मोह सकल हरिल हरिल हरिल हरिल ॥
 गुरु० ॥ ४ ॥

अभंग.

सद्गुरु देववाप आई । उणे मला कांहीं नाहीं,
 कशाला मी द्रव्य मागूं । व्यर्थ लोभामागें लागूं॥
 नको मनुष्यांत कीर्ति । कीर्ति नव्हे ती फजीति ॥

ज्ञान येथलें अज्ञान, मान पोरांचें खेळण ॥
 तुझ्यावांचून सद्गुरु राया । उरे कांहीं न मागाया ॥
 देणें तरी हेंचि देई, नित्य माझे मनिं राहीं ॥
 सद्गुरु शिष्याचें वैभव । दास झणे तूंचि देव ॥७॥

पद २४

जगदुद्धारक प्रभु सद्गुरुला नित्य मुखें गावें ।
 ध्यावें पुढती नित्य वधावें हेंच मला ठावें ॥
 परात्पराच्या ज्या शब्दांनीं विश्वेंहीं दिसती ।
 आदि अंत भावना ज्यामधें अंतर्गत होती ॥
 भूत भव्य कीं वर्तमान हें ज्या प्रभुच्या हातीं,
 देह धराया लावी ज्याला पतितांची प्रीति ॥
 अनन्य आमुच्या गुरु तारिता, जीवन झाला नता
 तत्त्वता धरणीला स्वर्गता अर्पिता ॥ तयास वि-
 सरुन व्यर्थ कशाला लोकीं भटकावें ॥ माय
 सोडुनि क्षुधार्त वालें कोठें मी जावें ॥ जगदु-
 द्धारक० ॥ १ ॥ चिंतामणि सोडून प्रस्तरा कोणीं

करि घ्यावें ॥ कामदुघा सोडूनि अजेच्या मार्गे
 लागावें ॥ कल्पलता सोडोनि शाल्मली शोधित
 हिंडावें ॥ नित्य सुधा सोडोनि शुंठिला कां स्वी-
 कारावें ॥ पुरे नाम सद्गुरुचें मला हो, अन्य विषय
 नच सुचे मना भग तरलों अघसिंधुचे पारहो ॥
 मला आवडे सद्गुरुमध्ये सदैव वाचावें ॥ जगणें
 मरणें ह्या भेदांतुन मुक्त सदा व्हावें ॥ जगदु-
 द्धारक ॥ २ ॥

पद २५

भय काय तया गुरु ज्याचा रे ॥ ध्रु० ॥ सर्व
 विसरली गुरुमय झाली पूर्ण तयाची वाचा रे ॥
 भय० ॥ १ ॥ जगांत विचरे उपकारास्तव, परि
 नार्ही जगताचा रे ॥ भय० ॥ २ ॥ येथें निर्धन
 परत्र ज्याचा, परी धनाचा सांचा रे ॥ भय० ॥ ३ ॥
 देह तयाचे परन्तु आत्मा, त्यांत वसे सद्गुरुचा रे ॥
 भय० ॥ ४ ॥ आधि व्याधि मरणावर्ति पाय
 असा पुरुषाचा रे ॥ भय० ॥ ५ ॥

पाहिला सद्गुरुचा अवंतार हर्षा नुरला पार ॥
 भेटला सद्गुरु० ॥ ध्रु० ॥ अनेक शास्त्रें वधतां,
 वधतां आज त्याचें सार ॥ पुढें पहा तो बालक
 रूपें, झाला श्रमपरिहार ॥ भेटला० ॥ १ ॥
 व्यर्थ मृगजलामार्गे फिरलों, तृषा उरे अनि-
 वार । परि सोंडिली आज सुंधेचि, परमेशानें
 धार ॥ भेटला० ॥ २ ॥ ही निष्पाप प्रीती उ-
 चली, घोर अघाचा भार ॥ तारि आह्मां भरु-
 नि येति, डोळे वारंवार ॥ भेटला० ॥ ३ ॥
 जय जय सद्गुरु जय जय सद्गुरु, हाच पुढें
 उच्चार ॥ विचार सद्गुरु नित्य आमुचा, तोच असो
 आचार ॥ भेटला० ॥ ४ ॥

जर्गी प्रीतिचीं गोड गायनें येती ऐकाया ॥

१ देखते २. २ छोटी. ३ अमृतकी. ४ नेत्र जळसे मर आते हैं.
 ५ सोई हमारा आचार होवो.

जणु विपांतून झरे सुधेचे लागति धांवाया ॥ ध्रु० ॥
 फूल सुवासिक फुललें पाहून, आतुर ते घ्याया,
 तेच कोमुनी जातां वेल न फेंकुनियां द्याया
 रीति जगाची प्रीति ह्मणा परि, जाईल ही
 वायां गड्या ओळखी जगा, शरण जा जा जा
 गुरुराया ॥ ज० ॥ १ ॥ वस्त्र वित्त वपु विद्या किंवा
 तव वक्तृत्वाला, भुललें जग हें कोण विचारी
 ह्यावांचुन तुजला, नसोत गुण हे सिद्ध गुरु वा
 तुज आलिंगाया, गड्या ओळखीं जगा,
 शरण जा जा जा गुरुराया ॥ ज० ॥ २ ॥ माझे
 माझे म्हणसी तीं तुज सोडतील अंतीं, तव
 पापाचा वांटा घ्याया येतील नच पुढति, तुलां
 ठाउकें मानव अपणा शक्त न ताराया, गड्या
 ओळखीं जगा, शरण जा जा जा गुरुराया ॥
 ज० ॥ ३ ॥ नीच धूल तूं ताप मूल तूं पापाच्या

राशी; काय योग्य तूं सांगं गुरूच्या पादस्पर्शासी, दुःसह तो अपमाना भोगीं तुजला ताराया, गड्या ओळखी जगा शरण जा जा जा गुरुराया ॥ ज० ॥ ४ ॥ सद्गुरुवांचुनि प्रीति कोटुनि जगतीं गवसाया सद्गुरुवांचुनि कोण पुढें हो तुज स्वीकाराया, सद्गुरुवांचुनि शक्ति कुणाला तुज सांभाळाया, गड्या ओळखीं जगा, शरण जा जा जा गुरुराया ॥ ज० ॥ ५ ॥

पद २८

विचारी देव काय ह्मणतो ॥ ध्रु० ॥ आई माझी खाण प्रीतिची, व्याघ्रहि गुरुरतो ॥ वि० ॥ १ ॥ अमृताहूनि चिखल चांगला, गाई दर्दुर तो ॥ वि० ॥ २ ॥ सर्व जगाचा मित्र मित्र अरि, घूकाला गमतो ॥ वि० ॥ ३ ॥ धनिक जनाला वंचक साधू, सर्व जगीं दिसतो ॥ वि० ॥ ४ ॥

१ सद्गुरुविना आगे तेरा स्वीकार कोन करेगा. २ सारे जगाचा मित्र सूर्य हे तो पेयक्या अरि भासता हे.

कोणी. सज्जन कोणी दुर्जन, जन तुजला
हणतो ॥ वि० ॥ ५ ॥ फार कशाला सद्गुरु
घरचा, असाच अनुभव तो ॥ वि० ॥ ६ ॥

पद २९

मना गुरु तुज व्हावाना व्हावाना सोड सोड
तर अभिमाना ॥ मना० ध्रु० १ ॥ निंदा स्तुतिच्या
भारांना भारांना सुखें वाहुं दे लोकांना ॥ मना० २ ॥
शहाणपणा वा थोरपणा थोरपणा नको भुलूं
मानामाना ॥ मना० ३ ॥ मना वहा रे प्रभुचरणा
गुरुचरणा समग्र तूं अपणा अपणा ॥ मना० ४

आरती. ३०

जय आत्म्या देवा प्रभु जय सद्गुरु देवा
आशीर्वाद दयाळा, आह्मांवर व्हावा ॥ जय गुरु
देव हरे ॥ तूं अद्वय ह्या विश्वि, प्रीतीचा ठेवा
(२) सारे ओघ तुझ्यांतुन हे घेती धांवा ॥ जय
गुरुदेव हरे ॥ १ ॥ जयजयकार तुझ्या या लोकीं

गर्जावा (२)-याविण आम्हां हेतु अन्य नसो
 ठावा ॥ जयगुरुदेव हरे ॥ २ ॥ अविनाशी सौ-
 ख्याचा प्याला मधु प्यावा (२) प्रेमभर तो
 तृपितां इतरां पाजावा ॥ जयगुरुदेव हरे ॥ ३ ॥
 परमपवित्रा देवा वर ऐसा द्यावा (२) येथें
 आणि तेथें संयोग व्हावा ॥ जय गुरुदेव
 हरे ॥ ४ ॥

पद ३१

येतां येतां कां ? । सद्गुरुजवळी येतां कां
 गुरुवरसंगें जयजयकारें गगना भरितां कां ?
 ध्रु० ॥ तन्मय होतां कां ? । “मी मी” विसरून
 जातां कां ? । “सद्गुरु माझें जीवन आत्मा”
 अनुभव घेतां कां ॥ १ ॥ हृदयीं धरितां कां ? ।
 सद्गुरु विश्चीं वघतां कां । देव “भेटला आमुचा
 झाला” ऐसें गातां कां ? ॥ २ ॥ होतां होतां

कां ? । भक्त येथले होतां कां ? गुरुजयंती रोज
ह्यापुढें ऐसें गणितां कां ॥ ३ ॥

पद ३२

भय भय भय भय-ह्मणशी सांग रे कशाचें ?
जय जय जय जय तुझिया कां न येई वाचे ?
॥ ध्रु० ॥ देशबंधु तव मरती । खेद न तो तव
चितीं । नित्य तुझी मग्नवृत्ति । रक्षणीं तनूचे ॥ १ ॥
भरतभूमि ह्मणते “चल । तूं च खरें माझे बल ॥
व्यर्थ दुजे पुत्र सकल” । ऐक शब्द तीचे ॥ २ ॥
थांव थांव कां पळशी । येईं पुढें कां लपशी ? ।
सद्गुरुशिष्य ह्मणवीशी । भान धरीं याचें ॥ ३ ॥
टाल्लुनियां जनसेवा । रक्षितोस निज जीवा ।
बुडवीणें गुरुनांवा । पाप घोर साचें ॥ ४ ॥ अस्त
न ज्या नित्य उदय । सद्गुरु उमा मृत्युंजय ॥
तें वर तूं जगिं निर्भय । साह्य घेईं त्याचें ॥ ५ ॥

मोल सेवेचें जी घेई । आइची ती होय दाई ॥१॥
 पाय सेवीले वापाचे । पैसे मागे लेंक त्याचे ॥२॥
 असे पाहीलें का कोठें । जग झालें उफराटें ॥३॥
 मंला नको नको कांहीं । देववाप सेवा घेई ॥४॥
 हाच आनंद जीवाचा । सत्य वदे माझी वाचा ॥५॥
 दास ह्मणे मी लेंकरूं । नको चाकर माझा करूं ॥६॥

सुंदर देऊल हृदय हें माझें । एथेंच विराजे
 देवदेव ॥ १ ॥ समक्षता त्याची राखी शुद्ध
 ह्याला । सदा अशुद्धाला दूर ठेवी ॥ २ ॥ प्रवृ-
 त्तीचें पीठ उभा तयावरी । उपदेश करी देशि-
 केन्द्र ॥ ३ ॥ सारा सद्गुराय भरुनी उरला ।
 आतां ह्या देउला भय कैचें ॥ ४ ॥ दास ह्मणे
 एथें अवधी मंडळी । भजाया जमली देवदेव ॥

पद ३३

सद्गुरु प्रभु सुखधामा । हे श्रान्तजनाच्या
 मधु विश्रामा ॥ स० ध्रु० ॥ सकलैश्वर्य ललामा ।
 हे निजभक्तांचा प्रिय अभिरामा ॥ स० ॥ १ ॥
 दुरित भयाची श्यामा तूं नित्योदित रवि नेशि
 विरामा ॥ स० ॥ २ ॥ हृदयीं तव मम सुख मा-
 नच थारा देवो लवभर विपमा ॥ स० ॥ ३ ॥
 गावें मी तव नामा तुज सेवावें ह्या पुरवी
 कामा ॥ स० ॥ ४ ॥

पद ३४

जिव्हे गे ऐकें गरिबाचा अर्ज हा ॥ ध्रु० ॥
 आत्मस्तुतिला परनिंदेला सोडुन दूर रहा ॥ १ ॥
 रम न असर्त्यां खरोखरीं गे रौरव दुसरा हा ॥ २ ॥
 व्याजोक्ति अतिशयोक्ति न लगे नच हो वश
 कलहा ॥ ३ ॥ आशीर्वचनें दे मम होतां माना-

ची अपहा ॥ ४ ॥ होतां निंदा छल मम करगे
 “सद्गुरु-जयं” जप हा ॥ ५ ॥ तुला वाहिलें प्र-
 भुला माझी चिंता तूं न वहा ॥ ६ ॥

पद ३५

वेढ्यांचा बाजार । भरला वेढ्यांचा बाजार
 ॥ १० ॥ विश्व रचीलें ज्यानें त्याला ॥ मनुज
 कसा कळणार ॥ व्यर्थ कल्पना मनाभ्रमवीते ॥
 हेंच यातलें सार ॥ १ ॥ हातीं देऊन खोटीं
 नाणीं कर ह्मणती व्यवहार ॥ एक फसवितो दु-
 सरा फसतो हेंच यांतलें सार ॥ २ ॥ मृगजळ
 जाणुन त्याच्या मार्गे किती वेळ फिरणार ? ॥
 सद्गुरुवांचुन सत्य सुखाची ओळख नच पटणार ॥ ३ ॥

॥ अंभंग ॥

“आलें देवाजीचे मना । तेथें कोणाचें चा-
 लेना” ॥ १ ॥ शब्द ऐसे हे दासाचे निराशेचे

अज्ञानाचे ॥ २ ॥ मर्जि देवाची देवाची ।
 मिथ्या धाव माणसाची ॥ ३ ॥ निरुत्साहाचे
 उद्गार । तेच काढिती जे दूर ॥ ४ ॥ पुत्र ह्मणे
 तुझी मर्जी । तीच माझीरे वापाजी ॥ ५ ॥
 तुझ्या इच्छेची जी सत्ता । तोच स्वर्ग कृपावंता ॥ ६ ॥
 असे पुत्राचे विचार । तसे उच्चार आचार ॥ ७ ॥
 दास ह्मणे व्हावें यति । तेव्हां घ्यावी अनुभूति ॥

इति विश्वदृगुक्तिः समाप्ता ।

अथ श्रीलघुसामसुबोधनप्रारंभः ।

श्लोकाः

यावदायुस्त्रयो वन्द्या वेदांतो गुरुरीश्वरः ॥
 आदौ ज्ञानप्रसिध्यर्थं कृतघ्नत्वापनुत्तये ॥ १ ॥
 तावद्गर्जति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ॥
 न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदान्तकेसरी ॥ २ ॥
 वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम् ॥
 तेनात्यंतिकसंसारदुःखनाशो भवत्यनु ॥ ३ ॥

प्रमाणनखनिभिन्नमहामोहामरारये ॥

नमस्कुर्मो नृसिंहाय स्वप्रकाशचिदात्मने ॥ ४ ॥

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यान्प्रबोधयेत् ।

पृथिव्यां नास्ति तद्रूपं यदत्त्वा चानृणी भवेत् ॥ ५ ॥

हरे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।

सर्वस्मादधिकं तस्माद्गुरुं यत्नेन पूजयेत् ॥ ६ ॥

तोटक छंदः

गुरु विग्रह को नितध्यान धरुं । प्रणिधाय निकाय

प्रणाम करुं ॥ अपनो जन जान अकम्प किये ।

सब संशयशोक शमायदिये ॥ ७ ॥ गुरुके सम

आन उदार नहीं । परि शोधन कीन त्रिलोक

महीं । शरनागत आगत जन्त जवी । अनयास

सरे सब काज तवी ॥ ८ ॥ गुरुकेपदपंकज

जासरति । सरजेशुभ शाधन तासमति ॥ श्रुति

संमतबोध प्रकाशकरे । भ्रमजाल विशाल समूल

१ प्रमाण रूप नखों करके विदारित किया है महामोह (अज्ञान) रूप
हिरण्यकशिपु जिसने, २ मूर्ति, ३ आठ अंगों का समूह.

मरे ॥९॥ गुरुदेवकियो उपकार यथा मुख तें कहि ।
जातनतास कथा ॥ अजआव लगी करुँ सेव-
जवी । तदपि प्रतिकार न होत कधी ॥ १० ॥
गुरुके यश शेष महेश कहे । निगमांगम जास
न अंत लहे । समता उपमा नहि जात भनी
नभसागर ज्यों उपमा अपनी ॥ ११ ॥

कुंडलियो

आतम तत्त्वादेशप्रद हियतम हारक हंस ॥
निगमागमनित गावहीं पावनजास प्रशंस ॥
पावनजास प्रशंस ज्ञानविज्ञान उजागर ॥
शरनहरनभवखेद सदा निजसुखकेसागर ॥
सामकरतपरनाम हरनभवभरमअनातम ॥
धन्यधन्यगुरुदेव दियो आदेश निजातम ॥ १२ ॥

दोहा

गंग हरत हे पापकुं तापशशी करछीन ॥
कल्पद्रुम हरदीनता संतहरे येतीन ॥ १३ ॥

संतंगंगतें निर्मला शीतलशशितें जान ॥
 कल्पद्रुमतें सुखद अति भाषेवेदपुरान ॥ १४ ॥
 ईशमिलावैसंतकूं संतमिलावैईश ॥
 यातें एक स्वरूपहे संतसोइजगदीश ॥ १५ ॥
 सहजहिसंतसमाजमें आनंदहोत उद्योत ॥
 विनुसज्जन संसारमें जनम जनम जनरोत ॥ १६ ॥
 सज्जनपरम उदारअति देतसदाशुतदोइ ॥
 अभिमतदृष्ट अदृष्टफल वेदविदित नहि गोइ ॥ १७ ॥
 सज्जन पारस प्रगटजग परसत भतिपलटाय ॥
 कुमति कुधातुमिटायके कंचन सुमतिकराय ॥ १८ ॥
 सज्जनधन नितवर्षहीं अमृतरसमयवैन ॥
 सुनत नशे तनतापत्रय उपजे अद्भुतचैन ॥ १९ ॥
 हरिगुरुसज्जन एक हैं यामेंरंच न भेद ॥
 समलच्छन सुखदेनसम हरेंत्रिविधभवखेद ॥ २० ॥
 तजि अवलंबन आनको सद्गुरुचरन उपास ॥
 ब्रह्मनिष्ठ निगमांतविद कटेविकटभवपाश ॥ २१ ॥

सद्गुरुसम त्रैलोकमें नहि को सुखकी सीर ।
 शरणागत जन जानके मेहत मनकी पीर ॥२२॥
 सद्गुरुसम त्रैलोकमें नहि को गरिबनिवाज ।
 दीनदुखित लखि जंतकूं देत अभयपदराज ॥२३॥
 सद्गुरुसम त्रैलोकमें नहि ठरवेको ठाम ।
 संशयशोक मिटायके अपैं अविचल धाम ॥२४॥
 सद्गुरुसम त्रैलोकमें नहिको साचोमीत ।
 बिनु कारण करुणा करे पूरण पाले प्रीत ॥२५॥
 सद्गुरुसम त्रैलोकमें नहि को रक्षक साम ।
 जोर नही यमराजको सादर करे सलाम ॥२६॥
 काल कर्म गुणतंत्र सब यावत तनुभृत जंत ।
 क्या करिहैं परित्राण पर आप ग्रसित अहिदंत ॥२७॥
 श्रीसद्गुरुवरशरण तजि गृहे आनकी ओट ।
 तास विनाशे ना कदा कालकर्मकी चोट ॥२८॥
 श्रीसद्गुरुवरशरणतजि करे अवरकरआश ।

तरुशाखांतर्जि आम फल निश्चय पावे नाश ॥२९॥
 श्रीसद्गुरुवरशरणतजि करेयतनशतकोइ ।
 कदाकुशलता नालहे अधिक आपदा होइ ॥३०॥
 श्रीसद्गुरुवरशरणविनु प्रचल प्रवाहीजंत ।
 पंचपरबके पूरमें डूवतनहिनिकसंत ॥ ३१ ॥
 शुष्कसरितके पूरमें वहेजातजडजंत ।
 तुरियातटपरवेठके हेर हसत हैं संत ॥ ३२ ॥
 मिल्योचहत परब्रह्मकूं रहत संत सेंदूर ।
 सामसुनयननिमीलके देख्योचाहतसूर ॥ ३३ ॥
 सद्गुरुसंतस्वरूपइक यामेंभेद नकोइ ।
 श्रोत्रिय निष्ठीसंतकों गुरुपद प्रापत होइ ॥ ३४ ॥
 सद्गुरुतत्त्व वताव हीं आगम निगमनिरूप ।
 देहादिकतें भिन्नजो ब्रह्माभिन्नस्वरूप ॥ ३५ ॥

तोटक छंदः ।

सतचेतन जो सुखरूप सदा ॥ परिपूरण

एक न भेदकदा ॥ असरूप सनातन वेद कहे ॥
 दृढ धारतधीर न खेद रहे ॥ ३६ ॥ परमात्म
 आत्म एकरटो ॥ सब शंककलंक विकंटकटो ॥
 सददैशिक सो उपदेशकरे ॥ जिनतें भवशोक
 विमोहमरे ॥ ३७ ॥

॥ दोहा ॥

तनुता प्रत्यक्ता तथा संस्कार अतिसार ।
 निर्मलता युतजानिये वृत्तिब्रह्माकार ॥ ३८ ॥
 अहं ब्रह्म या वृत्तिमें साक्षी अरुआभास ॥
 दूजो भासतविषयहै साक्षीस्वयंप्रकाश ॥ ३९ ॥
 असौ अन्यमें अन्य हूं ऐसीजासप्रतीत ॥
 सोनहि जानत तत्त्वकूं देवपशुश्रुतिगीत ॥ ४० ॥
 प्रत्यक्तत्त्वपरेशमें अंतर नहीं लगार ॥
 विमलाशयमेंदर्शहीं वस्तुविमलआकार ॥ ४१ ॥
 ईश्वर जीवकलाकरी कीनोआप प्रवेश ।
 भूतांतर भगवान सो, अत्र न संशयलेश ॥ ४२ ॥

एषतआत्मासर्वगत यत्साक्षादपरोक्ष ।

निगमाशयजानेविनाभायेतासपरोक्ष ॥ ४३ ॥

ईशावास्य अशेष जग, अंतर्यामी इष्ट ।

विष्णुव्यापन शीलते, किंवा सर्व प्रविष्ट ॥ ४४ ॥

नारायण नरनारमें, कियोअयन अनयास ।

रमेरमावेराम सो, वासुदेव सबवास ॥ ४५ ॥

ब्रह्मैवाहं हरहरि तत्त्वं सोहं नाम ॥

शाश्वत शिव आनंदधन केवलतारक राम ॥ ४६ ॥

एवमादिश्रुति-वचनगण जो सुमरतनरनित्य ॥

हरतिहार्दतमतासहरि उदितयथा आदित्य ॥ ४७ ॥

रथोद्धता छंदः

जातिनीतिकुलगोत्रदूरगं । नामरूपगुणदोष-
वर्जितम् ॥ देशकालविषयातिवर्तियद्ब्रह्मतत्त्वम-
सिभावयात्मनि ॥ ४८ ॥

तोटक छंदः

गुणजाति सँबंधविकारजिते । सबधर्म अनात-
ममाँहितिते ॥ परमातममें नहि दोषकदा । गत-

माय अकाय अरूपसदा ॥ ४९ ॥ जवतेंजनकों
 असजानपरे । तव भौतिकभावसुभावटरे ॥ सं-
 रवांतरआतम एकलहे । तिनकों परिशेष नका-
 जरहे ॥ ५० ॥

सोरठा

अंतर अथवावार, बैरी नहिको विश्वमें ।
 दीनोमूलउखार, अहंकार-रागादिरिपु ॥ ५१ ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्मात्मैक्यप्रबोधतें । चिज्जड संशय कर्म ॥
 नशेग्रंथित्रयमोहभव पावे पूरण शर्म ॥ ५२ ॥
 अंतरजानअजानको ग्रंथिविभेदनिदान ॥
 लौकिक वैदिक कर्ममें दीसेदोनसमान ॥ ५३ ॥
 नहि ज्ञानकी गांठडी नवा चालुरी चोज ॥
 मनकी कैलना मारनी यहिअनुभवको ओज ५४
 अजर अमर अज अभय विभु निर्विकल्प गतशोक॥

निगमनिरूपत दुःखते रहिततथाअवलोक ॥५५॥
 नित्यंप्राप्तनिवृत्तको प्रापणमोचन ज्ञान ॥
 मोहमात्रप्रतिबन्धको बाधककर्मनजान ॥ ५६ ॥
 वस्तु अप्राप्तनिवार्यको साधनकर्मनबोध ॥
 नाकनरक ऐसें खलु वदतवेदअविरोध ॥ ५७ ॥
 केवलकों कैवल्यवा कल्पितकोंकैवल्य ॥
 ग्राहककोऽसौमोक्षको कुण्ठितकविकौशल्य ॥५८॥
 क्याकेवलमेंकल्पना जारजल्पनाजूठ ॥
 केवलमें कल्पन करत मारत नभमेंमूठ ॥ ५९ ॥
 निर्विकल्पनिर्वाणपद विकल्पविश्वविलास ॥
 सारसकलवासिष्ठको शुकमुनिकीनसमास ॥६०॥
 पूरणतत्त्वप्रबोधते कलनामात्रप्रशांति ॥
 विनाशांतिसुखनालहे काचमणेरिवकांति ॥ ६१ ॥
 हृदयाम्बरगत बोधरवि जवलग उदय नपाय ॥
 मोहनिशामेंमारमुख सुखधन लेत चुराय ॥ ६२ ॥
 अहमाकाराआत्मधीर्या चात्मीयममेति ॥

अर्थशून्यमंतियुगलयदि सहिआत्मज्ञतदेति॥६३॥
 मनपंछी तवलग उडे विषयवासनामांहि ॥
 ज्ञानवाजकी झपटमें, जवलगआयो नांहि ॥६४॥
 सामसमाहितभव सदा, मिथ्याआश निरास ॥
 अक्षयसुख-निर्मग्नमन नशे विषमअध्यास ॥ ६५ ॥
 संततब्रह्माभ्यासतें मल विक्षेपविनाश ॥
 ज्ञानदार्ढ्यनिर्वासना जीवन्मुक्ति प्रकाश ॥ ६६ ॥
 सामसमाहित सो सुखी, अपर सर्व विपरीत ॥
 इतर इतर धी धारके करहीं कालव्यतीत ॥६७॥
 निजअनुभूतसौपुससुख, परमप्रेम अनुमान ॥
 ऐष अस्य इति वेदगी, आत्मानंद बखान ॥६८॥
 अंतरकरेनकल्पना, मुखे न बोले बोल ॥
 एषावस्थाउन्मुनि, अंतःकरण अडोल ॥ ६९ ॥
 सामं समाहित समुजहीं, राजयोगकी रीत ॥

१ विषय तदाभ्यासात् अर्थमें रहित. २ दु खी. ३ एषोऽस्य परम-
 आनंदः यह धुनिपचन भी आत्मस्वरूप आनंद बोलीं दिखावे हैं.

सहजसमाधि विहायके, गावे किन्के गीत ॥७०॥
 अर्धनिमीलितअक्षिमें सुखअनुभवको संध ॥
 प्ररिचय तत्र प्रवीणको क्या अवलोके अंध ॥७१॥

श्लोकाः

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम् ॥
 दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥७२॥
 आश्चर्यमद्य मम भाति कथं द्वितीयं ॥
 नित्ये निरस्तनिखिलाशिवचित्प्रकाशे ॥
 आसीत्पुरेति किमिमाः श्रुतयो न पूर्वं
 येन द्वितीयमभवत्तिमिरप्रसूतम् ॥ ७३ ॥
 त्वत्पादपंकजसमाश्रयणं विना मे ।
 सन्नप्यसन्निव परः पुरुषः पुरासीत् ॥
 त्वत्पादपद्मयुगलाश्रयणादिदानीं
 नासीन्न चास्ति न भविष्यति भेदबुद्धिः ॥ ७४ ॥

१ निलनिष्ठ है असम्बद्ध दुःखरूप प्रपंच जिसमें ऐसे नित्य स्वप्रकाश अद्वैत वस्तुमें यह तिमिरसें प्रसूत द्वैत कैसे रहा होगा, क्या ये वेद पहिले नहि रहे.

परामृष्टोसि लब्धोसि प्रोपितोसि चिरं मया ॥
 इदानीं त्वामहं प्राप्तो न त्यजामि कदाचन ॥ ७५ ॥
 त्वां विना निःस्वरूपोहं मां विना त्वं कथं स्थितः ॥
 दिष्ट्येदानीं मया लब्धो योसि सोसि नमोस्तुते ७६
 इति श्रीपद्मरत्नावल्यां लघुसामसुबोधनं संपूर्णम् ॥

पद ३६ रागनट

शंकर एकहिं सद्गुरुसंग । सुखकर० ॥ ध्रु० ॥
 जास प्रसाद अमलतरअंतर, दृश्यतवस्तु अलिंग
 ॥ शं० ॥ १ ॥ जगभग चारदिनाको चमको,
 जैसो रंगपतंग ॥ शं० ॥ २ ॥ रविकरवार न प्यास
 निवारन, भरमत चेतकुंरंग ॥ शं० ॥ ३ ॥ जास
 प्रसाद विवेकविकाशे, शमदम विरति विभंग
 ॥ शं० ॥ ४ ॥ जास प्रसाद विमलमति-संरसी,
 सुस्थिर सकलतरंग ॥ शं० ॥ ५ ॥ जासप्रसाद
 अवश वश होवत, चंचलचित्त तुरंग ॥ शं० ॥ ६ ॥

जास प्रसाद स्थाणौ दृढवांधे, अहंकार मातंग
 ॥ शं० ॥ ७ ॥ श्रद्धाभक्ति अमलअनुरक्ति,
 सेवासहितउमंग ॥ शं० ॥ ८ ॥ दर्शनपर्शन
 पापशमावन, भ्रमहर वचन प्रसंग ॥ शं० ॥ ९ ॥
 जासचरणरज शिरपरधरते, भवत भाग्य उत्तंग
 ॥ शं० ॥ १० ॥ जास कृपाविन समल स्वांतपर
 चढत न पाकोरंग ॥ शं० ॥ ११ ॥ जाविनदेव
 असुर रणझुंजे जीत्योजाय न जंग ॥ शं० ॥ १२ ॥
 जासम वैद्य न लोक चतुर्दश भव-आमयकर
 भंग ॥ शं० ॥ १३ ॥ जासम आन उदार न
 भवमें पूरनआश अँनंग ॥ शं० ॥ १४ ॥ जास
 प्रसाद चिदंबर चारी, मानसश्येन विहंग
 ॥ शं० ॥ १५ ॥ जगजीवन श्रीसद्गुरु दर्शन
 विरह विनाशकढंग ॥ शं० ॥ १६ ॥ ज्ञानानंद
 कर गुरुवरसंगम, ज्यों सागरमें गंग ॥ शं० ॥ १७ ॥

श्लोकाः

किंभूषणाद्भूषणमस्ति शीलं । नासतो विद्यते
 भावो नाभावो विद्यते सतः । शिव एवास्ति नैवा-
 न्यदिति यो निश्चयः स्थिरः । स एव शीलशब्दार्थः
 पतिलोकप्रदायकः ॥ यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व-
 च मयि पश्यति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च
 मे न प्रणश्यति ॥

पद ३७ राग-टोडी

वर्नितेअंगविभूषणधार ॥ टेक ॥ सव भूषण-
 कर शीलविभूषण, सुवासिनीशृंगार ॥ व० ॥ १ ॥
 अव्यभिचारीशील सतीको, सव सुकृतकरसार ।
 शीलवतीकरपति परमेश्वर, सेवा प्रेमप्रचार ॥ व०
 ॥ २ ॥ वटुकरशील यथा गुरुसेवन, दान गृहस्थ
 उदार । तपवनवासी प्रशमयतिनकर, वृत्तिवह्मा-
 कार ॥ व० ॥ ३ ॥ शीलसतीको निजपतिसेवन,

नारी तीनप्रकार । निजनायकविनुनर न विलोके,
 सा सर्वोत्तमनार ॥ व० ॥ ४ ॥ बडोजनक सम-
 सोदरदेखे, मध्यम नारविहार । लोकलाज मुख
 कारणत्राता, अधमनार उपधार ॥ व० ॥ ५ ॥
 प्रथमानरपति नीतिसमाना, प्यारी निजभर्तार ।
 यथा योगिजन प्यारप्रशांति, तथाविधाभवितार
 ॥ व० ॥ ६ ॥ जप तप तीर्थवृतादि नियमयम,
 पतिआज्ञा अनुसार । पतिसेवनमें अंतरडारे सो-
 कृत करपरिहार ॥ व० ॥ ७ ॥ दर्शनपर्शन सुम-
 रन संतत, पूरण प्रेमागार । पतिपदकमल अ-
 मल अनुरागा, अहोभाग्य अवतार ॥ व० ॥ ८ ॥
 तंतमेव वा यामतिसागति लोक वेद वक्तार । किं-
 वदंति साची दिलधरिये संशयमात्रमकार ॥ व०
 ॥ ९ ॥ साचोपति मति तव शिवशंकर, तत्रांतर
 परिहार । यह शिक्षा कर कान मनन निदिध्या-

सनसाक्षात्कार ॥ व० ॥ १० ॥ यद्वत्त्वाननिवर्तन-
भूयो भविता एकाकार । ज्ञानानंदसागरमति-स-
रिता भेद खेद गलितार ॥ व० ॥ ११ ॥

पद ३८ (मंगलताल ३)

विनुसमता सुखहानी जगमें, विनुसमता सुख
हानीरे ॥ टेक० ॥ समतारिपु ममतामें मेरो, काम
क्रोध दुखदानीरे ॥ रागद्वेष कारणमें मेरो,
सुखकर शांति न शानीरे ॥ विनु० ॥ १ ॥ विषम
भाव भवमें भटकावै, कबहु न लहत निसानीरे ॥
जन्ममरन कर अंत न आवे, चौरासी लख खानीरे
॥ विनु० ॥ २ ॥ संप सलाह न अपने घरमें, परदूषण
दर्शानीरे ॥ ऐक्य विना इच्छत अक्षय सुख
हेर हसत विज्ञानीरे ॥ विनु० ॥ ३ ॥ जाके घरमें
समता राजे ब्रह्मलोक उपमानीरे ॥ ऐक्यमतो
जा घरमें नांही, तत्र सदा यमधानीरे
॥ विनु० ॥ ४ ॥ विनुसमता नहि आत्म उन्नति,

दैशिक दूर पलानीरे ॥ विनुसमता नरलोक
 न सुधरे गतपरलोक, कहानीरे ॥ विनु० ॥ ५ ॥
 पृथक् करत दूटे सबतंतु, करतमेल बलवानीरे ॥
 विनुसमता नहि वाजे वाजें, तंत्रीतार नशा-
 नीरे ॥ विनु० ॥ ६ ॥ सत्यवचन जन मन न
 सुहावे, मिथ्यावचन सरानीरे ॥ सद्विद्या अभ्या-
 सन सज्जन-संग तुंग अभिमानीरे ॥ विनु० ॥ ७ ॥
 मन कल्पितमत पंथचलावे, फसे तत्र अज्ञानीरे ॥
 धर्मसनातन असल नकल कर, मानत मूर्ख
 प्रानीरे ॥ विनु० ॥ ८ ॥ एक देव सबभूत
 निगूढ, वैदिकवाच न मानीरे ॥ देव अनेक
 तिनमें पुनि जगरे, करत न आवे ग्लानीरे ॥
 विनु० ॥ ९ ॥ लालच लोभ लगे जाके मन,
 सो क्यों सत्य बखानीरे ॥ जूठा सच्चा मान
 सराहत, यह कलिकाल कमानीरे ॥ विनु० ॥ १० ॥

सच्चे पुरुष विरल निष्कामी, कटेकुमत सत
 वानीरे ॥ तिनकरसंग न मिलत सुकृत विनु, माप
 मर्या फल जानीरे ॥ विनु० ॥ ११ ॥ पुण्य-
 वंत भगवंत-अनुग्रह-भाजन सज्जन स्यानीरें ॥
 ज्ञानानंद प्रदायक नरवर वाच परम कल्यानीरे
 ॥ विनु० ॥ १२ ॥

पद ३९

निजघरमें अविनाशी शोधो, निजघरमें अवि-
 नाशी रे ॥ निज० टे०॥ काहे नरहर द्वार पधारो,
 काहे जावो काशी रे ॥ मनमंदिरमें वसे सदाशिव,
 जो कैलास विलासी रे ॥ निज० ॥१॥ नहि पताल
 वा स्वर्गलोकमें, नहि शमशान निवासी रे ॥ जो
 जन सुमरन करत प्रेमधर, सदा वसे तिनपासी रे
 निज० ॥२॥ जो भैवभेटन मन अभिलाषा, भैव भ-
 वभोग उदासी रे ॥ निर्जन देश निवेशन करहर-

ध्यातुज्योति प्रकाशी रे ॥ निज० ॥ ३ ॥ अद्यदेव्यं
 तत्परिहरिये, भावाभाव विकाशी रे ॥ सोहं
 साक्षी सच्चित्सुखधन, यों संतत अभ्यासी रे ॥
 निज० ॥ ४ ॥ स्थालिपुलाक समान विचारत, अग
 जग व्यापक आसी रे ॥ सत्ता अगमें सच्चिजगमें
 शांतमतौ सुख राशी रे ॥ निज० ॥ ५ ॥ जवलग सोहं
 शिव न विजानत, मोहमनाकै न जासी रे, घटी-
 यंत्रसम जनिमृतिधारा, नाकनरक चौराशी रे ॥
 निज० ॥ ६ ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, गुहा गूढ नि-
 गैमासी रे । दैशिक मुख सारार्थ समासत, कटे
 मोहकी पासी रे ॥ निज० ॥ ७ ॥ कलना हर प्रग-
 व्यो हर हियमें, धियमें धुन सुनतासी रे ।
 सोहं हंसो हंसः सोहं, ज्ञानानंद संन्यासी रे ॥
 निज० ॥ ८ ॥

१ हे. २ तबलग किंचित् मात्रभी मोहनाम सखिलास अज्ञान जानेवाला नही.
 ३ इस वेदवचनका सारार्थ गुरुमुखाद्वारा समुज्जनेसे.

॥ सूत्रश्रुतिवाक्यं ॥

आनंदमयोऽभ्यासात्। आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्
 तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽंतरात्माऽऽनं-
 दमयः तस्यप्रियमेव शिरः मोदो दक्षिणःपक्षःप्रमो-
 द उत्तरःपक्षः। आनंदआत्मा ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा ॥

॥ पद ४० राग लावणी ॥

सुनो चतुर पंछी मम वानी, पूरनहियकी हा-
 मजी ॥ टेक ॥ वाजं मरुन्मय मानस धीमय, तुम
 मम सुखमय नामजी ॥ भ्रमत अरणमें आवगँ-
 वाई, कियो न कहिं विश्रामजी ॥ सुनो० ॥ १ ॥
 मेरो पुच्छ पकडल्यो प्यारे, होवे पूरण कामजी ॥
 मस्तक मेरो प्रिय पहिचानो, ब्रह्म वित्तम ब्रुव-
 तामजी ॥ सुनो० ॥ २ ॥ मोद मामको दक्षिणपक्ष,
 परमोदपक्ष लखि वामजी ॥ निद्रानंद मम म-

१ अभ्रमय-प्राणमय-मनोमय विज्ञानमय से तुमारे नाम है. ओं मेरा नाम
 आनंदमय है.

ध्यशरीर, परब्रह्म पुच्छममठामजी ॥ सु० ॥३॥
 सर्वाधार पुच्छ जगसारो, तुच्छपुच्छ विनं आ-
 मजी ॥ पुच्छाधार सकल यह नाटक, केशरपदउ-
 दामजी ॥ सु० ॥४॥ विश्वचराचर नाम हमारे, मेरो
 पुच्छ अनामजी ॥ क्षर अक्षर जड पुच्छ अधीना,
 आप सुछंद सरामजी ॥ सु० ॥ ५ ॥ जा तरवरमें
 वास तुमारो, कटत काल अठ यामजी ॥ तजि
 तरुवास बसो मम पुच्छे, जो परमक्षर धामजी ॥
 सु० ॥६॥ निगमं शाख पर तीतर बोला, श्रुत्वाहं-
 वदतामजी ॥ उक्त आचरी कांत शमावो,
 ज्ञानानंद निजगामजी ॥ सु० ॥ ७ ॥

१ जो मझा ईशो द्यः रो रक्षको विष्णुः इन तीनोंका उत्कृष्ट पद नाम स्थान है.
 २ वृक्षकीशाखापर बैठके तीतर पक्षी बोला । मिद्धांतपक्षमे घेदका तीतर
 आसा नाम उपनिषद् बोला. ३ क नाम राजादि मझांतमिषयानंदका अंत नाम
 परमवसानभूमिजो मझानंद तामें शमाय आवो.

ए शुं योलोछो विवेकिं ज्ञातुं भर्तरी (ए राग)

जो विचारि जीव तारि नार कयां भमे नाथने
 विसारि अन्य साथ सारमे ॥ जो० टेक० ॥ पुत्रनो
 प्रवारनार हाथमां लहि । हालचाल गेहनी सं-
 भालतो सहि ॥ जो० ॥ १ ॥ कराल-काल-हव्यवाह
 गेहने दहे । रत्ननो भंडार सार जेहमां रहे ॥ जो०
 ॥ २ ॥ देहगेहकार दार नारनें हरे । जे मृषाऽहं-
 कार भार सत्यनो धरे ॥ जो० ॥ ३ ॥ पुत्र पादहीन
 चौद लोकमां चडे । वात-जात भूत प्रेत दैतनें
 नडे ॥ जो० ॥ ४ ॥ ते समान आन वेगवान नां
 जडे । भीष्मदेव नाम काम सर्व आवडे ॥ जो०
 ॥ ५ ॥ पुत्रनो प्रवार मार वापथी वली । क्रोध
 जी कनिष्ठ चौरहारको वली ॥ जो० ॥ ६ ॥ लो-
 भजी कंगाल गाल पापथी भरे । त्रिविध निरय-
 द्वार श्रीमुरार उच्चरे ॥ जो० ॥ ७ ॥ पुत्रनो प्रपंच

१ शुद्धिः, २ पुत्र भन अने तेनो परिवार कामकोपादि, ३ धर्मादि
 चतुर्विध पुरवार्थनो नाश करना, ४ त्रिविध नरकसंद द्वार नाशनमारमनः
 ए वाक्य पी.

गणि पार को लहे । मनोजर्जनाश दास पाश वा-
सना रहे ॥ ८ ॥ म्हेर जो महाराज करे काजतो
सरे । यंत्रनो चलावनार साथमां फरे ॥ ९ ॥
पंक्ति कंधरारि पाद पीतडी खरि । ज्ञान मुनि-
लोक शोक हारको हरि ॥ १० ॥

पद ४२

रामचंद्र०३ जी, कृष्णचंद्र०३ जी ॥ टे० ॥
हे रमाविलास दास आपनो करो । मायिक प्र-
पंच खरो एन आसरो ॥ राम० ॥ १ ॥ भोक्तृ भोग्य
संग भंग काल आचरे । स्वार्थनी सगाइ सर्व
प्रीतडी करे ॥ राम० ॥ २ ॥ देहदारनो प्रवार का-
लनो चरो । तेहमांहि प्रेमपाश नाशिये परो ॥
राम० ॥ ३ ॥ दोषकोश देह गेह शोक मोहदा ।
मामकीन मान ध्यान तेहनुं सदा ॥ राम० ॥ ४ ॥

१ कामारी शंकर तेना दास रामचंद्र अथवा अन्य शिष्यभक्त पासें रहि
शके तेम नथी. २. दशकंधर रावण अथवा अहंकार किंवा मन तेनो नाश
करनार श्रीरामचंद्र तेमा खरी प्रीति करे त्वारे कार्य सुधरे.

धर्म लोप मोप गोप कोप ना धरो । पाप ताप कष्ट
 दुष्ट-वासना हरो ॥ राम० ॥ ५ ॥ आपविना मोहजाल
 कोण कापशे । अक्षय आनंदकंद कोण आपशे ॥
 राम० ॥ ६ ॥ त्वमेव मात तात भ्रात मे सखा
 सहि । त्वमेव सत्य वित्त-चित्त आनमां नहि ॥
 राम० ॥ ७ ॥ सद्गुरु स्वरूप आप श्रेय आदरो ।
 भक्तिभाव प्रेम-नेम आपिये खरो ॥ राम० ॥ ८ ॥
 नमः शिवाय एज मंत्रराज दीजिये । मामके
 मुखे अखंड जाप कीजिये ॥ राम० ॥ ९ ॥ प्रवृत्ति
 धर्मनिष्ठ इष्ट लोकदोभवान् । निवृत्ति धर्मनिष्ठ
 निजानंददो महान् ॥ राम० ॥ १० ॥ देहभाव दास
 जीवभाव अंशरी, ज्ञानदृशा आप हरिभेदनां जरी
 ॥ राम० ॥ ११ ॥

पद ४३

हे उमाविलास दास पाशने हरो, हे दयानि-

धान दान ज्ञाननुं करो ॥ हे उमा० ॥ टेक ॥
 सत्यशीलवन्त सन्त संग दीजिये । भेदभाव-
 निष्ठ दुष्ट दूर कीजिये ॥ हे० ॥१॥ द्वैविधो अध्या-
 स दोष पाश टालिये । कामकर्म पाश जन्म बीज
 वालिये ॥ हे० ॥२॥ कराल काल व्याल गले चित्त
 मंडको । अंशदंश आशकरे लाज भीनको ॥ हे०
 ॥ ३ ॥ काम कोप लोभ मोह गर्व मत्सरो । एज
 अरिवर्ग शांति सौख्यधी हरो ॥ हे० ॥४॥ आप-
 विना दोष कोश कोण कापशे । आनंद भंडार
 कुंघि कोण आपशे ॥ हे० ॥ ५ ॥ आपविना ताप
 विनाशे न को गुरो । नमो नारायणाय एष मं-
 उच्चरो ॥ हे० ॥६॥ प्रेम नेम जाप पाप ताप हा-
 रको । संसृति अपार वार धार तारको ॥ हे० ॥७॥
 मंत्रनो विचार महावाक्यमां मले । जीव शीव भेद

१ भोग्यरूपी वनमधिकारने पकड़वा चाहे छे तेने कोई तरानी साज के बीर
 तो छेत्र नहि. २ सागरमांथी तापी पार करनार छे.

भ्रांत श्रौत गीर्गले ॥ हे० ॥८॥ कृतान्त कान्त मं-
 गलान्त माधर प्रभो । नेति वीप्सयाधि गम्यरम्य
 भोविभो ॥ हे० ॥९॥ स्वकीय स्वांतध्वांतरविरो-
 चनो भवान् । ज्ञानमौन कामसीम भावनो म-
 हान् ॥ हे० ॥ १० ॥

पद ४४

समस्तलोक शंकरं नमामि सद्गुरुम् । कृपाकरं
 प्रभाकरं नमामि सद्गुरुम् ॥ समस्त० टे० ॥ प्रपन्न-
 लोक शोक मोक कारि सद्गुरुम् । भवाब्धि पार कारि
 कर्णधार सद्गुरुम् ॥ स० ॥१॥ अखंड वस्तु लक्षकं
 नमामि सद्गुरुम् । विपक्षपक्ष भक्षकं नमामि स-
 द्गुरुम् ॥ स० ॥२॥ शमादि सद्गुणाकरं न० । भ-
 व्यभाव भाधरं न० स० ॥३॥ कृतांतसार दर्शनं
 न० । प्रपूर्ण चिद्विमर्शनं न० स० ॥४॥ कृतान्तभी-

१ नमस्तुभयो विज्ञेयो रामस्तत्पदमुच्यते । असीत्यर्थे चतुर्थी स्यादेवं
 मंत्रेषु योजयेत् ॥ १ ॥ इत्यादि श्रौतवाणी. २ स्वमक्त हृदयान्धकार हर्ता
 ज्ञान रश्मि ये लोचन जेतुं एवा भाष.

ति भंजनं न० । स्वभक्त चित्तरंजनं न० स०॥५॥
 स्वरूपतो निरंजनं न० । स्वभक्त भाव मंजनं न०
 स०॥६॥ कृतान्त दूत तर्जनं न० । कुजन्मबीज भर्जनं
 न० स० ॥ ७ ॥ विशुद्धबोध सागरं न० । नयान्त
 दर्शिनागरं न० स०॥८॥ सुधास्र वाक्य वर्षणं न० ।
 कराल काल कर्षणं न० स० ॥ ९ ॥ प्रपन्न रक्ष-
 णे क्षमं न० । मनोहरं मनोरमं न० स० ॥ १० ॥
 मनोज दर्पहारकं न० । विशुद्ध बुद्धिकारकं न०
 स० ॥११॥ भवच्छिदं भ्रमच्छिदं न० । प्रपंच स-
 त्यधीच्छिदं न० स० ॥ १२ ॥ विचारणे सहायकं
 न० ज्ञान मौनदायकं न० स० ॥ १३ ॥

श्लोकः

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते- । स्तमोद्वारं यो-
 पितां-संगि संगम् ॥ महांतस्ते समचित्ताः प्रशा-
 न्ता । विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥ १ ॥ ते म-
 हांतो महाप्रज्ञा निमित्तेन विनैव हि । वैराग्यं जाय-

ते येषां तेषाममलमानसम् ॥ २ ॥ महात्मानस्तु
 मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः । भजंत्यनन्य-
 मनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ ३ ॥ विद्यावि-
 नयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव
 श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ ४ ॥ सुहृन्मि-
 त्त्रार्थुदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु । साधुष्वपि च
 पापेषु समबुद्धिर्विमुच्यते ॥ ५ ॥ उपकारि-
 षु यस्साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः । अपकारिषु
 यस्साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥ ६ ॥ अपि चेत्सु-
 दुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मं-
 तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ७ ॥ सदा सर्वत्र
 समदृक् स मुक्तः स च पंडितः । मामात्मत्वेन जा-
 नंति ते वै सत्पुरुषा मताः । भेदबुद्ध्या तु मां स्व-
 स्मादन्यं जानंति पामराः ॥ ८ ॥ प्रौढवैराग्यमास्थाय
 भजते मामनन्यभाक् । पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा
 स वै मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ कामक्रोधवियुक्ता-

नां यतीनां यतचेतसाम् । अभितो ब्रह्म नि-
 र्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ १० ॥ अपराधिनि
 कोपश्चेत्कोपे कोपः कथं न ते । धर्मार्थकाममो-
 क्षाणां प्रसह्य परिपंथिनि ॥ ११ ॥ उत्तमस्य
 क्षणं कोपो मध्यमे घटिकाद्वयम् । अधमे दिनमेकं
 तु यावज्जीवं दुरात्मनः ॥ १२ ॥ ये धर्महीना न
 नराः खरास्ते ये धर्मशीला न नराः सुरास्ते । ये
 ज्ञानहीनाश्च नपुंसकास्ते ये ज्ञानभाजो न नरा ह-
 रास्ते ॥ १३ ॥ धर्मे तत्परता, मुखे मधुरता, दाने
 समुत्साहिता । मित्रेऽवंचकता, गुरौ विनयिता,
 चित्तेऽतिगंभीरता ॥ आचारे शुचिता गुणे रसि-
 कता, शास्त्रेषु विज्ञातृता । रूपे सुंदरता शिवे भ-
 जनिता, सत्स्वेव संदृश्यते ॥ १४ ॥ अघौघं प्रा-
 चीनं, विघटयति पुण्यं प्रथयति । प्रसूते सद्बुद्धिं,
 नवनवकलां पल्लवयति ॥ हरत्यज्ञानांध्यं, दि-
 शति परमानंदपदवीं । सतां संगः कल्पद्रुम इव

न किं किं वितनुते ॥ १५ ॥ सज्जनस्य हृदयं
 नवनीतं यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम् । अन्यदेहवि-
 लसत्परितापात्सज्जनो द्रवति नो नवनीतम् ॥ १६ ॥
 घृष्टं ० २ पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगंधं । दग्धं ० २
 पुनरपि पुनः कांचनं कांतवर्णम् ॥ छिन्नं ० २ पुन-
 रपि पुनः स्वादु चैवेषुदंडं । न प्राणांते प्रकृति-
 विकृतिर्जायते सज्जनानाम् ॥ १७ ॥ गुणायंते दोषाः
 सुजनवदने दुर्जनमुखे । गुणा दोषायंते तदिदमपि
 नो विस्मयपदम् ॥ महामेघः क्षारं पिवति कुरुते
 वारि मधुरं । फणी क्षीरं पीत्वा वमति गरलं
 दुःसहतरम् ॥ १८ ॥

दोहा

संतपंथ अपवर्गको, कामी निरयद्वार ॥ ऋ-
 पभदेव तनुजानप्रति, कीनो अस निर्धार ॥ १९ ॥
 समदृक् शांत सुभावमुनि, सुहृद चराचर जंत ॥
 विजितकामकोपादिरिपु, लक्षण संत महंत ॥
 ॥ २० ॥ विषयनिरत नर नीचको, कवहु न कीजे

संग ॥ आशय होय मलीन किल, परत भजनमें
 भंग ॥ २१ ॥ प्राकृत करिपरपिशुनता, कारज
 देत विगार ॥ केकयि कुबरी संग जुं, किय उ-
 त्पात अपार ॥ २२ ॥ प्राकृत जंत प्रसंगतें, नाशे
 जपतप योग ॥ सापी प्रगट पुरानमें, ऐलगीत
 उपयोग ॥ २३ ॥ प्राकृत दूषितवात कहि, मनकूं
 करत मलीन ॥ अंतर आग लगायके, लेत शांति
 सुखछीन ॥ २४ ॥ प्राकृत जनको पारखो, बोलेबिनु
 वृत्तबोल ॥ गुणदूषणकी गांठडी, बैठे जहँ तहँ
 खोल ॥ २५ ॥ अल्पाशय पय अज्ञको, वेगहि
 विनशीजाय ॥ सज्जन हृदयपयोविधसम, ज्यो-
 कात्योहि सदाय ॥ २६ ॥ वसवो बंचक सहरमें, नहि
 गफलतको काम ॥ होवे जन हुसियारजो, सो-
 सारे निजकाम ॥ २७ ॥ कुल कुटुंब परिवार सब,
 चौदरतनके चौर ॥ हीरा चूरनहाथदै, हरेमहाप-
 द मौर ॥ २८ ॥

मुक्तिद्वार संत संग सर्वदा सजो । बंधकार
 दुष्ट संग दूरथी तजो ॥ मुक्ति० टेक ॥ पूर्णदृष्टि-
 वंत संत सेविये सदा । ऊर्ण दृष्टिवंत जंत नाद-
 रो कदा ॥ मु० ॥ १ ॥ यद्यपि समस्त रूप
 एक छे हरि । तथापि संगमां विवेक रीत छे
 खरि ॥ मु० ॥ २ ॥ ज्ञानवंत संतमति सर्वमां
 समा । आत्मज्ञान-भानुना विनाशिता तमा ॥
 ॥ ३ ॥ आत्मनि आराम काम भोग्यमां नहि ।
 पूर्ण दृक् प्रशांतमति सर्वदा सहि ॥ मु० ॥ ४ ॥
 अखंडवस्तु ज्ञानवंत ते महात्मा । जीव-शीव भेद
 भणे तेज फौर्तमा ॥ मु० ॥ ५ ॥ सर्वथा समान
 भानवान पंडितो । ज्ञान हीन दीन लोक भाव-
 खंडितो ॥ मु० ॥ ६ ॥ मार मोह मन्यु मान
 हीन सज्जनो । दुष्ट मति दुष्ट कर्मकारि दुर्जनो

॥ मु० ॥ ७ ॥ अकारणं परोपकार कारि साध-
 वो । अकारणं परापकार कार्य साधवो ॥ मु० ॥
 ॥ ८ ॥ संतलोक शोक मोह मारना रिपु । परो-
 पकार कारणेंज धारियुं वपु ॥ मु० ॥ ९ ॥ धर्म-
 न्यायहीन नरो नाहिं ते खरो । धर्मनीतिवन्त
 नरो नाहि ते सुरो ॥ मु० ॥ १० ॥ आत्मज्ञानहीन
 नैरोनो नपुंसको । ज्ञान मौनवान हैरोऽसौ नरो
 नको ॥ मु० ॥ ११ ॥

श्लोकाः

कल्याणानां निदानं कलिमलमथनं पावनं पाव-
 नानां, पाथेयं यन्मुमुक्षोः संपदि परपद-प्राप्तये
 प्रस्थितस्य । विश्रामस्थानमेकं कैविवरवचसां
 जीवनं सज्जनानां, वीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां

- १ कारि असाधवो एम पदच्छेद करवो. २ ते नर मयी किंतु नपुंसक छे.
 ३ साक्षात् शिवरूप छे, नर नहीं. ४ शीघ्र परमपद पावनेके निमित्त
 मोक्षमार्गमें प्रस्थानकारी मुमुक्षु जनोका पाथेय नाम तोषारूप रामनाम हैं.
 ५ अनात्मपदार्थोका निरूपण करनेसे अतिशय भ्रमकों प्राप्त भई जो व्यास वाल्मी-
 क्यादि उत्तम कवीश्वरोकी वाणी ताका तो एक श्रीरामनाम विधांति सदन है.

भूतये रामनाम ॥ १ ॥ पेयं पेयं श्रवणपुटकै
 रामनामाभिरामं । ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं
 ब्रह्मरूपम् ॥ जल्पं जल्पं प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां
 कर्णमूले । वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोपि का-
 शीनिवासी ॥ २ ॥ तथाच प्रल्हादवचनं—रामनामज-
 पतां कुतो भयं, सर्वपापशमनैकभेषजम् ॥
 पश्य तात मम गात्रसन्निधौ, पावकोपि सलिला-
 यतेऽधुना ॥ ३ ॥ कुपितो जनकस्तथापि मे, न
 विरामो जगदीशचिंतनात् ॥ मेशकोपनिपातभी-
 तितः सदनं मुञ्चति किं निजं जनः ॥ ४ ॥ अस्-
 वो यदि यांति यांतु मे, परमानन्दमुकुन्दचिन्त-
 नात् । भवदुःखकदंबभंजनाद्विरमेन्नैव कदापि
 मानसम् ॥ ५ ॥ भर्जनं भवबीजना मर्जनं सुखसं-

१ प्राणप्रयाण समयमें. २ कोइवी काशीनिवासी जटाधारी अर्थात् विश्व-
 नाथ गलीगलीमें फिरते रहते हैं सो वहीबी भ्रियमाण प्राणी दिते वाके दक्षिण
 वर्णके समीप जाके जल्पं जल्पं नाम बारंबार राम तारक मंत्रका उपदेश करते
 हैं. ३ मच्छरोंके उपद्रवके भयसे अपना घर कोइवी छोड़ता नहीं.

पदाम् । तर्जनं यमदूतानां, रामरामेति गर्ज-
नम् ॥ ६ ॥

दोहा

रामनाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥

पद ४६

सर्व काम धाम राम नाम लीजिये । सद्गुरु-
मुखेन सुधाधार पीजिये ॥ सर्व० ॥ टेक ॥
नाम रूपहीन नामरूप ते धरे । मन्दमति
कायमाय काय आदरे ॥ सर्व० ॥ १ ॥ सर्वनो
आधार नामरूपने गले । सद्गुरुविना सभेद
भर्म ना टले ॥ सर्व० २ ॥ सर्वदा समीप दीप

१ रामनामकी गर्जना अवियाकामकर्मादिरूप जन्मबीजके भूनेकी भाठी है, सुखसपदाका संपादक है और यमके दूतोंको भयका जनक है, २ मंदमति लोकोने बास्ते मायिक देह धारण करे छे, “बली निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कुरुम-
नीश्वराः । ये मन्दास्तेनुरूप्यते सविशेषनिरूपणैः ॥” इत्यादि शास्त्र पण एमज फहे छे.

સર્વનો વંશી । રામનામ ધામરામ શામને શશી
 ॥ સર્વ૦ ॥૩॥ રામનામ સ્વાંત ધ્વાંત ધ્વંસને રવિ ।
 ધર્મતરુ વીજ પાપ પર્વતે પવિ ॥ સર્વ૦ ॥ ૪ ॥
 સંસ્ટૈતિ અગાધ સિંધુ તારણે તરિ । લોભ મોહ
 માર કરિ મર્દને હરિ ॥ સર્વ૦ ॥ ૫ ॥ રાગ
 દ્વેષ દોષ કોશ દાહનેજ્વલં । મનોમલપ્રક્ષાલને
 મગીરથીજલં ॥ સર્વ૦ ॥૬॥ મોક્ષધામ કામ પથિ
 ભક્ષ્ય નામજી । નામ છે લખાવનાર લક્ષ્ય રામજી
 ॥સર્વ૦॥૭॥ કરાલ કાલમાં ન આન સાધનો વને ।

૧ વંશી સર્વેસ્ય લોકેસ્ય સ્થાવરેસ્ય ચરેસ્ય ચ રૂપાદિ ધુતિપ્રમાણથી સંપૂર્ણ
 જગત્ જે પરમેશ્વરના વશમાં વર્તે છે. તે રામનું નામ ધામરામ કેતાં તાપનય
 તેને શમાવવામાં ચંદ્રતુલ્ય છે. ૨ સ્વાન કેતાં મન તેમાં રહેલા દ્વાતનો ખંસ
 કેતાં ઉપમર્દન કરવામાં રવિને તુલ્ય છે. ૩ પાપરૂપ પર્વતોને તોડવામાં
 પવિ કેતાં યજ્ઞની સમાન છે. ૪ સસારરૂપ અગાધ સમુદ્રમાંથી તારિ પાર
 કરવાને તરિનામ નાવને તુલ્ય છે. ૫ લોભ મોહ કામ આદિ વિકારરૂપ
 કર્તી (ગર્જો)નો નાશ કરવામાં હરિ (સિંહ) તુલ્ય છે. ૬ રાગ દ્વેષાદિ
 દોષોનો કોશ નામ રાજાનો જે દેહાભિમાન તેને ચાલવામાં અગિરૂપ છે.
 ૭ મોહરૂપ ધામને ધામવાની રૂચ્છાથી ધેયોમાર્ગમાં ચાલનાર મુશ્કુને
 માતારૂપ છે.

एक रामनाम अंतरायने हने ॥ सर्व० ॥ ८ ॥ नामने
समान शुद्धि साधनं नहि । पापहरण पुरश्चरण
स्मरण छे सहि ॥ सर्व० ॥ ९ ॥ श्रेयनुं निदान
मान जे मने धरे । ज्ञान अंतराय हरि तेहनां
हरे ॥ सर्व० ॥ १० ॥

पद ४७

मोक्ष धाम काम रामनाम धी धरो । रामनाम
मोक्ष धाम केम वीसरो ॥ मोक्ष० ॥ टेक० ॥
धाम ते प्रकाश न तु गेह मानिये । सर्वधी
प्रकाश राम धाम जानिये ॥ मो० १ ॥ रमे
जिहां महामुनीश सर्वमां रमे । सत्यज्ञान सौख्य
निधि जाणसो तमे ॥ मो० २ ॥ रामनुं खरुं

१ रमते योगिनोऽनंते सत्यानंदविदात्मनि ।

इति रामपदेनासौ परं प्रज्ञाभिधीयते ॥

रमणाद्राम उच्यते इत्यादि शास्त्रो रामनुं स्वरूप वर्णवे छे.

स्वरूप भूसुता भणे । वातजात पार्वती संदेहने
हणे ॥ मो० ३ ॥ नामविना रूप तो कदापि
ना मले । नामनो उच्चार अंतरायने दले ॥ मो०

१ राम विद्धि पर ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् । सर्वोपाधिविनिर्मुक्त सत्तामात्रम
गोचरम् ॥ १ ॥ आनन्द निर्मल शाल निर्विकार निरञ्जनम् । सर्वव्यापिनमात्मान
स्वप्रकाशमकल्मषम् ॥ २ ॥ मा विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यतकारिणीम् ।
तस्य सन्निधिमन्त्रेण सृष्टामीदमतदिता ॥ ३ ॥ तत्सन्निध्यान्मया सृष्ट तन्मिनारो
प्यतेऽनुधै । अयोध्या नगरे जन्म रघुवशेऽतिनिर्मले ॥ ४ ॥ विश्वामित्रसहायत्वं
मत्ससरक्षणं तत् । अहत्याशापक्षमन चापभगो महेक्षितु ॥ ५ ॥ मत्पाणि-
ग्रहण पश्चाद्भार्गवस्य मदक्षय । अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशमार्षिक ॥ ६ ॥
दण्डकारण्यगमन विराधवध एव च । मायामारीचमरण मायासीताहृति
स्तथा ॥ ७ ॥ जटायुषो मोक्षलाम कवधस्य तथैव च । शषर्षा पूजन
पश्चात्सुग्रीवेण समागम ॥ ८ ॥ वालिनश्च वध पश्चात्सीतान्वेषणमेव च ।
सैनुवधश्च जलार्था लकायाश्च निरोधनम् ॥ ९ ॥ रावणस्य वधो युद्धे राघुनस्य
बुरात्मन । विभीषणे राज्यदानं पुष्पकेण मया सह ॥ १० ॥ अयोध्यागमन
पश्चाद्वाज्ये रामाभिषेकनम् । एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि । आरोप-
यति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽस्मिन्निहारी ॥ ११ ॥ रामो न गच्छति न तिष्ठति
नानुशोचत्यपाक्षते स्वजतिं नो न करोति किञ्चिन् । आनन्दमूर्तिरचल परिणाम
हीनो मायागुणाननुगतो हि तेषां विभाति ॥ १२ ॥

इत्यादि वचनो वदि सीताजीयं धीरामनुवास्तव स्वरूप सरावी हनुमानजीनो
सुदेह दूर कीधो तेमज पार्वतीनो संदेह पण एज वचनोयी धीमहादेवजीयं
मद्राव्यो धे

॥ ૪ ॥ શ્લોક સો કરોડસાર વર્ણને ગણિ ।
 શંકરે દલાલ બનિ ધારેયો મણિ ॥ મો૦ ૫ ॥
 કાશિકા પુરેશ સદા સેરમાં ફરે । પ્રાણનો
 પ્રયાણ જાણ મંત્ર ઉચ્ચરે ॥ મો૦ ૬ ॥ નામ
 સુધા કર્ણ પુટું પાન જે કરે । તારક સ્વરૂપ
 બ્રહ્મચિત્તમાં ઠરે ॥ મો૦ ૭ ॥ સર્વને કૈલાસ
 વાસ ભેદધી ગલે । અત્ર વા અમુત્ર રામ
 ધામમાં ભલે ॥ મો૦ ૮ ॥ પ્રાણનો આધાર ધાર
 સજ્જનો ભજે । જીવન આધાર મીન કેમ તે
 તજે ॥ મોક્ષ૦ ॥ ૧ ॥ રામનામ જાપ હરે સર્વ
 ભીતડી । કીજિયે પ્રલ્હાદ યાદ સત્ય પ્રીતડી ॥

૧ કવીશ્વર શ્રીવલ્લભીકીજીયે શતકોટિ શ્લોક રચ્યા જેમા શ્રીરામચરિત વર્ણવ્યું છે. તેના પ્રણ વિભાગે ત્રિલોકીને વેંચી દેતાં ઘાફી બે અક્ષર વચ્ચા તે રકારમકારરૂપ તે શ્રીમહાદેવજીને મળ્યા તેમાં બીજા એકાદશ અક્ષર મિલાવિ તેમ અક્ષરનો શ્રીરામ તારક મંત્ર બનાવિ શ્રીકાશીપુરીમા લઈ ગયા ત્યાં કોઈપણ પ્રાણી દેહહ્યાય કરવા લાગે તે વચ્ચે તેના જમણા કાનમાં તેનો ઉપદેશ આપે છે, તે મંત્રના પ્રભાવથી તે પ્રાણી શ્રીકૈલાસ લોકને પામે છે. ત્યાંથી અનુક્રમે કૈવલ્યમોક્ષને પામે છે. ૨ જેમ માછલાનું જીવન, જીવન નામ જલને બધારેજ છે તેમ સજ્જનોનો જીવનાધાર શ્રીરામ છે.

मो० ॥ १० ॥ नामनो प्रभाव मुखे केटलुं कहे ।
 ज्ञानमुनि वाच साच मौनने गृहे ॥ मो० ११ ॥
 श्रीराम लक्ष्मण सीताजी चित्तकूटमां पधारि. त्यां निवास
 करवानी इच्छाथी वाल्मीकि मुनि प्रत्ये पूछे छे.

श्लोकाः

यत्र मे सुखवासाय भवेत्स्थानं वदस्व तत् ।
 सीतया सहितः कालं किञ्चित्तत्र नयाम्यहम् ॥
 इत्युक्तो राघवेणासौ मुनिः सस्मितमब्रवीत् ॥ १ ॥

वाल्मीकिरुवाच

त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् ।
 तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि ॥ २ ॥
 एवं साधारणं स्थानमुक्तं ते रघुनन्दन ।
 सीतया सहितस्येति विशेषं पृच्छतस्तव ॥ ३ ॥
 तद्वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत्ते नियतमन्दिरम् ।
 शान्तानां समदृष्टीनामद्वेषूणां च जंतुषु ।
 त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम् ॥ ४ ॥

धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम् ।
 सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमन्दिरम् ॥ ५ ॥
 त्वन्मंत्रजापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः ।
 निर्द्वन्द्वो निःस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ॥ ६ ॥
 निरहंकारिणः शांता ये रागद्वेषवर्जिताः ।
 समलोष्टाश्मकनकास्तेषां ते हृदयं गृहम् ॥ ७ ॥
 त्वयि दत्तमनोबुद्धिर्यः संतुष्टः सदा भवेत् ।
 त्वयि संत्यक्तकर्मा यस्तन्मनस्ते शुभं गृहम् ॥ ८ ॥
 यो न द्वेष्ट्यप्रियं प्राप्य प्रियं प्राप्य न हृष्यति ।
 सर्वं मायेति निश्चित्य त्वां भजेत्तन्मनो गृहम् ॥ ९ ॥
 पद्भवादि विकारान्यो देहे पश्यति नात्मनि ।
 क्षुत्तृट्सुखं भयं दुःखं प्राणबुद्ध्योर्निरीक्षते ॥ १० ॥
 संसारधर्मे निर्मुक्तस्तस्य ते मानसं गृहम् ॥ ११ ॥

पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं

त्वां चिद्धनं सत्यमनंतमेकम् ।

अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं

तेषां हृदब्जे सह सीतया वस ॥१२॥

निरंतराभ्यासदृढीकृतात्मनां

त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम् ।

त्वन्नामकीर्त्याहतकल्मषाणां

सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे ॥ १३ ॥

राम त्वन्नाममहिमा, वर्ण्यते केन वा कथम् ।

यत्प्रभावादहं राम, ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ॥ १४ ॥

श्रीवाल्मीकि मुनि कहते हैं.

चौपाई

चिदानन्दमयदेह तुह्यारी, विगत विकार जान
अधिकारी ॥ नरतनु धरेड सन्तसुरकाजा, कहहु
करहु जस प्राकृत राजा ॥ १ ॥ राम देखि सुनि
चरित तुह्यारे, जड मोहहिं बुध होहिं सुखारे ।

१ साधारण राजाओंकी तरह कहते हो और करते हो. २ आपके
चरित्रोंको देखकर और सुनकर मूर्ख लोक तो मोहित हो जाते हैं. और
ज्ञानवान परम सुखको पावते हैं.

तुम जो कहहु करहु सब सांचा, जैस काछिय
तस चाहिय नाचा ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

पूछेउ मोहिं कि रहहुँ कहँ, मैं कहते सकुचाउँ ।
जहँ^२ न होउ तहँ देहुकहि, तुमहिं दिखाउँ ठाउँ ३

चौपाई

सुनि मुनिवचन प्रेमरस साँने, सकुचि राम
मन महुँ मुसुकाने ॥ वालमीकि हँसि कहहिं ब-
होरी, वाणी मधुर अभिय रस बोरी ॥ ४ ॥
सुनहु राम अब कहौं निकेता, वैसहु जहाँ
सिय लयण समेता ॥ जिनके श्रवण समुद्र
समाना, कथा तुम्हारि सुमग सरिनाना ॥ ५ ॥

१ क्योंकि जैसा भेष बनाया जाय वैसाही नाचना चाहिये. २ आप अस्ति-भाति प्रियरूपसें सर्वव्यापक हो आपविना किंचित् मानभी खाली जगत् बतावो तो सो आपको रहनेका स्थान दिखाऊँ. ३ सहित. ४ उपरति वा शातिरूप सीता तथा वैराग्यरूप लक्ष्मण तत्त्वज्ञानस्वरूप आप निवास करो. ५ तुम्हारी नाना प्रकारकी कथारूपी नदियाँ जिनके कानरूपी समुद्रको निरंतर भराही करती है परंतु वह पूरा नहि होता.

भरहिं निरन्तर हो हिं न पूरे, तिनके हिये
 सदन तव रूरे ॥ लोचन चातक जिन करि
 राखे, रहहिंदरश जलधर अभिलाषे ॥ ६ ॥
 निदरहिं सिंधु सरित सरवारी, रूपविन्दु लहि
 होहिं सुखारी ॥ तिनके हृदय सदन सुखदा-
 यक, वसहु लपण सियसह रघुनायक ॥ ७ ॥

॥ दोहा ॥

यश तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहाँ जासु ॥
 मुक्ताफल गुण गण चुगहिं, वसहु राम हिय तासु ८

चौपाई

प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा, सादर
 जासु लहै नित नाशा ॥ तुमहिं निवेदित भोजन
 करहीं, प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं ॥ ९ ॥

१ जिनके लोचनरूपी चातक सिंधु सरितादिके जलरूप अन्य प्रपंचका
 अनादर करिके आपके रूपमय भेषोदङ्की विन्दुको चाहता है. २ जिन्दारूप
 हंसपक्षिणी. ३ जिनकी नासिका आपके प्रसादकी पवित्र सुन्दर सुगंधिकी
 आदरसहित सूँघती है.

शीश नवहिं सुर' गुरु द्विज देखी, प्रीति सहित
 करि विनय विशेषी ॥ करनित करहिं राम पद
 पूजा, राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥ १० ॥
 चरण राम तीरथ चलि जाहीं, राम वसहु ति-
 नके मनमाहीं ॥ मंत्रराज नित जपहिं तुझारा,
 पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा ॥ ११ ॥ तर्पण
 होम करहिं विधिनाना, विप्र जेवाइ देहिं बहु
 दाना ॥ तुमतेँ अधिक गुरुहिं जिय जानी,
 सकल भावसेवाहिं सनमानी ॥ १२ ॥

दोहा

सबकरि माँगहिं एक फल, रामचरण रति होउ ।
 तिनके मनमंदिर वसहु, सिय रघुनंदन दोउ ॥

चौपाई

काम क्रोध मद मान न मोहा, लोभ न क्षोभ न

१ ॥ दोहा ॥ बने तो रघुवर तेँ बने, के बिगरे भरपूर । तुलसी बने जु और
 तेँ तावनवेमें धूर ॥ और हठे यापेँ मारे तुँ न हठो चाहिये । और रीझे या
 न रीझे तुँहि रीझ्यो रहिये ॥ २ ॥ रामः करोतु मयि वीपमयो दया वा-इत्यादि
 वचनोसे अिनको तुम्हाराही पूरण भरोसा है. २ विसकी चंचलता.

राग न द्रोहा ॥ जिनके कपट दंभ नहिं
 मायो, तिनके हृदय बसहु रघुराया ॥ १४ ॥
 सबके प्रिय सबके हितकारी, दुख सुख सरिस
 प्रशंसां गारी ॥ कहहिं सत्यप्रिय वचन विचारी,
 जागत सोवत शरण तुहारी ॥ १५ ॥ तुमहिं
 छाँड़ि गति दूसर नाहीं, राम बसहु तिनके
 उरमाहीं ॥ जननी सम जानहिं परनारी,
 धन पराय विष तैं विष भारी ॥ १६ ॥ जे हरषहिं
 पर संपत्ति देखी, दुखित होहिं पर विपत्ति
 विशेषी ॥ जिँनहि राम तुम प्राण पियारे, तिनके
 उर शुभ सदन तुहारे ॥ १७ ॥

दोहा

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम
 तात । तिनके मनमंदिर बसहु, सीयसहित
 दोउ भ्रात ॥ १८ ॥

१ अपकार, २ मायाविषे दोहा-अंतरमें कछु अवर है, बार दिखा न और ॥
 सो माया मुनिजन कहत, छल बल कपट कठोर ॥ १ ॥

चौपाई

अवगुण तजि सवके गुण गहहीं, विप्रधेनुहित
संकट सहहीं ॥ नीतिनिपुण जिनकी जग-
लीका, घर तुह्यार तिनके मननीका ॥ १९ ॥

गुण तुह्यार समुझहिं निज दोषू, जेहि सव
भ्रांति तुह्यार भरोसू ॥ राम भक्तप्रिय ला-
गहिं जेही, तेहिं उर वसहु सहित वै-
देही ॥ २० ॥ जाति-पाति धनधर्म बड़ाई,
प्रिय परिवार सदन समुदाई ॥ सव तजि तु-
महिं रहैं लवलाई, ताके हृदय वसहु रघु-
राई ॥ २१ ॥ स्वर्ग नरक अपवर्ग समाना, जैह
तहैं दीख धरैं धनु वाना ॥ मन क्रम बचन
जो राँउर चेरा, राम करहु ताके उर डेरा ॥ २२ ॥

दोहा

जाहि न चाहिय कबहु कलु, तुमसन सहज

१ जिनकी गणना संसारके नीति जाननेवालोंमें है. २ मोक्ष. ३ जहां तहां
आपहीकों धनुष बाण धारण किये देखते हैं. ४ आपके दास हैं.

सनेह । वसहु निरंतर तासु उर, सोराउर निज
गेह ॥ २३ ॥

॥ पद ४८ राग-टोडी ॥

मुनिवर करिये कुत्र निवास ॥ टेक ॥ चित्र-
कूटमें राम पधारे, पूछत विनय विकाश ॥
मुनि० ॥ १ ॥ वाल्मीकि मुसकात वदत मुनि,
मुनिये जगदधिवास ॥ सब लोकनकर वास
सदन तव, व्यासिभूत भुवनास ॥ मु०
॥ २ ॥ ओत प्रोत जग है तुजमांहीं, ज्यों ल-
हरी जलराश ॥ जलथल पूरन जनवनघनमें,
भूतभुवन भरतास ॥ मु० ॥ ३ ॥ ज्यों भूषणमें
कनक निवासा, घटजल रवि आभास ॥ तुज
विन खाली रंच न दीसे, ज्यों पूरण आकाश
॥ मु० ॥ ४ ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मै वासि वेद
वच नास ॥ एक अखंड चहो पुनिथानक यहि
अचरज बडहास ॥ मु० ॥ ५ ॥ तुजविन आन न

कार्य न कारण, नाहि परोक्ष न पास ॥ जहां न
 होवो सो स्थल दसिये, तहां दिखावों वास
 ॥ मु० ॥ ६ ॥ यत्र नान्यदिति नेहनानेति, पूरण
 तावदतास ॥ यत्र त्वस्य इति यजुर्वचनवी,
 करहीं भेदनिरास ॥ मु० ॥ ७ ॥ द्वैतविना नाधा-
 राधेयता सत्तामात्र समास ॥ मातामानप्रमेय
 प्रमुख जग, चिद्धनमेव चकाश ॥ मु० ॥ ८ ॥
 सतचिद आनंद एक अखंडित, आपहि आप अ-
 नाश ॥ करि करुणा कृत वचन विलासा, नही
 वचन अवकाश ॥ मु० ॥ ९ ॥ वक्ता श्रोता यत्र
 न दीसे, रामहि राम रमास ॥ ज्ञान मौनमें
 वाचन चाले, प्रत्यय पर निर्भास ॥ मु० ॥ १० ॥

॥ पद ४९ ॥

रघुवर करिये अत्र निवास ॥ टेक ॥ उपरैति

१ श्लोक ॥ वैराग्यबोधोपरमा, सहामासो परस्परम् । प्रायेण सहवर्तते
 विगुज्यते हचित्तचित् ॥ १ ॥ सत्त्वबोध प्रधान स्यात्साक्षात्तमोक्षप्रदत्वत् ।
 बोधोपकारिणावेर्ता वैराग्योपरमायुगौ ॥ २ ॥ त्रयोऽप्यत्यन्त पक्षाधेन्नदत्त-

सीत विरागलक्ष्मणासहित ज्ञान घरवास ॥ २० ॥ १ ॥
 शरणगृही सद्गुरुमुख मनुवर, पाय सदायज पास ।
 जपत नाम निष्काम नियमधर, निर्मल हृदया-
 काश ॥ २० ॥ २ ॥ तावक-ध्यान मनो लय लीना,
 कीट भ्रमर सम जास । जो कृत करत धरत
 तव पदमें, नाहंकृति फल तास ॥ २० ॥ ३ ॥ माया
 मोह पर-द्रोह न जाने, दुष्कृति मात्र उदास ।
 शुद्धाशय नयवंत संतको, मानस शुभ आवास
 ॥ २० ॥ ४ ॥ सद्गुरुकों तव रूप निहारत, श्रद्धा
 भक्ति विश्वास । श्रवण मनन निदिध्यासन
 करि दृढ, अद्वय बोध विकाश ॥ २० ॥ ५ ॥ जग

लपसः फलम् । दुरितेन कर्त्तिक्रितिकदाचित्प्रतिषण्यते ॥ ३ ॥ वैराग्यो-
 परती पूर्ण बोधस्तु प्रतिषण्यते । यस्य तस्य न मोक्षोऽस्ति पुण्यलोकस्तपो बलात्
 ॥ ४ ॥ पूर्ण बोधे तदन्यौ द्वौ प्रतिषद्दौ यदा तदा । मोक्षो विनिश्चितः किञ्च
 दृष्टुं न नश्यति ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोकतृणीकारो वैराग्यस्यावधिर्मतः । देहा-
 त्मवत्परात्मत्वदार्ढ्यं बोधः समाप्यते ॥ ६ ॥ सुप्तिवद्विस्मृतिः सीमा भवेदुपर-
 मस्य हि । दिशानया विनिश्चयं सारतम्यमवातरम् ॥ ७ ॥

१ उत्तम राममंत्रको पायके.

मिथ्या परमेश्वर साचो, जीव ब्रह्मभिद नाश ।
 त्रिविधा ग्रंथि गली चेतन जड, संशय कर्म कलाश
 ॥ २० ॥ ६ ॥ सदा समाहित चित वृत, अंतर्ज्योति
 रमण सुखराश । भोग्यमात्रकर तृष्णा नाशी,
 कलनामात्र खलास ॥ २० ॥ ७ ॥ शांत दांत सम
 दृग जगसुखकर, अद्वेष्टा सकलास । सोहं पदमें
 संतत जागे, पार्श्व नाश गलि ताश ॥ २० ॥ ८ ॥
 धर्माधर्मविहीन भजन रत, तुम विन दृष्टि न
 जास । द्वंद्व धर्म निर्मुक्त गत स्पृह—अहं ममता
 अध्यास ॥ २० ॥ ९ ॥ देखनमात्र शरीर जिनोंका,
 प्रारब्धांत प्रतिभास । ज्ञानानंद निवास योग्य
 अस, शुभ घर मोह विनाश ॥ २० ॥ १० ॥

॥ पद ५० ॥

कर हरि सज्जनहृदय निकेत ॥ टेक ॥ ज्ञान-
 रूप तुम विरति लक्ष्मणा, सीता शांति समेत

॥ कर० ॥ १ ॥ विषयवियोगी तवपदपंकज-रस
 पट पद इव लेत ॥ तन मन इंद्रिय-विजय वि-
 नयधर निर्मल निश्चल चेत ॥ कर० ॥ २ ॥ सद्गुरु
 संत भगवंत एकता, समुज रमज समवेत ॥
 तनमनइंद्रिय प्राणप्रकाशक, साक्षी ब्रह्म लखित ॥
 कर० ॥ ३ ॥ अहंपद सैंधवधन इव निजपद-साग-
 रमांहि गलेत ॥ पङ्क्तिार उर्मी पट्कादिक, धर्म-
 अनात्मनिखेत ॥ कर० ॥ ४ ॥ नाहं कर्त्ता भोक्ता
 सुखदुख, जिनके तिनकों देत ॥ मोह न समता
 सबजग समता, सत्तामात्र निर्णेत ॥ कर० ॥ ५ ॥
 प्रियकों पाय न मनमें हर्षे, अप्रियनेवद्विपेत ॥
 मायामय संसार निहारत, सकल विकार दलेत ॥
 कर० ॥ ६ ॥ सैवभूतनकी आप निशा, प्रभु तामें रहत
 सुचेत ॥ सर्व भूतजागत जा हृदमें, सा मुनि निशा
 भवेत ॥ कर० ॥ ७ ॥ मारादिक सारे रिपु मारे, आशा

१ भृग २ अनात्मभूतक्षेत्रके धर्म हैं ३ 'या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति
 सयमी ॥ यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो गुणे' इति गीतोक्ते —

तृष्णा प्रेत ॥ तृष्णा तिलभर ना जाके मन, निरा-
शीप विचरेत ॥ कर० ॥ ८ ॥ निःसंकल्प निष्काम
अमानी, प्रत्यग्धी रक्षेत ॥ ज्ञानामृत परितृप्त
गतस्पृह, निर्जेन देश वसेत ॥ कर० ॥ ९ ॥

॥ पद ५१ ॥

कर हरि मुनिजन मनसि निवास ॥ टेक ॥
सीता लक्ष्मण शांति विराग, सुसेवक संततपास
॥ कर० ॥ १ ॥ शुभ कृत जल-क्षालित मल, ना-
शित चिद्वासन दुर्वास । तावक ध्यान रजो हर
दीपक, वर विवेक तमनाश ॥ कर० ॥ २ ॥ तन
अभिमान गयो घर छोडी, तोडी आशापाश । राग
द्वेष मद मच्छर सारे, डारे वार निकास ॥ कर०
॥ ३ ॥ जात पात कुल गोत्र गुमाना, वर्णाश्रम
गलिताश । तृण समान त्रैलोक विलोकत, आशा

१ माया तत्कार्यरूप जनरहित ब्रह्मदेशमें जे वसते हैं. २ ता परमें रजो-
गुणरूप रज था सो गुमारे मगुण रूपके ध्यानसे निवृत्त हो गया है और जो
अज्ञानरूप अपेरा था ताका उत्तम विवेकरूप दीपक से नाश हो गया.

मात्र निराश ॥ कर० ॥ ४ ॥ मायामय जग
 सत्य न जानत, गलित सकल अध्यास । निंदा
 स्तवन समान मित्र रिपु, आत्मउपम दर्शास
 ॥ कर० ॥ ५ ॥ मान अमान समान सुहृद
 जग-हितकर जन वनवास । कृत अकृत जाकौं
 न तपावत, आत्माकार समास ॥ कर० ॥ ६ ॥
 सर्वाधार वसे सब घटमें, लित न जिम आकाश ।
 सद्धन चिद्धन सुखघन पूरन, पावन परम
 प्रकाश ॥ कर० ॥ ७ ॥ ऐसो तावक रूप निहारत,
 कृत भिद विभ्रम नाश । सोहं हंसो हंसः सोहं,
 अस धुन जा घर आस ॥ कर० ॥ ८ ॥ तव महिमा
 मन वचन अगोचर, क्या बोले तव दास ॥ सहि-
 तसीत घरवास निमित्तक, कीनो वचन विलास
 ॥ कर० ॥ ९ ॥ लीला वपुधर वास करो त्रय, चित्र-
 कूट गुनराश । ज्ञानामृत रस हमहि पिवावो,
 गंगातट कुट्यास ॥ क० ॥ १० ॥

॥ पद ५२ राग विहाग. ॥

रमाधर कष्ट निवारो परो ॥ टेक ॥ भक्त
तमारा भवजल डूवे, तेमांथी उद्धरो ॥ रमा० ॥१॥
मारो भक्त प्रणाश न पामे, गीता गत उद्धरो ॥
२० ॥२॥ अधुनानिज जननें वीसार्या, बोलीने कां
फरो ॥ २० ॥३॥ गज गणिकादि अनेक उगार्या,
आज शयन कां करो ॥ २० ॥४॥ कृष्णा-कष्ट
कदर्थन केशव, निज वृत्तने अनुसरो ॥ २० ॥५॥
दानवारि शुभ नाम धराव्युं, दानव दल संहरो ॥
२० ॥६॥ काम भाम मद लोभ विमोहन, निर्मू-
लन निर्भरो ॥ २० ॥७॥ तन अभिमान भोज-
पति ममता, पूतनिका परिहरो ॥ २० ॥८॥ काम
अघासुर कोप वकासुर, लोभ धेनुकासुरो ॥ २० ॥

१ "कर्मतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति" एव तमे गीतामां प्रतिपा
दीयेत छे. २ द्रौपदीना कष्टने दलनार. ३ कंग.

॥૧॥શ્રી મધુસૂદન નામ તમારું, સાર્થકતા મન ધરો
 ॥ ૨૦ ॥૧૦॥ જન્મ મરણ ભવ કષ્ટ ઘનેરો, નાશક
 ધી વિસ્તરો ॥ ૨૦ ॥૧૧॥ દેશિક રૂપે આપ વિરાજો,
 વોધ ઉદય આદરો ॥ ૨૦ ॥ ૧૨ ॥ શોક વિમોહ
 સંકલ સંહારો, નરે તમહર સદ્ગુરો ॥ ૨૦ ॥ ૧૩ ॥
 જ્ઞાનાનંદની આશા પૂરો, સંતત અંતસ્ફુરો ॥ ૨૦ ॥ ૧૪ ॥

॥ શ્લોકઃ ॥

કૃંપિર્મૂવાચકઃ શબ્દો ણશ્ચનિર્વૃત્તિવાચકઃ ।
 તયોરૈક્યં પરં બ્રહ્મ કૃષ્ણાં ઇત્યભિધીયતે ॥ ૧ ॥
 કથં હિ સ્તૌમિ ગોપાલ શક્યલક્ષ્યપરાત્પરમ્ ।
 રૂપં તવ ગિરાતીતં મનોતીતમગોચરમ્ ॥ ૨ ॥
 દ્વિવિધોપાધિજાતિભ્યો વિહીનં ગુણકર્મભિઃ ।

૧ મધુ નામ અહકાર તેનો નાશ કરે તે મધુસૂદન અથવા મધુ નામ સ્વરૂપાનંદ,
 તેને મષ્ટજનોનાં હૃદયમાં પ્રગટ કરે તે મધુસૂદન. ૨ નર જે અર્જુન તેના
 અજ્ઞાનને હરનાર. ૩ હે સદ્ગુરો ! અર્થાત્ આપ સત્પુરુષોના ગુણ છો અથવા
 સદ્ગુણોનો ઉપદેશ કરનાર છો. ૪ કૃપ્ ધાતુ સત્તાકા વાચક છે. ઓ ણ યદ
 પ્રત્યયરૂપ શબ્દ આનંદકા વાચક છે.

स्वरूपे तिष्ठदेकं हि वक्तृवक्तव्यपारगम् ॥ ३ ॥
 स्वप्रकाशसदानन्दं भेदस्वरूपभेदकम् ।
 घटते वस्तुसत्यत्वे भेदो नैव विकल्पतः ॥ ४ ॥
 अनवस्थादि दोषैश्च भेदरूपं न लभ्यते ।
 तव रूपमतो मिथ्या जडेन किं प्रकाश्यते ॥ ५ ॥
 विकल्पस्य तु मिथ्यात्वे भवान्हि मानमीश्वरः ।
 अतोऽनिर्वचनीयैव ख्यातिवादेऽपि शोभते ॥ ६ ॥
 अतो द्विविधसत्तापि ददात्येव प्रसन्नताम् ।
 शान्तिं दान्तिं वितृष्णत्वं भेदाभेदनिहन्तृताम् ॥ ७ ॥
 यदा मायां वशीकृत्य भक्तानुग्रहकातरम् ।
 मनोहरं परानन्दं जगदुच्चारणम् ॥ ८ ॥
 अस्मदभिमुखं गम्यं भक्तैर्भवत्परायणैः ।
 धनैर्धन्यकरैः स्वस्थैः शान्तैः शुद्धैः सुमङ्गलैः ॥ ९ ॥
 धृत्वा गच्छसि लोकेस्मिंस्तेस्मिन्निरास्वशक्तिः ।

१ विकल्पके मिथ्यात्वमें आप ईश्वरही प्रमाण हो. २ इसलोकके अभिमुख.
 ३ भक्तोंके गम्य. ४ ऐसे रूपमें सबकी वाणीययाशक्ति प्रष्ट हो जाती है.

प्रवर्त्ततेहि सर्वस्य सर्वस्यान्तर्गतोप्यहम् ॥ १० ॥
 दामोदरश्च गोपालः पूतनामातृभावकः ।
 स्वभक्तवच्च कंसस्य गतिदो कैल्पवत्समः ॥ ११ ॥
 कालीयविपहर्त्ता च गिरिधरोऽग्निभक्षकः ।
 अर्जुनरथनेता च भीष्मस्य प्रणपालकः ॥ १२ ॥
 एवंविधानि नामानि भक्ताभक्तहितं समम् ।
 द्योतयन्ति परानन्दं मन आकर्षणानिहि ॥ १३ ॥
 स्वभक्तवत्सलो नाम भक्तस्य भवतु प्रियम् ।
 संसारपालको नाम सर्वरक्षां करोतु मे ॥ १४ ॥
 जनयितास्य विश्वस्य भवान्पालयिता स्वयम् ।
 अतःकस्माच्च का हानिः सकलान्तर्गतस्य मे ॥ १५ ॥
 भवानेव पिता माता गुरुः संवन्धिनस्तथा ।
 पालको रक्षको दाता सुखदः शरणं महत् ॥ १६ ॥
 पाहि पाहि जगन्नाथ सैत्सर्वस्व परेश्वर ।
 सर्वाधिष्ठानचाधार दीनं मां शृणागतम् ॥ १७ ॥

१ आप कल्प वृक्षवत्सर्वत्र समान हो अत एव कसको भी अपने भक्तोंकी
 न्याइ गति देते भये । २ हे सतजनोंका सर्वस्व.

मिथुं भवत्कृपायाश्च भवद्विलोकनस्य च ।
 विलोकयत मां भृत्यं निर्भरकृपया स्वयम् ॥ १८ ॥
 सर्वमेव भवानेकः पङ्क्तुणोऽपिगुणात्परः ।
 नमः सर्वाय शुद्धाय तीर्थतीर्थकराय च ॥ १९ ॥
 विश्वेश्वराय बोधाय बोधकाय परात्मने ।
 नमः कृपास्वभावाय प्रदात्रे स्वसुखस्य च ॥ २० ॥

कृष्ण त्वदीय पदपंकजपंजरांते,
 अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः ॥

प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः,
 कंठाऽज्वरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥ २१ ॥

पदंध्यायं २ सुजनमुनिवंद्यं मधुरिपो-
 गुणान्स्मारं २ भवजलधिपारं गमयतः ॥
 रसं पायं २ यदुपतिगिरां वेदशिरसां,
 मतिर्भूयो २ मम हरिपदाब्जे प्रविशतु ॥ २२ ॥

यत्पादांबुजपद्पदी मतिरियं त्यक्त्वाखिलाहंकृतिं ।
 स्वात्मानन्दमृतेन कुत्रविषये रंतुं मनागीप्सति ॥
 यद्बोधामृतपूरपूरितधियं काचित्क्रिया न स्पृशेत् ।
 तं श्रीकान्तमनर्थधामविधुरं नित्यं मुकुंदं भजे २३
 श्रीगोविंदपदांभोजमधुनो महदद्भुतम् ।
 यत्पायिनो न मुंचंति मुंचंति यदपायिनः ॥ २४ ॥
 आम्नायाभ्यसनान्यरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं ।

१ जाके चरणकमलकी भ्रमरीरूप यह मति संपूर्ण अहंकारको छोड़के स्वात्मानंदकेविना किसी भी विषयमें रमण करनेकूं किंचित्मात्रभी इच्छा नहीं रखती. २ जिसके बोधामृतके पूरसे पूरित है यदि जिसकी ताकतों कोई भी क्रिया स्पृशे नहि करती. ३ आम्नायजो वेदताका अभ्यास सो अरण्य-रुदनके समान है, औ कृच्छ्रादि व्रतभी भिन्नछिन्न आश्रयवाले हो जाते हैं, औ “वापीकूपतडागानि देवताऽऽयतनानि च । भजनप्रदानमारामः पूर्तमिष्टमिधीयते” इत्यादि शास्त्रोक्त अनेक प्रकारके, पूर्तकर्म भी राखमें हवनके समान हो जाते हैं, तथा गंगादि तीर्थस्नान गजस्नान वत् हो जाता है, इस प्रकार जिस परमेश्वरकी संस्तुति नाम भक्ति बिना सारे कर्म निष्फल जैसे हो जाते हैं सो एक नारायण देवही सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्तमान है. औ भक्तिसे ता-मगवत्को पत्रं पुष्पं फलं तोयं इत्यादि स्वल्पमात्र पदार्थ भी समर्पण किया परितोषका हेतु है, तासे ऐसे करना चाहिये कि:—कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतः स्वभावात् । करोमियद्यत्सकलं परस्मै नारायणायैव समर्पयामि ॥ १ ॥ अक्षार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नी ब्रह्मणो हुतम् । ब्रह्म तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ॥ २ ॥ इति.

भेदच्छेदपदानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि ।
 तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद-
 द्वंद्वंभोरुहसंस्तुतिं विजयते देवः स नारायणः ॥२५॥
 आनंदं गोविंदं मुकुंदं रामं नारायणानंतं निराम-
 येति । वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां
 व्यसनानि मोक्षे ॥२६॥ रत्नस्थले जानुचरः कुमारः
 संक्रांतमात्मीयमुखारविंदम् । आदातुकामस्त-
 दलाभखेदान्निरीक्ष्य धात्रीवदनं रुरोद ॥ २७ ॥
 शिरो नाको नेत्रे शशिदिनकरावंवरमुरो दिशः

१ विपत् अथवा कामक्रोधजन्य विग्रह. २ रत्न स्थलमें जानुसे चलता श्रीकृष्ण दर्पणसमूहमें प्रतीतभये अपने मुखाभासनको पकड़नेकी इच्छा करता है परंतु हाथमें न आनेसे यशोदाके मुखको देखके रुदन करता भया, इहां विषप्रतिविंबकी एकता समुजाय रहा है ता सैनकों माई जानती नहि यद्दही रुदनमें हेतु है. ३ इस पद्यमें विराटका वर्णन है. हे भगवन् नाक (स्वर्ग) आपका शिर है, शशि सूर्य नेत्र है अंबर आकाश आपका उर नाम वक्षस्थल है, दश दिशा आपका श्रोत्र है वेदसमूह आपकी वाणी है, इला (भूमि) कटि है, समुद्र आपका बस्ति (मूत्रस्थान) है, सात पाताल आपका चरण है, ऐसा आपका विश्वरूप है ताकों न जानके कुतुहिलोक आपको मनुष्य मानके आपकी अवज्ञा करते हैं.

श्रोत्रं वाणी निगमनिकरस्ते कटिरिला । अकू-
 पारो वस्तिश्चरणमपि पातालमिति वै । स्वरूपं
 तेऽज्ञात्वा नृतनुमवजानन्ति कुधियः ॥ २८ ॥
 शरीरं वैकुण्ठं हृदयनलिनं वासंसदनं मनोवृ-
 त्तिस्ताक्षर्यो मतिरियमथो सागरसुता । विहार-
 स्तेऽवस्थात्रितयमसवःपार्यदगणो न पश्यत्य-
 ज्ञात्वामिह बहिरहो याति जनता ॥२९॥ अहं त्वं
 त्वमहं देवदिष्ट्या भेदोस्ति नावयोः । दिष्ट्या मत्तां
 प्रयातोसि दिष्ट्या त्वत्तामहं गतः ॥३०॥ नमो देवा-
 धिदेवाय पराय परमात्मने । तुभ्यं मह्यमनन्ताय
 मह्यं तुभ्यं शिवात्मने ॥ ३१ ॥

१ इस पद्यमें विष्णु भगवान्को आत्मरूपमें वर्णन करे हैं स्थूल सूक्ष्म-
 रूप ब्रह्म है, हृदयकमलरूप मंथिर है मनोवृत्तिरूप गह्वर है, सुदिरुगा लक्ष्मी
 है, तीन अवस्था आपका विहारस्थान है, प्राणरूप पार्यदगण है ऐसे निजात्म-
 रूप आपको न जानके मूर्ख लोग बाहिर भटकते हैं, यह ही बड़ा आश्चर्य है.
 २ हे देव हमारा गुमारा भेद निहात हो गया तो बड़ा भयंकर भया.

प्रमोतारं मानं फलमपि च मेयं त्रिजगतां । नियंता-
 रं जीवं विगलितभिदं शुद्धममलम् । यमाहुर्व्यो-
 गीन्द्राजडतनु-समासंगवशतो नमामस्तं कृष्णं
 ब्रजयुवतिचित्तालिकमलम् ॥ ३२ ॥ ज्ञानामृतस्य
 यच्चित्तं त्वं विजानासि सर्वग । समर्पये तव
 प्राणे प्राणं बुद्धौ मतिमम ॥ ३३ ॥

१. एकहि शुद्ध चिद्धनरूप श्रीकृष्णको जडरूप त्रिविध शरीर उपाधिके
 संबंधसे सप्तभेद योगीन्द्र कथन करते हैं. तथाहि.

१ प्रमातृचेतन (अंतःकरण अविच्छिन्न चेतन) .

२ प्रमाणचेतन (अंतःकरणवृत्तिअविच्छिन्न चे०)

३ प्रमेयचेतन (घटादिविषयावच्छिन्नचे०)

४ फलचेतन (घटादि आकारवृत्ति अभिव्यक्तचे०)

५ जीवचेतन (अविद्याविशिष्टचे०)

६ ईशचेतन (मायाविशिष्टचे०)

७ शुद्धचेतन (मायाअविद्यासंबंधरहितचे०)

पुनः जो चेतनरूप कृष्णब्रजवनिताओंके चित्तरूप प्रमरोके गुंजार करनेके
 लिये कमलरूप है । अथवा नरदेहरूप ब्रजमें रहनेवाली अनेक चित्तवृत्तियोंका
 परम आधाररूप है० तिस चेतनरूप श्रीकृष्णको हम नमस्कार करे हैं.

अथ श्रीगोविन्दाष्टकप्रारंभः

श्रीगणेशाय नमः ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं,
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम् ।
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकारं,
क्षमामानाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् १

मृत्क्षामत्सीहेति यशोदाताडनशैशवसंत्रासं,
व्यादितवक्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालि-
म् । लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोक मनालोकं,
लोकेशं परमेशं प्रणमत० ॥ २ ॥

त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं;
कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम् ।
वेमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासमनाभासं; शैवं
केवलशान्तं प्रणमत० ॥ ३ ॥

गोपालं प्रभुलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालं,
गोपीखेलन गोवर्धन-धृतिलीलालित-गोपा-
लम् । गोभिर्निगदित-गोविन्दस्फुटनामानं बहु-
नामानं, गोधीगोचरदूरं प्रणमत० ॥ ४ ॥

गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदाऽवस्थमभेदाभं,
शश्वद्गोखुरनिर्धूतोद्धृतधूलीधूसरसौभाग्यम् । श्र-
द्धाभक्तिगृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावं,
चिन्तामणिमणिमानं प्रणमत० ॥ ५ ॥

ज्ञानव्याकुलयोपिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं,
व्यादित्सन्तीरथदिग्वस्त्राउपधातुमुपकर्षन्तम् ।
निर्धूतद्वयशोकविमोहं बुद्धं बुद्धेरन्तस्थं, सत्तामा-
त्रशरीरं प्रणमत० ॥ ६ ॥

कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालघना-
भासं, कालिन्दीगत-कालियशिरसि मुहुर्नृत्यन्तं
सुनृत्यन्तम् । कालं कालकलातीतं कलिताशेषं
कलिदोषघ्नं, कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत० ॥ ७ ॥

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराधितवद्येहं,
 कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दं सुहृदानन्दम् ।
 वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वं, व-
 न्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत० ॥ ८ ॥

गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो
 गोविन्दाच्युतमाधवविष्णोगोकुलनायककृष्णेति ।
 गोविन्दांग्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघो
 गोविन्दं परमानन्दाभृतमन्तस्थं स समभ्येति ९

इति श्रीमत्परमहंसपरिग्राजकाचार्य श्रीमच्छङ्कराचार्य-
 विरचितं गोविन्दाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीगोविन्दाष्टकलघुव्याख्या प्रा० ॥

सत्यं ज्ञानमनंतं यत्परं ब्रह्म श्रुतीरितम् ।
 तमेव मायया जातं नन्दगोपकुमारकम् ॥ १ ॥
 गोविन्दमष्टभिः पद्यैः स्तौति श्रीशंकरो गुरुः ।
 सर्वलोकहितार्थाय ज्ञानशं तत्पदानुगम् ॥ २ ॥

सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् नित्यम् अनाकाशम्
परमाकाशम् गोष्ठप्रांगणरिंगणलोलम् । अना-
यासम् परमायासम् ॥ मायाकल्पितनानाकारम्
अनाकारम् ॥ भुवनाकारम् । क्षामानाथम् अ-
नाथम् प्रणमत गोविन्दम् परमानन्दम् ॥ १ ॥

दोहा—मनहो वचसो यत्र गति, स्वतो न परतस्त्वाप्त ।

सो धीनंदकुमार मम वरतो मनसिवचनात् ॥ १ ॥

इस संसारमंडलमें सकल लोकोंके हितार्थ ही हैं अवतार जिसका, ऐसा भगवान् महाविष्णु पृथ्वीकी सविनय प्रार्थना सुनकर उसके भार उतारनेकी इच्छा करके यादवकुलमें अवतार धारण करता हुआ नंदजीके मंदिरमें लीला विहार करता भया, उसी लीला विहारकों श्रीपूज्यपाद भगवान् शंकराचार्य (सत्यं) इत्यादि भाठ श्लोकोंसे वर्णन करते हुये सामान्य विशेषभावरहित सच्चिदानंदघन श्रीकृष्ण परमात्माकी स्तुति करते हैं, गल्यमिति.

१ दोहा—बाधरहित सो सत्य है ज्ञान स्वयंपरकाश ॥

अंत त्रिषा परिच्छेदविन सो अनंत ध्रुतिशास ॥ १ ॥

अतएव (नित्यं) उत्पत्ति नाशसे रहित, तहां ध्रुति “नित्यं विभुं सर्वगतं सुसुहृमं” इत्यादि, और (अनाकाशं) आकाशसे भिन्न, तत्त्वबंधरहित होनेसे और (परमाकाशम्) परमप्रकाशरूप, तहां प्रमाण “येन सूर्यस्तपति तेज-सेद्” । तमेव मांतमनु भाति सर्वे । ज्योतिषामपि तद्व्योति.” इत्यादि । और (गोष्ठप्रांगणरिंगणलोलं) ब्रजकी गोशालाओंके अगनेमें गोवत्सोंके पीछे दोड़नेमें अति चपल है । अथवा “अहं शृणोमि अहं पश्यामि अहं वदामि” इत्यादि अनुभवसे मोनाम श्रोत्रादि इंद्रियगण तिनका स्थानभूत जो चेतनाधित अहंकार

सोई भया प्राण नाम निज अभिव्यक्तिस्थान तामें रिगणलोल कहिये कार्य कारण सघातका प्रेरक होनेसें चपल है, तहा प्रमाण “य आत्मनितिष्ठतात्मानमतरोयमयति । ईश्वर सर्वभूताना, हृदेशेऽर्जुनतिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि” इत्यादि तब सर्वका प्रेरक होनेसें तामें कुछ धमभी होता होगा, ऐसी शकाके होने पर कहते हैं (अनायासम्) परिश्रमसें रहित हैं जैसे चुपककी सभिधिमानसें लोह चलने लग जाता है तामे चुपककों कुछ भी धम नहि होता तद्वत् । और बुद्धि आदिके धर्माभ्याससें (परमायास) कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखी होनेसें अत्यंत धमयुक्तभी प्रतीत हो रहा है, तहा प्रमाण “भ्रोत्र चक्षुः स्पर्शन च रसन घ्राणमेव च । अधिष्ठाय मनश्चाय विषयालुपसेवते” इत्यादि, बाका एक वस्तुमें विरुद्ध दो धर्म कैसे रह सके तहा कहते हैं (मायाकल्पित-नानाकार) अघटितघटनापदीयसी ऐसी या माया ताके योगसें मानेगयेहैं अनेक प्रकारके आकार नाम भोगायतनरूप शरीर जिसके, जब शरीरादि आकारहो मायिक हैं तब तिनका किया हुआ आयास सत्य कैसे होगा और (अनाकार) शरीरके भोगादि मुखदुःखोंसें रहित होनेसें आनन्दरहित है, अर्थात् निष्कल निष्क्रिय शांत नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सत्यरूप है, जब निराकार है तब ब्रह्मादि स्थावरात् जो कुछ जगत् देवान् मुननेमें आता है सो सब ईश्वररूपही है, ऐसे कहनेवाले वेदातवाक्यनकी साधकता कैसे होगी, तहा कहते हैं (भुवनाकार) ब्रह्मलोकसें लेकर पातालपर्यंत समस्त आकार उसीकाही है, तहा प्रमाण—“सर्वत्रास्ते सर्वशरीरी न च सर्वे” इत्यादि, और (क्षमाभावायम्) क्षमापृथ्वी मा-लक्ष्मी तिनका स्वामी है, और स्वयं (अनायम्) स्वतन्त्र है, और परम कहिये नित्य और निरतिशय ऐसा जो आनन्द सो परमानन्द ऐसे (गोविन्द) अर्थ यह कि गो नाम तत्त्वमस्यादि महावाक्य तिनकरके जाकी उपलब्धि क्या साक्षात्कार होवे सो गोविन्द नाम पर ब्रह्म ताकु हे भक्तलोक, तुम (प्रणमत) ब्रह्मा भक्ति पूर्वक मन वाणी शरीरसें नमस्कार-पूजन करो इति ॥ १ ॥

मृत्क्षाम् अस्ति इह इति यशोदाताडनशै-
शवसंत्रासम् । व्यादितवक्रालोकितलोकालोक-
चतुर्दशलोकालिम् । लोकत्रयपुरमूलस्तंभम् लो-
कालोकम् अनालोकम् । लोकेशम् परमेशम्
प्रणमत० ॥ २ ॥

त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नम् क्षितिभारघ्नम् भवरो-

२ (इह) दुग्ध दधि नयनीतादि समस्त भोज्ययुक्त परमै (मृत्क्षाम्)
मिठीको (अस्ति) खाते हो क्या ऐसे यशोदा मैयानें कीहुई ताडनासे
बालकोंके समान भययुक्त होकर अपना मुँह खोलकर तानें अतलादि
नीचेके सात लोक और भूआदि सात लोक ऊपरके ऐसे चतुर्दश लोकोंकी
अनेक गणना दिखाई दे जिताने, और जो पृथ्वी आकाश पाताल इन तीनों
लोकोंकी पुरके मूलस्तंभनाम आधारस्थान है, और (लोकाऽऽलोकम्)
आम्रद्वह्मवर्षत समस्त जगत् प्रकाशित मया है जित करके, और मयं
(अनालोकम्) “न तत्र सूर्योभाति न चंद्रनारकं । न तद्वातायते सूर्यः” इत्यादि
प्रमाणसे किसी भी दृष्टिसे प्रकाशित नहीं है, और (लोकेशम्) “भीषा-
म्माद्रातः पवते” इत्यादि प्रमाणसे समस्त लोकोंका प्रेरक, तथा (परमेशम्)
ब्रह्मादिकनकाभी नियंता, ऐसे सर्वज्ञ—गोविंदसे प्र० ॥ २ ॥

३ (त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नम्) स्वर्गनिवासी देवताओंके दानुओंमें जो भीर
रावणादिक उनके नाश करनेवाले, और भूभार उतारनेवाले, तथा गुरु-
गुरु भयरोगके नाशक, और (नवत्वम्) मोक्षक, और नयनीत नाम
नयन० २ प्राप्त हुये हैं संग्रहित समस्त आधार जितको, अथवा मदनन का

गन्धम् । कैवल्यम् नवनीताहारम् अनाहारम्
भुवनाहारम् ॥ वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासम्
अनाभासम् । शैवम् केवलशान्तम् प्रणमत० ॥३॥

गोपालम् प्रभुलीलाविग्रहगोपालम् कुलगो-
पालम् । गोपीखेलनगोवर्धनधृतिलीलालितगो-
पालम् ॥ गोभिः निगदितगोविंदस्फुटनामानम् ।
बहुनामानम् । गोधीगोचरदूरम् । प्रणमत० ॥४॥

आहार करनेवाले, वास्तवसें (अनाहारम्) अभोक्षा है, और (भुवनाहारम्)
स्रसाक्षारकारसें संपूर्ण जगत्को चिन्मात्रावशेष करनेवाले, और रागादि-
मत्प्रहित शुद्ध चित्तवृत्तिमें प्रगट होता है स्वरूप जिसका, और हरम् रूपसें
जिसका भान होता नहीं, और शैव नाम शिवरूप अर्थात् कल्याणरूप,
तामें हेतु- (केवलशान्तम्) “साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च । सशांतससार-
समस्तभूमिः” इत्यादि प्रमाणसें केवल चिन्मात्रहि अवशेष रहनेसें समस्त कार्य-
कारणरूप प्रपंचके अससर्गा ऐसे गोविंदकुं प्र० ॥ ३ ॥

४ (गोपाल) गोओंके पालनेवाले और प्रभुनाम सर्व सामर्थ्यवान् होनेमें
लीलार्थ धारण किया जो शरीर उससें वेद तथा वेदोक्त यज्ञादिक कर्मके पालने-
वाले, और (कुलगोपालम्) कुनाम भूमि तामें तीन द्योवे सो बुल नाम शरीर
औ गोनाम इंद्रिया तिनका रक्षक, और गोपियोंसें साथ खेल करनेको गोवर्धन-
धारकर गोपालोंपर प्यार करनेवाले, औ गोभि कहिये वेदवचनोंकरके स्पष्ट
पुकारा गया है नाम जिसका, औ बहुत है नाम जिसके, तब नामरूपके

गोपीमंडलगोष्ठीभेदम् भेदाऽवस्थम् अभेदा-
 भम् । शश्वद्रोखुरनिर्धूतोद्धृतधूलीधूसरसौभा-
 ग्यम् ॥ श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दम् अचिन्त्यम् चि-
 न्तितसद्भावम् । चिंतामणिम् अणिमानम् प्रण-
 मत० ॥ ५ ॥

संबंधसे असंगतकी हानी होगी, तहां कहते हैं. (गोपीगोचरद्वयम्) “यतो
 याचो नियतते अप्राप्य मनसा सह” इत्यादि धृतिप्रमाणसे जो मगवाणीके
 गोचरसे दूर कहिये अगम्य है ता गोविंदकुं प्र० ॥ ४ ॥

५ (गोपी मंडल गोष्ठी भेदम्) गोपियोंके समूहके साथ है मीडाविशेष
 जिसकी, अतएव (भेदावस्थम्) गोप गोपी गौ वत्तादि बहुत भेदोंमें जो
 स्थित है, और वास्तवमें (अभेदाभम्) अभेदान्वयसे सर्वत्र एकरस प्रकाशमान
 तथा शश्वत् नाम निरंतर गौओंके गुरोंसे ऊठीके उड़ी हुई धूली करिके
 (धूसर) किंचित् पांडुरवर्ण सोइ भया सौभाग्य कहिये रूपका लावण्य
 जिसका, सीर भद्धा भक्तिद्वारा ग्रहण होता है आनंद नाम निर्माण गुण जिसका,
 अन्यथा (अचिन्त्यं) मनसे भी ग्रहण नया नहि आवे एसा, और “यतोवा
 दमानि भूतानि जायते । कोहोवान्यात्कः प्राप्स्यात्यदेय आकाश आनंदोनस्यात् ।
 एषोवानन्दयाति” इत्यादि ध्रुवोंसे चित्तिनाम निधितभईदे सद्भावनाम
 सत्ता जिसकी, और चिंतामणिके समान मणिके मनोवांछित कार्योंके सिद्ध करन-
 वाले, तत्रप्रमाण “आयुरारोग्यमर्थाय मोर्गार्थवानुपगच्छन् । ददाति प्यायतां
 नित्यं सर्वकामप्रदो हरिः” इति तथा “अणोरणीयान्” इत्यादि ध्रुवोंसे अणुसे भी
 सूक्ष्म अर्थात् दुर्लभ्य है स्वरूप जिसका ता गोविंदकुं प्र० ॥ ५ ॥

ज्ञानव्याकुलयोपिद्वयम् उपादाय अगम् उपा-
रूढम् । व्यादित्संतीः अथ दिग्वस्त्राः उपादातुम्
उपकर्षतम् ॥ निर्धूतद्वयशोकविमोहम् बुद्धम्
बुद्धेः अन्तस्थम् । सत्तामात्रशरीरम् प्रण० ॥ ६ ॥
कान्तम् कारणकारणम् आदिम् अनादिम्

६ ज्ञान करनेके लिये व्याकुल भई जो गोपतिया उनके बच्चोंको लेकर अग
जो कदंबका दृष्ट तापर बैठे हुये हैं और (दिग्वस्त्राअथव्यादित्संती) वसन-
रहित होनेसे वस्त्र ग्रहण करनेकी इच्छा है जिनकी ऐसी गोपियोंको (उप-
कर्षतम्) समीप पुला रहे हैं । और वास्तवमें (निर्धूतद्वयशोकविमोहम्)
निरंतर तिरस्कृत निये हैं शोक मोह जिसने, तथा (बुद्ध) प्रबुद्ध है, अप्रबु-
द्धोंमेंही विषयपारवश्यकी शक्ति होवे है, प्रभु तो प्रबुद्ध हैं, और इध गोपी-
वसनहरणलीलाका भाव भीमधुसूदनसामीप्य एव श्लोकसे उद्घाटन किया
है सोई मधार्थ होनेसे सुसुधुर्वो प्राण है ।

सो श्लोक यह है — दापोहमिति वा बुद्धिं एषमासीद्वनादने ।

दाकारोऽप्रकृतस्तेन गोपीवस्त्रापहारिणा ॥ १ ॥ इति ।

और “मनसस्तु पराबुद्धि” इत्यादि प्रमाणसे बुद्धिसेभी तत्ताक्षितया
अंतरस्थित है, और “सदेवसौम्य” इत्यादि युक्तिये सत्तामात्र है शरीर
जिसका अर्थात् तीन कालमें एकरस है स्वरूप जिसका, ता गोविंदकु प्र० ॥ ६ ॥

७ काल नाम परम सुंदर अथवा सर्व सुखोंकी सीमारूप, और जगत्के
कारण प्रकृतिकाभी अधिष्ठानभूत, और जो आप सबका कारण है परंतु अपना
कारण कोई नहीं है, तथा कृष्णमेघवरसुंदर है तथा कालिंदीमें रहनेवाले काळी-
नामकी फणोंपर चारोंबाद भलीभांति नृत्य करनेवाले, और (कालं) जगत्सद्वार कर्ता

कालघनाभासम् । कालिन्दीगतकालियशिरसि
मुहुः नृत्यंतम् सुनृत्यंतम् ॥ कालम् कालकलातीतम्
कलिताशेषम् कलिदोषघ्नम् । कालत्रयगति हेतुम्
प्रणमत० ॥ ७ ॥

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराधितबंधे-
हम् । कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दम् सुहृ-
दानन्दम् ॥ वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यान-
न्दपदद्वंद्वम् । वन्द्याशेषगुणाब्धिम् प्रणमत० ॥ ८ ॥

और “अन्यत्र भूताश्च भव्याश्च” इत्यादि धृतियोंसे आप भूत भविष्य वर्तमान लक्षण काल तथा शुद्धि निमेष क्षण आदि कलाओंसे अतीतकया उद्घर्षण कर रह-
नेवाले, अर्थात्कार्यकारण संघातसे रहित हैं, तथापि संसारदशमें (कलिताशेष) समस्त जीवोंको निजवाणीरूप रस्सीसे बांधनेवाले अर्थात् अभक्तोंको भयका हेतु है, औ भक्तोंका बंधन निरस्त करे है, सो दिखाते हैं (कलिदोषघ्न) विहित अकरण निषिद्ध करण लक्षण कलि दोषनका स्मरण मात्रसे नाश करने-
वाले, तद्वा प्रमाण—“कलावन्नापि दोषाद्ये विषयासक्तमानसः । कृत्वा ॥ सफलं पार्थ गोविन्दस्मरणाच्छुचिः ॥ अतिपापप्रसक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम् । भूयस्तपस्वी भवति पंचिपावनपावनः” इति । तथा सूर्यरूपसे (कालत्रयगति-
हेतुम्) प्रातः मध्याह्न रात्र्यं इन तीन संध्याओंके कारणभूत गोविंदरूप प्र० ॥ ७ ॥

८ वृंदावन भूमिमें रास क्रीडाके समयमें देवगणोंके वृंद नाम समूह करके आराधित कहिये पूजित औ बंध नाम श्लाघनीय है ईहा नाम क्रीडा जिसकी, औ वृन्दके पुण सदृश विकासमान जो स्मेर नाम गुप्तकान तद्रूप अर्द्धत करिके उदय भया है आनंद जिसका, और सुहृदानंद कहिये शुद्ध हृदयवाले मुक्त जनोंके निर्वाण गुरुरूप, और जगद्वंदनीय जे नारदादि ऋषिगण उनके

गोविंदाष्टकम् एतत् अधीते गोविन्दार्पित-
चेताः यः । गोविन्द अच्युत माधव विष्णो
गोकुलनायक कृष्ण इति ॥ गोविन्दांगिसरोज-
ध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघः । गोविंदम् परमा-
नन्दाऽमृतम् अन्तस्थम् सः समभ्येति ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्वामिश्रीहरिगिरिच-
रणकमलमिलिंदायमानज्ञानानंदयतिविरचिताश्रीगोविंदा-
ष्टकलघुव्याख्या समाप्ता ॥ श्रीगोविंदार्पणमस्तु ॥

मन करके आनंदपूर्वक वंद्य कहिये ध्येय है पदयुगल जिसका, तथा बन्दनीय
जै शाल्यादि समस्त सङ्गण तिनका अधिनाम सागर अर्थात् आधानस्थान,
ऐसे गोविंदकुं प्र० ॥ ८ ॥

१ गोविंदमें लगाया है चित्त जिसने तथा गोविंदके चरणकमलके ध्यान-
रूप मुधा जलसे धोये हैं समस्त अधिनाम पाप जिसने एसा हुवा, ओं है
गोविंद हेअच्युत हेमाधव हेविष्णो हेगोकुलनायक हेकृष्ण ऐसे भगवत्पामोंको
उच्चारता हुवा जो भक्तजन इस गोविंदाष्टकका पाठ करता है. तो परमा-
नंदामृतरूप तथा सर्वके अंतरस्थित गोविंदकुं पावता है अर्थात् प्रत्यगभिन्नपर-
मपदके अपरोक्ष ज्ञानकुं पावता है, इति ॥ ९ ॥

अत्र यत्संमनं भाति पूजाचार्यवृत्तिर्हि सा ।

अयं मत्तं तु यद्भाति सा मे मन्दमतेः वृत्तिः ॥ १ ॥

॥ पद ५३ लावणी रागमे. ॥

सर्वेश केशव कृष्ण श्री गोपाल सुमरनसार है ।
 भज प्रेम नामाकार सारा, कृष्णमणि चमकार है ॥
 सर्वेश० टेक ॥ विन प्रेम रीजे, नां रमेश्वर सत्य
 श्रौतविचार है । भज भावसें संसार सागर, तरत
 सब नरनार है ॥ स० ॥ १ ॥ गुन को कहे श्रीकृ-
 ष्णजीके, ब्रह्ममनवच पारहैं । हे यही अवतारी
 अवर सब, इनहिके अवतार हैं ॥ स० ॥ २ ॥
 इनके भजनसें हीं पतित भी, ब्रह्मपदवी पा रहे ।
 माया जगत् तज सहजही, फूले फले दर्शा रहें ॥
 स० ॥ ३ ॥ हे यही योर्ध सदा शमनसें, सकल
 पाप विदारहै । कर तांहि अपना रूप ताकी,
 सकलकुलकों तारहै ॥ स० ॥ ४ ॥ हैं अतिनि-
 रतिशय सकल गुणनिधि, ईश मायाधार है । नहि
 अल्पभी अभिमान भेद न, राखते जिन प्यारहै

१ अन्यायाशकला विष्णो. कृष्णस्तु भगवान्सत्यम्. २ शमनजो यम ताहें.
 गुद परनेमें समर्थ यही है.

॥ स० ॥ ५ ॥ नहि लखत हैं अपराध अभिमुख
 होतकों गल लार है ॥ इनके हि अभिमुख होतही,
 अपराध सर्व निवार है ॥ स० ॥ ६ ॥ जे चहत भो-
 ग्यविशाल माधर पूर सारेमार है । जे चहत ज्ञाना-
 नंद अमृत दे रमा भर्तार है ॥ स० ॥ ७ ॥

पद ५४

भज प्रेमपूरण धारधी श्रीकृष्णपद अरविंदमें ।
 तज मोहमायाजाल प्यारे, फसत क्यों इस फंदमें ॥
 भज० ॥ टेक ॥ है पतितपावन नाम जिनको,
 तत्र चित्त लगा रहै । हे दीनबंधुदयाल माधव,
 दीनदुःख विदार है ॥ भज० ॥ १ ॥ यह वही
 है जिसके जननके नामसें अतिदंभ भी । इस
 लोकमें पूजा तहां भी होत सुख आरंभ भी ॥
 भज० ॥ २ ॥ कलु दिवसमें तिसमिस सवलसें
 काट कारण दम्भके । होते वही साचे सुयोग्यहुं

सकल जग आलम्भके ॥ भज० ॥ ३ ॥ जग धन्य
 इनके दम्भभी हैं, सकलजग पावनकरें । सबकों
 सुना हरिनामकों, जनवेशसैं तपतैं हरे ॥ भज०
 ॥४॥ असनाम है इनका किसीविध, कहे कोई
 मरणमें । ताको प्रणामें यमकरें, संशय नहीं कलु
 तरणमें ॥ भज० ॥ ५ ॥ प्रण इनहिने राखाहि
 निजजैनका तजा अपना अहो । निज भक्तसों
 कलु भी न राखें, कवन इनसम अवर हो ॥ भज०
 ॥६॥ श्रीधर्म नृपके यज्ञमें, निज भक्त सेवा इत
 हिने । कीनी सुताश्री द्रुपदजीके, चीर इनविन-
 किनतने ॥ भज० ॥ ७ ॥ प्रतिमा सकल सब
 तीर्थसैं, सबसैं अधिक निजभक्तकों । इनविन
 कहे को अवर इनसम, अवर सबमें शक्तको ॥
 भज० ॥ ८ ॥ है यही अपने भक्त पै दिन दिन

निछावर होत है । स्मृत देत अमृत ज्ञानकोहीं,
त्रिविध दुख जग खोत है ॥ भज० ॥ ९ ॥

पद ५५

गुणधाम सुन्दरश्याम आत्मकाम सुमरो
श्रीहरि । निजलोक शोक निवारणं, भवसिंधु
तारणमें तरि ॥ गुण० ॥ टेक० ॥ को अवर
समझे प्रीतकों इक, इनहिकों विज्ञान है । इक-
पालते हैं यही, याकों, अवर को अभिमान है
गुण० ॥ १ ॥ है प्रीतिरूप दुरूहयांको-कवन
समझे ईशविन । है नर कवन को आप हैं नहिं
लाजते हैं देत तन ॥ गु० ॥ २ ॥ है चतुर अति
पुण्यी वही जे शरण इनहि बनावते । कर त्रि-
विध दुखकों दूर सहजे, निजानन्दहिं पावते
॥ गुण० ॥ ३ ॥ जल अञ्जुलीसैं इन विनाको, तृप्त
होता है सही । इन विन प्रणामहुँ मात्रसैं, को
तजत है अपनी कही ॥ गुण० ॥ ४ ॥ है इन

विना को निज जननकों, देत है जो चाहत हैं ।
 इन विन सकल रुचिसें पुराणहुं वेद किसको
 कहत हैं ॥ गुण० ५ ॥ इन विन अवर को ब्रह्म-
 विद्या, देत अपने दासकों । निज ज्ञान अमृत पान
 हर्ता, शोकमोह रु प्यासकों ॥ गुण० ॥ ६ ॥

॥ पद ५६ ॥

गुणवंत श्रीभगवंत सेवत, संत साचे प्रेमसें ।
 जो चाह अक्षरधामकी, नितनाम लीजे नेमसे
 ॥ गुण० ॥ टेक० ॥ इनके विना किसके चरणकों,
 सेवते सुर सकल है । इनके विना किसके सम-
 र्पण कर्म होते अचल है ॥ गुण० १ ॥ इनके विना
 सब सिद्धि किसके, चरण रजकों सेवती । सब
 संपदा भी इन विना है, नाम किसका लेवती
 ॥ गुण० २ ॥ लावण्य मृदुतादिक सकल गुण,
 इन विना किसको भजें । किहिँ लाग इन विन

ऋषि युगल, अजलोकलों सवकों तजें ॥ गुन० ३ ॥
 सुरपति काल अज इन विना, देकरधली किसकों
 सेवते । यमआदि डरते इन विना शुभ नाम
 किसका लेवते ॥ गुन० ॥ ४ ॥ पैदुण रहेहैं इन विना
 किसमें, निरतिशयता कर भरे । इन विन कव-
 नका नाम जप, अघरूपभी भवकों तरे ॥ गुन ५
 जिन कीन करुणा कृष्ण केशव प्रेमपूरणकामको ।
 पी पूर्ण ज्ञानानंदअमृत करत नित्य प्रणामकों
 गुन० ॥ ६ ॥

॥ पद ५७ ॥

हरि सत्यज्ञानानंत सब जग, कल्पना-आधार
 है । गुरुद्वारजाहि विलोकते, सब कल्पनातें पार है ॥
 हरि० ॥ टेक ॥ हे इन विना को ब्रह्मपदका,
 अर्थ जिसमें जग सकल । कल्पित सहीहो भान

१ ब्रह्मर्षि और देवर्षि. २ ऐश्वर्य-धर्म यज्ञ भो वैराग्य औ ज्ञान, ए पदुण
 (भग) संपूर्ण एक इगो परमेश्वरमें ही रहते हैं.

सत्तासैं मृषा माया सफल ॥ हरि० ॥ १ ॥
 इनके भये विन कवन जगमें, कवनकों
 है पूजता । इनके भये विन भला कि-
 सकों, भुंगल अज है सूझता ॥ हरि० ॥ २ ॥
 संबंध इनके विन कवन मन, शुद्धि तीर्थ करे
 सही । इम समझके भी नहिं भजे, भवतापमें
 जरते वही ॥ हरि० ॥ ३ ॥ जिनपर न करुणा
 कृष्णकी, वे वृथा जन्म गँवात है । करही न क-
 वहुं संत संगत, मद भरे दरशात हैं ॥ हरि० ॥ ४ ॥
 नर जन्म सारा व्यर्थ हारा, विषय विषकों रोत
 हैं । सत्कर्ममें नहि प्रीत संतत, ताप बीजहिं
 बोत हैं ॥ हरि० ॥ ५ ॥ जिनपर करे हैं अघट
 अतिशय प्रेम करुणा सुखभरी । हैं तेहि केवल
 पूज्य जगमें, फल परानन्दन झरी ॥ हरि० ॥ ६ ॥

१ न जन्मे सो अज ऐसा एक परमात्मा ही है, और (४) जो वामुदेय
 तासे उत्पन्न भया जो ब्रह्मा सो भी अज कहिये है.

आभास प्रेम सुबोधमेंभी, होत जिम व्यवहार
 है । जिम शमदमादिक नां तजें, हरिप्रेम त्यो
 न विसार है ॥ हरि० ॥७॥ साधन शमादिक
 ज्ञानके, विन प्रेम पूरे हो नहीं । जो ज्ञान साधन
 रहा पहले, नहीं चला जाता कहीं ॥ हरि० ॥
 ॥ ८ ॥ साधन सकल जे ज्ञानअमृत, लक्ष
 कोहिं स्वरूप हैं । इम कहें गीतानिगममें भी,
 जे सकलसुर भूप हैं ॥ हरि० ॥ ९ ॥

॥ पद ५८ ॥

हरिब्रह्ममें नहि भेद कलु इम, निगम बुध सब
 गावते, विन प्रेम कांके निकट भी है, कवन
 साधन आवते ॥ हरि० ॥ टेक ॥ आकृष्टके शुभ
 दर्शसेंहीं, पाप सब मिटजात हैं । संभाषणादिकसें
 सहजहीं, मोहजाल विलात है ॥ हरि० ॥ १ ॥
 जपनाम इनका सहजहीं, अभिमत फलनकों-
 पावते । कर ध्यानकों कलु काल प्रेमी, आपभी

वनजावते ॥ हरि० ॥ २॥ सेवा उचित है इनहिंकी,
 वड भाग्यसेंहीं मिलत है । सब काम देत सका-
 मकों, निष्कामका तम दलतहै ॥ हरि० ॥ ३ ॥
 है संतपदवी इनहिंकी सब, जगत् पावन करतहैं ।
 इनकोहि मिससें दम्भिभी सब, उदर अपना
 भरत हैं ॥ हरि० ॥ ४ ॥ हमको सदा इनकी
 चरणरज, पालती है प्रेमसें । निशदिन पित्रावत
 ज्ञानअमृत, प्रेम शमसुख नेमसें ॥ हरि० ॥ ५ ॥

॥ पद ५९ ॥

अनुरागपर है प्रेमपद पर अर्थ सूक्ष्ममनो यथा ।
 जबलग रहेहैं चित्त तौलों, रहत प्रेमाऽऽत्म यथा ॥
 अनु०॥ टेक ॥ मन सत्यतासें प्रेम भी हो, सत्यसाहीं
 रहत है । आभासमें आभासहो, मनभंगकों
 नहिं सहत है ॥ अनु० ॥ १ ॥ नहिं विषयमें हो
 प्रेम, प्रेमाभासहीं होता सही । याको न जड

आश्रयविषय, दृष्टांत लग कवियन कही ॥ अनु०
 ॥ २ ॥ नहिं प्रेमहो उद्धूत मनविन, कहां जडके
 चित्तवड । आश्रय विषय चेतन सदा है, तनि-
 कभी नहिं शक्तजड ॥ अनु० ॥ ३ ॥ वह होत
 है इक ईशमेंहीं, अवरमें मति ईशसें । आंभा-
 सहीं हे साच वह जो, शुद्ध होत अनीशमें ॥
 अनु० ॥ ४ ॥ परिणाम आदिक दोषसें, नहिं
 वृत्ति रहती है अचल । श्रीकृष्णमें नहिं दोष
 एको, वृत्ति किम जावे वदल ॥ अनु० ॥ ५ ॥
 मति ईशसेंभी जीव में हो, प्रेमशंका पतनकी ।
 रहती नहीं जिम इतरमें, करके बहुतसे यतन
 भी ॥ अनु० ॥ ६ ॥ हे प्रेमका अति अवचरूप,
 न ब्रह्मआदिक कहसकें । जाने वही जाके लगे,
 इक ज्ञान अमृत हीं छेके ॥ अनु० ॥ ७ ॥

१ जड पदार्थ प्रेमका आश्रय वा विषय होनेमें किंचित् मात्रभी समर्थ नहिं
 हो सक्ता. २ शवाच्य. ३ पान करता है.

॥ पद ६० ॥

है आकृष्ट हिं वेद कहें जो, तरते और तराते
 हैं । ते फल हैं अति दुर्लभ दुर्घट, जिनकों प्रेम
 बनाते हैं ॥ टेक० ॥ सहज कटें भवबंधन सारे
 ब्रह्मलोकलों चित्त नहीं । क्या जाने जग
 कहां रहे है, प्रिय विन चित्त न आते हैं ॥ है० १ ॥
 चहें सदा अस सहज जहां, निज प्रिय विन दूजा
 रहे नहीं । अवर किसीकों चहें भलाक्या, ढिगके
 भी न सुहाते हैं ॥ है० २ ॥ खान पान जब जैसा
 होवे मिले भला नहि मिले भला । देह रहो जावो
 सब उत्तम, प्रियहींसें सब नाते हैं ॥ है० ३ ॥
 रहे दुशाला तौभी वैसे, हो कौपीन न तैसे हैं ।
 देह गेहके बने न कब हूं, प्रियहींके बन जाते हैं ॥
 है० ॥ ४ ॥ प्रियका देह शरीर आपना, सुख अपना
 सुख प्यारेका । प्यारेका हीं देश आपना, ऐसी

दृढता पाते हैं ॥ है० ॥ ५ ॥ प्यारेकाहिं स्वभाव आपना
 रहनी सगरी उत्सर्हीकी । गिरिधर हीं हैं उभय
 लोकके, संवंधी जो गाते हैं ॥ है० ॥ ६ ॥ अच्छा
 लगे न ब्रह्मलोकभी, अवर पदार्थ कथा कैसी ।
 आज्ञा पालन नाम ध्यान बिन, अवर न कलुभी
 भाते हैं ॥ है० ॥ ७ ॥ चहें न कहूं कलु अल्पहुं भी,
 गिरिधर कृपा सुबुद्धि भई । सकलविषय दुखरूप
 मृपा कव, इनका चित्त लुभाते हैं ॥ है० ॥ ८ ॥ यद्यपि
 पर अभिमत श्रीगिरिधरजीका दरशन परसुख
 है । मांगन आज्ञा एक नाम है, आज्ञासें घव-
 राते हैं ॥ है० ॥ ९ ॥ जो इनके अभिमत तांकी
 कव, गिरिधरजीसें देरीहो । चीरप्रसंग द्रोपदीजी-
 का, व्यासकृपालु सुनाते हैं ॥ है० ॥ १० ॥ शमद-
 मादि सब देवी संपत्, सुखसें वास बनाती हे ।

१ "एकातिनो यस्य न कश्चनार्थं वाच्यंति ये वै भवन्त्यपन्नाः । न पारमेष्ठ्यं न
 सुरेन्द्रभिष्यं न योगसिद्धीत्युनर्भवं वा" इति श्रीभागवतोक्तिः ।

मोह लिये निज आसुर संपत्, कतहुं नहिं
 दर्शाते हैं ॥ है० ॥ ११ ॥ आतमविद्या बिना बु-
 लाए, आती है अति मोद भरी । पडी रहे हे
 एक दिशामें, प्रेम सिंधु सरसाते है ॥ हैं० ॥ १२ ॥
 योगक्षेम गिरिधरहिं करे, सब रहें सदा आगे
 पाछे । इनके क्या कलु खबर देहकी, सदा प्रेम
 मदभाते हैं ॥ है० ॥ १३ ॥ आनंद लेवे उभय
 ब्रह्मका, नरतनु सफल इनहींका है । अवर बने
 मानुषकी मूरति, आगम पशुहिं बताते हैं ॥
 है० ॥ १४ ॥ ज्ञानामृत जीवन्मुक्ति मुद, प्रेम
 एकहीं देतें हैं । अंतकालमें गिरिधरजीमें, स-
 हजे यही मिलाते हैं ॥ है० ॥ १५ ॥

॥ पद ६१ ॥

इक प्रीति हीं कर्त्तव्य है, पर कहां करनी
 चाहिये । करिये विचार विना भला फिर, क्यों न

१ रागुन तथा निर्गुन प्रकृति । २ "आदी विचारः कर्त्तव्यः पद्यात्म्यं
 समारभेत् । प्रियं नातोत्सृजति" इत्यादि पाल्लोक विचार विधे विना,

तनुको दाहिये ॥ इक० ॥ टेक ॥ है पंडितकार
 सवहीं सहज, जनि सत्त्व पुनि परिणामिता ।
 वर्धन अपक्षय नाश इनकी, सत्यतकहिं प्रधान-
 ता ॥ इक० ॥ १ ॥ अविवेक मत्सर ईर्ष्या छल,
 रागद्वेषहि अज्ञता । मदकाम कोप विमोह तृष्णा,
 लोभ मल अल्पज्ञता ॥ इक० ॥ २ ॥ विक्षेप
 हिंसा शोक ममता, है अहन्ताभी भरी । सुर-
 लोकलौत्रयताप राजें, रातदिन माया झरी ॥
 इक० ॥ ३ ॥ नरलोकमें मलमूत्र पुनि, दुर्गंधभी
 निशदिन झड़े । अजलोकलों परतंत्रता, जन
 कालके खाए पड़े ॥ इक० ॥ ४ ॥ अब देखले
 कलु समुजले, इनसें भला कय सुख मिले ।
 इनके निकट है सुख कहां, यह आप दुखमें
 तलमले ॥ इक० ॥ ५ ॥ इनसें करें जे प्रेम ते

१ "जानतेऽपि वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते निनश्यति" ये पदभाषा
 विचार यास्कमुनिनं कहे हैं. २ "आम्रप्रभुनालोका पुनरावर्तिनोऽनुं" ऐसे भ०
 गीतामें शृणुप्रभुनेंभी अपने मुखसे कहा है.

रागादि आशय पापसैं । भोगें नरककों दुखित
 हो, पावें अधम गति पापसैं ॥ इक० ॥ ६ ॥ इस
 पांथसैं कव प्रीति निबहे, पुनि सदा परिणा-
 मिता । यह सकल मतलब कोंहि चाहें, है
 दुखनकी ग्रामता ॥ इक० ॥ ७ ॥ इनसैं करें जे
 प्रीति ते सब, तापकोंही खात हैं । हरिसैं
 विमुख हो लोकपरमें, दुखहिमें मुछतहैं ॥ इक०
 ॥ ८ ॥ सब दोषसैं इक कृष्णही हैं, शून्य सब
 सद्गुण भरे । गुण वदत वेद पुराण मुनि अज,
 शेष अवलों नहिं तरे ॥ इक० ॥ ९ ॥ तिनकोंहिं
 प्रेमी निगम मुनि अज, कहत हैं हमभी कहें ।
 यांकी चरणरज चूमते, ते ज्ञान अमृत पी
 रहें ॥ इक० ॥ १० ॥

॥ दोहा ॥

प्रेम परम सुखरूपका भाषा सुखद स्वभाव ।
 होइ प्रेम अभ्याससैं ब्रह्मस्वरूप प्रभाव ॥ १ ॥

॥ सोरठा ॥

अहह ब्रह्मनिजरूप श्रवणादिक विन हीलसे ।
 धन्य कृष्ण सुरभूप धन्य प्रेम अभिमुख करे ॥२॥
 ॥ प्रेमफल ब्रह्मविद्यामृतदर्शक पद ६२ (राग लावणीमें) ॥
 अव देख निपुण विचारसें मन, कृष्णजी क्या है
 भंला । जांकों भजे हैं देव बुध अज, वेद
 जिसमेंहीं मिला ॥ अव० ॥ टेक ॥ ईक सत्यज्ञा-
 नानंदमाया से शरीरी होलसे । नहि मृपा जग
 खविवर्त्तमें, कतहूं कदाचित्भी फसे ॥ अव०
 ॥ १ ॥ यद्यपि सकल तनु है विवर्त्तहिं, भेद
 मायाबीजका । जिम भेद है घटमठगगनका,
 तदपि भेद न चीजका ॥ अव० ॥ २ ॥ सो है
 हमारेमें सही सवमें, विराजत है वही । अव
 ठीक अनुभवनें गही, इमहीं निगम गीता कही

१ अजोपिगमव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन् ।

प्रकृतिस्यामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ १ ॥

अ० गी० अ० ४ श्लो० ६.

॥ अव० ॥ ३ ॥ है वस्तु चेतन जड युगल, तिन-
 मांहिं श्रौत विवेकसैं । सत् सुख प्रभा इक चिद
 हिं है, ग्रह अन्यथा अविवेकसैं ॥ अव० ॥ ४ ॥
 निरवयवता है नाश नहि, इम निगम गीता
 कहत है । हो वृत्तिकारण सात्त्विकी, चिद् विन
 कहां सुख रहत है ॥ अव० ॥ ५ ॥ तिस वृत्तिमें
 आभासहीं, सुख विषय अवर समाधिका । नहि
 सुख रहे जब गमनहो, तिस वृत्तिरूप उपाधिका
 ॥ अव० ॥ ६ ॥ जिसके भला आभाससैं, सब
 सत्यलों सुखिये भये । सुख विंव है तिस ज्ञान,
 अमृत-पानसैं सब दुख गये ॥ अव० ॥ ७ ॥

॥ पद ६३ ॥

भूमाहिं सुख है वेदमें सुरैऋषिहिं सनकादिक

१ अपनोंको असत् जड दुःख मय देहादिरूपसमाजना सो अन्यथा ग्रह
 कहा जाता है. २ यस्यानंदसमुद्रस्य देशमात्रं जगद्रतम् । प्रयुतं ब्रह्मलोकादी
 सुरास्त्रिभुः परिलजेत् । इत्यादि प्रमाणसे विद्य ब्रह्मानंदका देशमात्रही शब्दको
 कहा गया है. ३ नारद मुनिको सनत्कुमारने कहा है.

कही । अब परखले मन समुझले, श्रुति बात है
 साची सही ॥ भूमा० ॥ टेक ॥ जड किम प्रकाशे
 अवरकों, चेतनहिं सकल प्रकाशता । इस देख
 लीजे वेदमें भी, इसीकी आकाशता ॥ भूमा० ॥१॥
 उत्पत्ति नाश उपाधिके हीं, होत हैं यांके नहीं ।
 इसमें कहे है अक्षपण्डित भी न सेवे बुध कहीं
 ॥ भूमा० ॥२॥ गौरव विना क्या शेष जे ध्रुव ज्ञान
 नाना कहत है ॥ हो बाह्य श्रुतिसें वृत्तिके हीं,
 धर्म चितमें गहत है ॥ भूमा० ॥३॥ है जड सदा
 विपरीत चितसें, निगमगीता गावते । अनुभव
 यही विद्वानका है, युक्तिसें हुं सचावते ॥ भूमा० ॥४॥
 सावयव सब है जन्य नाशी, गगनमें सावयवता ।
 इक देशमें आकाशके, जिसमें वसे परिछिन्नता
 ॥ भूमा० ॥ ५ ॥ आधारसें यदि भिन्न हो, अध्य-

१ पूर्णता. २ इस विषयमें गौतम कहते हैं परंतु उसके कटेका शरीर लोग
 स्वीकार करते नहीं. ३ और युक्ति की सहाय लेने हैं.

स्ततामें वसेभी ॥ फिर सही नैयायिक प्रबल हो,
 कमरकोंभी कसें भी ॥ भूमा० ॥ ६ ॥ परिछिन्न
 है परतत्र परिणामी विनाशी छल सही । परि-
 छिन्नतासें दुख हि सुख मति मृपा सनकादिक
 कही ॥ भूमा० ॥ ७ ॥ जन्मांध है मिथ्या सकल
 जड शेष क्या कथना रहा । जो मृगतृपाकों
 जल समज, आया निकट जिरादहा ॥ भूमा० ॥ ८ ॥
 प्रिय अस्तिभाति स्वरूपसें, हम हीं सलैकमें भ्रा-
 जते । परिछेदत्रयसें शून्य परसुख एकलेहिं
 विराजते ॥ भूमा० ॥ ९ ॥ सब दृश्यकों हमरी हि मा-
 या, सहज रच संहारती । हमरी स्फुरणतासें हि
 जग मिथ्या मृपा व्यवहारती ॥ भूमा० ॥ १० ॥
 सब दृश्यका आधार हम हीं हैं अधिष्ठान हुं सही ।
 सब वेदमें विज्ञान अमृत हमरि हीं महिमा
 कही ॥ भूमा० ॥ ११ ॥

॥ पद ६४ ॥

सबमें हमेहिं विराजते परकाश दीपक रूपसें ।
हमकों न जानें देहतीनो, अचिद् अंधेकूपसें
॥ सबमें० टेक ॥ सब जग हमारेकों हि पूजे,
सबहि हमसें जी रहा । जो जो न आया और
हमरी, त्रिगुण दुखमें हीं बहा ॥ सबमें० ॥१॥ हरि
अज उमा हर भानु गणपति, सुरप नैरपशु आदि
जग । हमहींलसें गुण भेदमें को आशके है क-
ठिन मग ॥ सबमें० ॥२॥ ममता अहंता मृपामाया
सकल कार्यहिं कर रहे । हम हैं युगल साक्षी अचल
आधार श्रुतिभी इम कहे ॥ सबमें० ॥ ३ ॥ अमृत
अचलसुख सिंधु हे इक लेश हमरेसें सही ।
अज इंद्र आनंदीभए पर आंख लखनेकों चही ॥
सबमें० ॥४॥ अस आंखके दातार श्रीहरि रूप

१ हमारी तरफ, २ सुरप नाम इंद्र, ३ परंतु उम आनंदरूप परब्रह्मके दर्शनार्थ ज्ञानबधु की अपेक्षा उनको भी रही थी।

देशिक राज है । सो ज्ञानरूप अखंड अद्वय
आत्मा सम्राज है ॥ सर्वमें० ॥ ५ ॥

॥ पद ६५ ॥

सर्वज्ञ प्रेरक विभु सुना है, रूप ईश्वरका
सही । अब खोजना विश्वाससें, तज पक्षकों जो
श्रुति कही ॥ सर्व० ॥ टेक ॥ है यही चित् सर्वज्ञ
माया, चित्त वृत्ति उपाधितें । सबकों प्रकाशे
खयं भासे, निर्विकल्प समाधिमें ॥ सर्व० ॥ १ ॥
हममें प्रकाशे अल्पकों मनकी अल्पतासें सही ।
सबकों प्रकाशे ईशमें सबमें हि मायामिल रही
॥ सर्व० ॥ २ ॥ हो ज्ञानसें ही प्रेरणा थी अक्षप्राण
शरीरकी । विनज्ञान दिखती हे न लखते बात
श्रुति गम्भीरकी ॥ सर्व० ॥ ३ ॥ उत्पत्ति नाश न
होत इनके, वृत्तिकेहीं होत हैं । यों ^{जो} कहें सत्संग
त्यागे, जन्म व्यर्थ हि खोत हैं ॥ सर्व० ॥ ४ ॥

यदि हो न चिज्जडमें फुरण सत्ता कहाँसे लेत हैं
 अध्यस्तमें नहिं युगलइम, उपदेश श्रुति नितदेत है
 ॥ सर्व० ॥ ५॥ होभूत अन्वयसें हि जीव सब, ब्रह्मके
 आभास विन । चित्ता कहाँसे होत इनमें,
 भूतमें चित् समज मन ॥ सर्व० ॥ ६॥ चिद् अणुहिं
 आवत लोकपरसें कीट आदिकमें सही । तौ
 कीटसें हो भूमि चेतन हस्तिमें जिम तुम कही
 ॥ सर्व० ॥ ७॥ यां का निषेध त्वचा करे है त्वचा
 में क्या छेद नहि । त्वक् अस्थिसें क्या कठिन है
 चित्का हिं तोकों भेद नहि ॥ सर्व० ॥ ८ ॥
 आभासके माने विना चेतन नियम किम होशके ।
 परिमाण मनका देह सम अव दोषकों कहको शके

१ “अमारूपस्य विधस्य भानं भासविधेर्विना । कदाचिन्नाव कल्प्येत भातवदं
 तेन सूर्यगः ॥ १॥ नहि मानादृते सत्त्वं नर्ते भानं चितोऽचितः ॥ चित्संभेदोऽपि
 नाप्यादृते तेनादमद्वयः” ॥ २ ॥ इत्यादि प्रमाणसें यह वस्तुमें सनः सत्ता
 स्फुरणका संभव नहीं है. २ तेरेको चेतन काहीं भेद विदिन नहि है.

॥ सर्व० ॥१॥ चित् जहां होतन तहा हम, व्य-
तिरेक कों दिखलावते । अब समजले है यही
परमेश्वर निगम नित गावते ॥ सर्व० ॥ १० ॥
आभास, कोंही जीव ईश्वर कहत हैं फिर विम्ब-
जो । किम नहिं परेश्वर ज्ञानअमृत परे जगसैं
जगत्सो ॥ सर्व० ॥ ११ ॥

॥ पद ६६ ॥

क्या जीताहीं समजत होगे, सकल जगत
मुरदार । दृश्य सकल है प्रजा तिहारी, तुम
सबके सरदार ॥ क्या० ॥ टेक ॥ अवर ध्येय है
कवन कहो तो, कवन अवर है ईश । तेरा रूप
सही सुरपति हरि, चतुरानन त्रिपुरार ॥ क्या० ॥ १॥
देख लिया है समझ लिया है, अब क्या चाकी
चात । आ घरमांहिं बहिर मत भटके, तो विन

१ जहां चेतन नहि होगा ऐसा कोई स्थानहीं नहि होगा औ चेतनकोंही
“सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म” इत्यादि श्रुति परमेश्वर कहती है-

सकल असार ॥क्या०॥२॥ अव लौं सुख कतहूँभी
देखा, भ्रमसें होत गुमान । मरुमरीचिका वार
धार मृग पायो ताप अपार ॥ क्या० ॥३॥ साची
वात न खात मूढकों, ध्रुव पाछे पछतात ।
ज्ञानामृत कर वात मान ले, तुम हीं तो अंका-
र ॥ क्या० ॥ ४ ॥

॥ पद ६७ ॥

सुन लो सुनावें कथाएक यह, भला कैसी
वात है । है श्रवणकों भी रम्य पाछे, सुख हि
सुख रहजात है ॥ सुन० ॥ टेक ॥ माया शवल
है ज्ञान ईश्वर, विश्वके हाकम सही । जिसकों
चहे जिम तिमहिं सोहो, मिटत नहि गिरिधर
चही ॥ सुन० ॥ १ ॥ निज प्रथम आलोचन जग-
त्का, महत्तत्त्व कहें जिसे । सो भयो गिरिधर-
संहि जासों, अहं सब गुणमय लसे ॥ सुन० ॥ २ ॥

अब बहुते होवें हम यही, इसको अलौकिक रूप है । अपञ्चीकृत भूतकारण, ज्ञानकर्म स्वरूप है ॥ सुन० ३ ॥ तासोंहि तन्मात्रा भई, आकाश वायु तेज जल । भूभूत सूक्ष्म हैं यही, शब्दादि नाम हुं है सफल ॥ सुन० ॥ ४ ॥ पुनिश्रोत्र त्वक् नेत्र हुं रसन पुनिघाण इक इकके भई । गुण सत्त्वसें इनके हि क्रमसें, ज्ञान इंद्रिय हो छई ॥ सुन० ॥ ५ ॥ इन पांचके गुण सत्त्व मिलनेसें बने अंतःकरण । मति अहंकृति मनचित्तवृत्ती, भेदसें नामाचरण ॥ सुन० ६ ॥ पुनिवचन पाणी पादपायू-पस्थ कर्मेन्द्रिय भई । इनके रजो गुणसें हि क्रमसें देहमांहि समागई ॥ सुन० ॥ ७ ॥ इनके रजो गुण मिलेसें हो, मुख्य प्राणक्रिया लिये । प्राणादि पांचोनाम इकके क्रिया भेदहुंनें किये ॥ सुन० ॥ ८ ॥ पुनिभूत पञ्चीकृत भए इनके हि निज तमरू-

पसैं । तिनसैं भयो भौतिक जगत् सव स्वप्नतुल्य
 स्वरूपसैं ॥ सुन० ॥९॥ अब देखने सुनने लगे,
 हमभी विचित्र प्रपञ्चकों । कहुं सिद्ध सुरपति
 सुरविराजें, कहुं न देखें मञ्चकों ॥ सुन० ॥१०॥
 कहुं वेद पढ तेजहि वनें, कहुं कर्म करते फल
 लिये । कहुं कर उपासन जात अजके लोककों
 निर्मल हिये ॥ सुन० ११ ॥ विधिसैं कहूं देशिक
 चरण गृहि श्रवण आदिक भजत हैं । कहूं कृष्ण
 पदरज प्रेम सुखसैं, ज्ञानकोंभी तजत हैं ॥ सुन० १२ ॥

॥ पद ६८ ॥

यह प्रेमका हि स्वभावहै सो, जानता जाकों
 लगे । दुर्लभ अलौकिक सुख हिं है, यह होत
 नहिं दुखके संगे ॥ यह० ॥ टेक ॥ व्यवहारमें भी
 करत रक्षा, कृष्ण मनमें जाइके । पाण्डव वचाए
 शापसैं इक-शाकपत्रहिं खाइके ॥ यह० ॥१॥ श्री-
 द्रोपदीकी लाज राखी, दुराशासन थकगए ।

नहि चीरका कलु अंत पाया, होय लज्जित
 हटंगण ॥ यह० ॥२॥ कहुं श्रीमहेश्वर गणप दुर्गा,
 भानुमें मन लातहैं । कर त्रिविध दुखकों दूर
 सहजे वने ब्रह्म सुहातहैं ॥ यह० ॥३॥ कहुं संत-
 उपकारहिं करें, सबकों लखें निजरूपही । नहिं
 राग द्वेष न छल कृपासैं, भरे ब्रह्मस्वरूपही ॥
 यह० ॥४॥ लख वेदभूसुरधर्मसैं, निजधर्मकोंपालें
 मुदा । उपदेश मृदु तप तेजसैं, जगकाधर्म
 राखें सदा ॥ यह० ॥५॥ कहुं दण्डपाणी धर्मरत,
 राजा प्रजाकों पालते । राखें प्रजाकों धर्ममें हीं,
 धर्मसैं नहिं चालते ॥ यह० ॥ ६॥ कहुं भेदथापें
 सत्यमतिसें तापकों हीं खातहैं । मदरागद्वेषहुं
 रुहभरे, जगत्प्रासैं न अघातहैं ॥ यह० ॥७॥ हम-
 पर भई गिरिधर-कृपा, जब नींदसैं जाग्रतमये ।

इक ज्ञानअमृत रहगए, सब स्वप्नके झगरे गये
॥ यह० ॥ ८ ॥

सोरठा

स्वप्नमांहींभीभेद मतिजनतीहै तापकों ।
पाप उपजहै छेद एकमांहींही भेदहै ॥ १ ॥
जैसे मलयहभेद परम्परासें आतहै ।
तासोंही भ्रमछेद प्रेमशिष्यकों दीजिये ॥ २ ॥

दोहा

भेदांहींसत्यनभाखियें, भेदछेददुखरूप ।
शिष्य विगडकेहोयगा, ज्योंजीवनविनकूप ॥ ३ ॥
अनवरस्थादिकदोषसें, भेदसिद्धनहिंहोई ।
भेददृष्टिहैतापदा, ताकों दीजे खोइ ॥ ४ ॥
जो न सहारे युक्तिकों दिखनेमें भी आय ।
मिथ्या ताकोंही कहें, श्रुति-सज्जनसमुदाय ॥ ५ ॥

१ जल. २ भेद भिन्नषर्माविये रहे है वा अभिन्नविये । आपकहेतो अनव-
स्थादि इत्यादि.

विनाविचारे सिद्ध जो किये विचार अलीक ।
लक्षण अनिर्वचनीयको भापत मुनिजन ठीक ॥६॥

॥ पद ६९ ॥

क्या तनुकोमलमल धोताहै, क्यानितहींपग-
कों घसता है । दुखहींहै सबदृश्यमोद, भ्रमसेंक्युं-
इसमें घसताहै ॥ क्या० टेक ॥ मायालों सबदृश्य-
प्रकाशे, सुखअसंगसच्चित्साक्षी । कलुसुषुप्तिमें-
नहिजाना, इसमें अज्ञान हुं लसता है ॥ क्या०॥१॥
भावरूपअज्ञानअभाव न, गीतामेंभगवान्कहा ।
हो आवरणअभावहेतुसें, सुनागयानहिंदिसता-
है ॥ क्या० ॥२॥ मायापुनिअज्ञानअविद्या, शक्ति-
नामइकहीके हैं । अर्थभेदसेंश्रुतिबुध कहते, क-
ठिन वेदकारस्ताहै ॥ क्या०॥३॥अघटघटनसेंमाया-
अभिधा, शक्तिकहेंचित्आश्रयसें । नशेअविद्यावि-

१ "ज्ञानेन तुतदज्ञानं येषां नाशितयात्मनः" इस वाक्यसें अज्ञानको भावरूप-
पक्ष दे औ भावरूप हेतुसें आवरणहोताकहिं नहिमुना न देखाहै. २ नाम.

द्यासैं अज्ञानज्ञानसैं नशताहैं ॥ क्या० ॥४॥ जहिलौ-
 मायादुखहीहै सब, समझसोचश्रुतिनिश्चयकों ।
 पातेहैं दुख तजैं न माया सुखइकचित्तहीवसंताहै ॥
 क्या० ॥५॥ मूर्खलगादृश्यसैं निशदिन सदा त्रिधाभ-
 वतापसहे । विषयहेतु आभास अल्पसुख लग दुख-
 हीमें फसताहै ॥ क्या० ॥६॥ करताहै बहुकर्मलोक
 परलोक रोगके भोगनकों । अभिमानी सजसाज
 दुखनके बैठ सभामें हसताहै ॥ क्या० ॥७॥ मा-
 याकाहै रूपत्रिगुणही सकलकार्यमें त्रयगुणहैं ।
 कवन दृश्यजहिं त्रयगुण नाहीं सकलदृश्यहीं
 खिसताहै ॥ क्या० ॥८॥ मायालों सब दृश्यतापसैं
 जौलों बहिरन जाताहै । सुखहीकों नहिं लखताहै
 वह सदापाप में विशताहै ॥ क्या० ॥९॥ मायामाया
 कार्यकों लख तुच्छसकल सब ब्रह्मअचल । उदा-
 सीनही रहे सदा निज सुखहीमें मन भस्ताहै ॥

क्या० १० प्रारब्धके भोगनकोंभी उदककमलसें
 रहें सदा । ग्रहें न त्यागें रहें एक रस, इनकों
 कालन डसताहै ॥ क्या० ॥११॥ ज्ञानामृत चहतेइ-
 समगमें, आके दुखमें लोटगिरे । मिलताहै ध्रुव-
 शीस कटेकों सुखक्या ऐसा सस्ताहै ॥ क्या० १२

श्लोकः

निःस्नेहो याति निर्वाणं स्नेहोऽनर्थस्य कारणम् ।

निःस्नेहेन प्रदीपेन यदेतत्प्रकटीकृतम् ॥ १ ॥

यावतः कुरुते जंतुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् ।

तावंतोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशंकवः ॥ २ ॥

प्रचंडवासनावातैरुद्धृता नौर्मनोमयी ।

वैराग्यकर्णधारेण विना रोद्धुं न शक्यते ॥ ३ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।

आद्यन्तवन्तः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ ४ ॥

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति-

विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ ५ ॥

इति योगसूत्रम् ।

दोहा

कर्ता है यह जीवजड जितनें मनमें नात ।

शोकशङ्कु उतनें ठुके मनमें ताप चरात ॥ ६ ॥

॥ पद ७० ॥

संस्कारपरिणाम तापदुख, सकलदृश्यसें पाते हैं

जौलों रहे मिलाप दृश्यका, ताप न कवहुँ परातेहैं

॥ संस्कार० टेक ॥ रजपरिणाम विषयसुख हेध्रुव,

रजविनकोगुणदुःखनहिं । सत्त्वप्रकाशक सुखमय

तमसें, जडतानिद्राआते हैं ॥ सं० १ ॥ यद्यपि

'सात्त्विक वृत्ति' होत है, विषयानन्द-समयमेंभी ।

तौभी कारण रजगुणभीहै, रजके दुखसें नाते हैं

॥ सं० २॥ होतविषय सुखसें ध्रुव बहु दुख, कारण

समहीं कार्य है । सूक्ष्म क्या यह लखे विषयि

सब, दुखी तपी दर्शाते हैं ॥ सं० ३ ॥ मूढहृदयमें

विषयमोदका, संस्कारद्वय जमता है । ताँके बल
 तिस विषय तुल्य ही, विषय चित्तकोंभाते हैं
 ॥ सं० ॥ ४॥ होत चाह पुनि भोगनकी दुख, उद्यम
 बहुत उठाता है । प्रतिबंधकों लख लगती है,
 आगचित्त जलजाते हैं ॥ सं० ॥ ५॥ यदि समर्थ तो
 हिंसादिककों करे अन्यथा मोहग्रहे । हा हम
 मरे समर्थ भए नहि, मोह यही कहलाते हैं ॥
 सं० ॥ ६॥ विषयमिलनसें रक्षामें दुख, रहन अधीन
 हुं पडता है । विषयवियोग कठिन फणियरसें,
 बहुनिशिदिवस तपाते हैं ॥ सं० ॥ ७॥ राग चाह रुह
 हिंसा मोहन, धर्मगिरनसें पद आशय । रूप अधर्म
 होतहे जिनसें, नरकमांहि मुर्छाते हैं ॥ सं० ॥ ८॥
 भोग नरकदुख जन्मलेत हैं, संस्कार फिर जनता है ।
 पुनि विषयनमें चित्त लगे है, घटी चंत्त सरसाते हैं
 ॥ सं० ॥ ९॥ जमता है फिर मरता है इम, दुखसें

दुखकों भोग रहा । संस्कार—दुखकहें इसीकों
 पातअलभी गातेहैं ॥ सं० ॥१०॥ मननिरोधविन
 ताप न जैहैं, सुख न मिलेहै कवहुंभी । सकल
 अनात्महिं है दुखदायक, जांकोमन ललचाते हैं॥
 सं० ॥११॥ ज्ञानामृत विद्वान् आंखसैं, अल्पताप
 लख भगते हैं । मूर्ख कंधसम बहुल मारसंह,
 तजें न दुखमें राते हैं ॥ सं० ॥ १२ ॥

॥ श्लोकः ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
 निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ १ ॥
 सात्त्विकैः पुण्यनिष्पत्तिः पापोत्पत्तिश्च राजसैः ।
 तामसेनोभयं किंतु वृथायुःक्षपणं भवेत् ॥ २ ॥

॥ पद ७१ ॥

रसकोंचखे जो रसिक, कहते हैं तिसीको बुधसही ।

१ विद्वानोंका चित्त नेत्रवत् अति कोमल है । औ मूर्खका चित्त कंधेके
 समान है. उसकों कितनाही मारोपीटो परंतु दुःख नहि मानता.

सत्तरजतमोकेभेदसें, रसकी त्रिविधताही कही ॥
 रस० टेक ॥ तम रस चखेंहैं नींदसें, जे तमो
 गुणसें भर रहे । नहि पाप पुण्य हुं होत है,
 निजआयुनिष्फलहीं वहे ॥ रस० ॥ १ ॥ रजरस
 मिले है विषयसेंही, विषयपांच प्रसिद्ध हैं । सब
 सिद्धिसें भी मिलत है राजस सकलहीं सिद्ध
 हैं रस० ॥ २ ॥ सत रस ग्रहे सात्त्विक सदा नि-
 जवृत्ति सुखमें हीं रहा । इनरसनमें ही जग
 डुबा है जन्म जन्म हुं मर वहा ॥ रस० ॥ ३ ॥
 सबसंत सबरससें परे हैं, रसनमें नहि आवते ।
 अमृत चहें कव स्वप्नकोजे, ज्ञानवपु नित
 जागते ॥ रस० ॥ ४ ॥

॥ पद ७२ ॥

बैठ इकंतमें समझ सोचले, कवन कुवेला
 आया है । नाच नचावे कवन तोहि नर, कि-

१ जे ज्ञानस्वरूपमेंहों सदजागते हैं वे भोगरूपस्वप्नमथाकों नहि चाते.
 २ कुनखत.

सनें दुखी बनाया है ॥ बैठ० टेक ॥ वीजवास-
ना जल कुसंग मन, भूकंटकतरु चाहजनी ।
छेद भेदकेचित्तअंधसा, टुकडे कर दिखलाया
है ॥ बैठ० ॥ १ ॥ छिन्नभिन्नभीकरे काज वह, इं-
द्रियपरकी शक्ति कहां । येदिनहिं होवे चाह
छेद फिर, मन सर्वज्ञ सुहाया है ॥ बैठ० ॥ २ ॥
चाह विना नहिं होतक्रिया ध्रुव, चाह नाच दुख
है सगरा । दुख तृष्णा तज क्रिया तजीजिहिं, ति-
सहि अचलपद पाया है ॥ बैठ० ॥ ३ ॥ कारण
कार्य सकलकेखामी, तुमही तो अविनाशी हो ।
अब मस्तककों नित फोडत हो, दुखहीं दिखत
सवाया ॥ हे बैठ० ॥ ४ ॥ अब कलु ऐसे घन बैठेहो,
में मेरी अभिमान ठना । कर्मनकोंभी रोते हो क्या,

१ दोहा ॥ चाहचमारी घूँसडी चाह नीचतेनीच ॥

तुं आपदि परमम यदि चाह न होती बीच ॥ १ ॥

“यद्यदि कुस्ते जन्तुस्तत्कामस्य चेष्टितम् ।

, शुक्यमतः क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचिद्” ॥ २ ॥

समाचार प्रकटाय है ॥ वैठ० ॥ ५ ॥ धन अभि-
 मानी क्रूरचित्तनों, कवहुँ दीन वन सेवतहो ।
 कवहुँ रूप बहु धार सभामें, नाना मुख दिखला-
 याहै ॥ वैठ० ॥ ६ ॥ कवहुँ कामिनी संतति लग तुम
 चोरीकोंभी धावतहो । कवहुँ सुरनकों पूजतहो,
 करजोरनहीं मन भाया है ॥ वैठ० ॥ ७ ॥ कवहुँ
 ईशसें मांगतहो धन, स्वर्ग कामिनी सुत आदि ।
 होगी वृद्धि कवहुँ पाखंडी, पूजनमें मन लाया
 है ॥ वै० ॥ ८ ॥ कवहुँ विज्ञहो बैठत बोलो हम पं-
 डित सज्जन ज्ञानी, कवहुँ कर्मकर बैठ सभामें,
 अहंकारदर्शाया है ॥ वैठ० ॥ ९ ॥ शिष्यधर्म नहि
 गुरुवन बैठे, जगकों शिष्य बनाते हो । व्है बैठे
 दैशिक अज्ञनके, लोभहि नें वहकाया है ॥ वैठ०
 ॥ १० ॥ कवहुँ शोकचिन्तासें मैले, कामक्रोधसें
 भरेदिखो । रोतेहो चिल्लातेहो क्या, कितना
 धूम मचाया है ॥ वैठ० ११ ॥ इत्यादिकवहुनाच

नचतहो, लखिये कवन नचाता है । तृष्णार्हीहै
 देखसमझ, इसनें हीं जीव बनाया है ॥ बैठ०
 ॥१२॥ तज यांकों अवतो सुखलीजें, व्यर्थ व्यर्थसें
 लाग रहे । लख को हो तुम दीन बनो हो, सिंह
 हुं अजा कहाया है ॥ बैठ० ॥१३॥ ज्ञानामृतपरि
 तृप्त न तृष्णा, तेहीं पूज्य जगके सारे । तिनकर-
 यश जगपाप निवारन, निगमनिकरमें गाया है ॥
 बैठ० ॥ १४ ॥

॥ श्लोकः ॥

प्रारब्धं पुण्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलाः ।
 निर्मला निःस्पृहा नित्यमानंदात्मनि संस्थिताः॥१॥

॥ पद ७३ ॥

निज देहके निर्वाहकीभी, संतर्चिता नां करें । प्रा-
 रब्धकोंहि समर्पते हैं, वही ध्रुव याकों भरे ॥ निज०

१ "काम एष क्रोध एष रजोगुणममुद्रकः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमि-
 द्धंरिणम्" इस भगवद्वाचनसेभी कामही नाचनचानेवाला उद्भूत होता है.

१५ प० भा० दु०

॥ टेक ॥ जे मूढ संतत करत चिन्ता ताप विन-
 फल क्या लहै । प्रारब्धविन नहिं भोग मिलते,
 दिखत है श्रुतिभी कहै ॥ निज० ॥ १ ॥ बहु-
 मनुज करत अनेक श्रमकों, पेटभी नहिं
 भरतहै । मुनिकरत नहिं कलुभी सकलजग, भोग-
 पांयन परतहै ॥ निज० ॥ २ ॥ विनज्ञानके नविवेक-
 अस; होवेजिसे सुखसँ रहे । नहि लाभसँ हर्षे न
 हानीमांहि चिंतासँ दहँ ॥ निज० ॥ ३ ॥ विन दृष्ट
 कारणके स्वयं, प्रारब्ध अल्प न शक्तहै । रचता
 प्रथम यह दृष्टहेतुहिं, दृष्टका फलभक्तहै ॥
 निज० ॥ ४ ॥ इस हेतुसँ आभासइच्छा, विज्ञकोंभी
 होतहै । फल ज्ञानका इकहै यही, जगसत्यताकों
 खोतहै ॥ निज० ॥ ५ ॥ कोईकहे अभ्याससँ प्रारब्ध

१ जगतवैसारे भोग आके चरणोमें पडते हैं.

२ "न ग्रहर्षेतिप्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।

स्थिरमुद्विरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः" ॥ इति गीतोपे: २ भोग है.

फल मिट जातहै । नहिं कानमें, उनके पडी है,
 च्यवनकी जो बातहै ॥ निज०॥६॥ श्रुतिवचनभी
 त्रयकालमें, नहि चित्तमें तिनके रहा । श्रीभाष्य-
 कार कथन सकलभी, कानसें बाहर बहा ॥
 निज० ॥७॥ दुखआयु अदनप्रभृतिअंश, प्रारब्धके
 इक रहतहैं । विनशें अवर अभ्याससें, यहअर्ध ज-
 रती सहतहैं ॥ निज०॥८॥ नाशकर्म सब ज्ञान इस
 श्रुतिवचनसें न विरोधहै । संकोचसेंहै वचन या
 सत्तज्ज्ञमति अनुरोधहै ॥ निज० ॥९॥ रहहीं अ-
 चाह न चाहजिनके, कर्मकोतनु देदिया । अच-
 ज्ञानअमृत सारयासंसारका तिननेंलिया ॥
 निज० ॥ १० ॥

१ “भिद्यते हृदयप्रविदिष्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्मणि तस्मिन्दृष्टे परावरे” इसश्रुतिसें विरोध न होवेगा यदि अर्धजरतीयन्याय अंगीकार करोगे तब तो विरोध अवश्यही होगा. २ ज्ञानीके विषय अनुसार तो प्रारब्धका भीविनाश हो गया है. परंतु व्यवस्था बादमें प्रारब्ध माननाही पड़े है.

॥ पद ७४ ॥

संचितनशे सब ज्ञानसें, क्रियमाण ध्रुव लगता नहीं । प्रारब्ध नशत न भोगविन, नहिं ईशंचित मृपा कहीं ॥ संचित० ॥ टेक ॥ प्रारब्ध आया ईशके, संकल्पमें को तजशके । श्रीकृष्णरक्षित धर्मसुत, किम साज दुखके सज शके ॥ सं० ॥ १ ॥ कोई कहत हैं तज्जके, शुभकर्म सेवक लेत हैं । द्वेषी ग्रहें हैं पापकों जे, निन्दते दुख देत हैं ॥ सं० ॥ २ ॥ निर्वीज है ध्रुव तज्जके, क्रियमाणभी यह सार है । इक है अहंता वीज यासों, तज्ज हीं इक पार है ॥ सं० ॥ ३ ॥ है ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म सेवा, अचल शुभकोंहीं जने । अब द्वेष पाप अचल बढा, युग लोकमें दुखकों तने ॥ सं० ॥

१ “तदधिगम उत्तरपूर्वापयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् । भोगेन त्वितरेक्षयित्वा” । इति व्याससूत्रे. २ ईश्वरका सकल्प कही भी मिथ्या नहीं होता. ३ “अवश्यं भाविभावाना प्रतिकारो भवेद्यदि । तदा दुस्तेन लिप्थेरमलराम युधिष्ठिरा.”. ४ “ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति” यह श्रुति ब्रह्मवेत्ताकों ब्रह्मस्वरूपही कहती है, यात ताकी सेवा हीं ब्रह्मकी सेवा है. ५ दोनू लोकमें. ६ विस्तारे.

॥ ४ ॥ है धन्य जननी संतकी या, ज्ञान अमृत-
हीं जने । जिनकी चरनरजम्हेरसें जग-दास
जगस्वामी बने ॥ सं० ॥ ५ ॥

॥ श्लोकः ॥

न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ।
उदासीनवदासीन इति ग्रंथिभिदोच्यते ॥ १ ॥
ग्रंथितद्भेदमात्रेण वैषम्यं मूढबुद्धयोः ।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा देहेंद्रियमनोधियाम् ॥ २ ॥

१ “कुलं पवित्र जननी वृत्तार्था विश्वभरा पुण्यवती च तेन । अपारसवित्तुल्य
सागरेसिद्धीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेत् ॥ १ ॥

धन्या माता ब्रह्म यस्यास्तुगर्भे धन्यस्तातो ललित ब्रह्म येन ।

धन्य धीमत्सद्बुद्धयोधदाता धन्या सर्वे विज्ञस्यधिनस्ते ॥ २ ॥

धन्यो विज्ञो यस्य दृष्टौ जगत्साद्ब्रह्माद्वैत केवल शांतशांतम् ।

शुद्धाद्वैतज्ञानयोगेन यस्य धौत स्वार्तं कर्म सर्वं समाप्तम् ॥ ३ ॥

धन्या वाचो यस्य विज्ञाद्वशीला धन्या धन्या यमिया ब्रह्मलीला ।

धुला दृष्टा सज्जनामोददोला सत्तप्ताना यस्तु विश्रातिशाला ॥ ४ ॥

धन्या शृङ्गी यस्य सञ्चारपूता धन्य विश्व ब्रह्मतामेति सद्य ।

धन्य देव येन मुक्तोभिसृष्टो धन्य मौन यद्वचो नो रुषदि ॥ ५ ॥

धन्योत्पत्तिर्यस्य पश्चात्त जन्म धन्यो मृत्युर्यस्य पश्चात्त मृत्यु ।

धन्यो भोगो यस्य पश्चात्त भोगो धन्यो लाभो यस्य पश्चात्त दुःखम् ॥ ६ ॥
इत्यादि.

॥ १ ॥ निश्चय युगलका एक है, प्रारब्धके अनुसारसें । होवेप्रवृत्तिनिवृत्ति वा सब, दूर सार विचारसें ॥ प्रा० ॥ २ ॥ मनके प्रवृत्ति निवृत्ति धर्म न तज्ज्ञके हैं श्रुति कहे । प्रारब्ध भी मनमें रहे है मनहिं सुख दुखमें वहे ॥ प्रा० ॥ ३ ॥ है तज्ज्ञ साक्षी सत्य अनुमन्ता न कलुष वारण करे । अल्प न प्रवर्त्तक होत है, सब विश्वकों धारण करे ॥ प्रा० ॥ ४ ॥ कवहूं सकल जगभोग भोगे है असंग न मोद है । कौपीन पानी भी न कवहूं, मिले अल्प न तोद है ॥ प्रा० ॥ ५ ॥ क-

१ " वसन्देहागारे परमपदनिष्ठो विजयते ।

न कर्ता नो भोक्ता कश्चिदपि कदाचिद्विहरणे ॥

निजानंदारामो विषयविरतिर्नान्यशरणो ॥ १ ॥

परमब्रह्मतेऽपरिमितवपुः सन्निहरति ॥ १ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ २ ॥

इत्यादि प्रमाणसें ज्ञानवान् देहरूप नगरमें रहता हुआभी असंग निर्विकार साक्षीरूप होके रहेहै । न तो किसीको किसी कर्ममें प्रवृत्तकरे है न तो निवृत्त करे है । सदा निबानंदसिंधुमें निमग्न रहे है । २ किंचिद् गात्र भी व्यथा नहि होती,,

तहूं निहार पुण्यी हर्ष, पा, पूजते निजभाग्य
 फल । कैहिं कर्मअन्धे तिरस्कार हिं करत क-
 र्मनकों विफल ॥ ६ ॥ धिक्कार देते कतहुं यह
 जड पतित धर्म विगार है । केचित्कहेछहैं दर्श
 इनका सर्व पाप निवार है ॥ प्रा० ॥ ७ ॥ इनके
 न हर्ष विषाद कलु निज रूपकी मस्तीभरी ।
 नहि शार्पवरकों देत पावे जगत जो करणीकरी
 ॥ प्रा० ॥ ८ ॥ विन पग चलें विन कर अहें विन

१ “वाढालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽयं किं तापसः ।

किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिमौगीश्वरः कोपि किम् ॥

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुत्तरेः संभाष्यमाणा जनै-

र्न क्रुद्धा. पथिनेव तुष्टमनसो यांति स्वयं योगिनः” ॥ १ ॥

इत्यादि नानाप्रकारकी कल्पना स्वस्वमतिअनुसार श्लोक करते हैं, और
 अपनी २ भावना तथा कृति अनुसार हीं फल पावे हैं, परंतु ये महात्मा
 सर्वदाकाल अपनी महिमामें हीं विराजते हैं.

२ “धीरस्तु पूज्यमानोऽपि पीड्यमानोऽपि सर्वदा ।

आत्मानं केवलं पश्यन्न तुष्यति न कुप्यति ॥ १ ॥

निंदितः स्तूयमानो वा विद्वानर्हन् निंदति ।

न स्तौति किन्तु तेषां स्थापया बोधस्तथाऽऽचरेत्” ॥ २ ॥

न किञ्चिदपि वैपम्यमस्त्यज्ञानिविवुद्धयोः ।
 ग्रंथिभेदेऽपि संभाव्या इच्छाः प्रारब्धदोषतः ॥३॥
 प्रारब्धकर्मनानात्वाद्बुधानामन्यथाऽन्यथा ।
 वर्त्तनं तेन शास्त्रार्थे भ्रमितव्यं न पण्डितैः ॥ ४ ॥
 स्वस्वकर्मानुसारेण वर्त्ततां ते यथा तथा ।
 अविशिष्टः सर्वबोधः समामुक्तिरिति स्थितिः ॥५॥
 व्यवहारपराः केचित्केचिद्बोधपरायणाः ।
 समाधानपराः केचित्सर्वे मुक्ता न संशयः ॥ ६ ॥
 केपि वर्णाश्रमाचारनिष्ठापरा,
 मुग्धबालप्रमत्तोपमाश्चापरे ।
 रोगिणो भोगिनो योगिनश्चेतरे,
 ज्ञानिनां लक्ष्यते नैकरूपा स्थितिः ॥७॥
 कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी नृपौ जनकराघवौ ।
 वसिष्ठः कर्मकर्त्ता च पञ्चैते ज्ञानिनस्समाः ॥ ८ ॥
 स्वानन्दे सहजे सदा विहरतां स्वच्छंदलीलाजुषां ।
 निःसंगा च निर्गला च जगतां कल्याणसंदोहनी ॥

मत्स्यानां सलिलेऽवरे च वयसां वायोरिवाशामुखे ।
दुर्लक्ष्ये पथि योगिनां बहुविधा गूढा विचित्रागतिः

॥ पद ७५ ॥

प्रारब्धके वैचित्र्यसें, नहि नियम बुधव्यव-
हारमें । पर मुक्तिमें नहिं भेद कछु जडभरत
जनक अपारमें ॥ प्रा० ॥ टेक ॥ प्रारब्धमन्द प्र-
वृत्तिका, सुखनिर्विकल्पविरोधसें । हो बहिर्मुख-
तामें क्षणिक, कछु तापभी अनुरोधसें ॥ प्रा०

की लीये

१ प्रारब्धकमें विचित्र होनेसे ज्ञानीके व्यवहारमें नियम तो नहिं होसका
तथाऽपि जिनोके निवृत्तिके प्रारब्ध है वे पुरुष धन्य है—

दोहा—धीधन जीवन्मुक्तिहित त्यागप्रवृत्ति प्रसंग ।

सेवत देशद्वयंत मुनि निर्जित कोप अनंग ॥ १ ॥

तोटक छंद—जगजीवनतास प्रशस्त अहे । तनि जंत प्रसंग इकंत रहे ॥
मनरागनरोप क्लेश कदा । परमात्म समाहित धी शमदा ॥ २ ॥ अवनीतल
सेज शिरान भुजा । नभ मंडप दीप मयक सुजा ॥ वर व्यजन कात स्वभाव
वहे । अम मन्दिरमध्य मुनौद रहे ॥ ३ ॥ कबहुं गिरिकन्दर ध्यान धरे ।
कबहुं सरिता तटपे विचरे ॥ कबहुं सुरमन्दिर माहि वसे । कबहुं शमसान म
कान छसे ॥ ४ ॥ कबहु पयपान मिठाइ मिले । कबहु फल कंद चयेन गिले ॥
मन भाव अभाव कदे न करे । इन जीवनमुक्त सदा विचरे ॥ ५ ॥ और वा-
स्तवसें देमें तो प्रवृत्ति निवृत्ति दोनूपासें तत्त्वज्ञकी निष्ठा परे है.

॥ १ ॥ निश्चय युगलका एक है, प्रारब्धके अनुसारसें । होवेप्रवृत्तिनिवृत्ति वा सब, दूर सार विचारसें ॥ प्रा० ॥ २ ॥ मनके प्रवृत्ति निवृत्ति धर्म न तज्ज्ञके हैं श्रुति कहे । प्रारब्ध भी मनमें रहे है मनहिं सुख दुखमें वहे ॥ प्रा० ॥ ३ ॥ है तेज्ज्ञ साक्षी सत्य अनुमन्ता न कछु वारण करे । अल्प न प्रवर्त्तक होत है, सब विश्वकों धारण करे ॥ प्रा० ॥ ४ ॥ कवहुं सकल जगभोग भोगे है असंग न मोद है । कौपीन पानी भी न कवहुं, मिले अल्प न तोद है ॥ प्रा० ॥ ५ ॥ क-

१ " वसन्देहागारे परमपदनिष्ठो विजयते ।

न कर्त्ता नो भोक्ता वचिदपि वदाचिद्विहरणे ॥

निजानदारामो विषयविरतिर्नान्यशरणो ॥ ७ ॥

परब्रह्माद्वैतेऽपरिमितवपु सन्विहरति ॥ १ ॥

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं गच्छी ।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन् कारयन् ॥ २ ॥

इत्यादि प्रमाणसें ज्ञानवान् देहरूप नगरमें रहता हुआभी अलग निर्विकार साक्षीरूप होके रहदे है । न तो किसीको किसी कर्ममें प्रयत्नकरे है न तो निश्चय करे है । सदा विज्ञानदक्षिधुमें निमग्न रहे है २ विचित्र मान भी व्यथा नहि होती,

तहूँ निहार पुण्यी हर्ष, पा, पूजते निजभाग्य
 फल । कहिँ कर्मअन्धे तिरस्कार हिं करत क-
 र्मनकों विफल ॥ ६ ॥ धिक्कार देते कतहुँ यह
 जड पतित धर्म विगार है । केचित्कहे हैं दर्श
 इनका सर्व पाप निवार है ॥ प्रा० ॥ ७ ॥ इनके
 न हर्ष विपाद कछु निज रूपकी मस्तीभरी ।
 नहि शार्पवरकों देत पावे जगत जो करणी करी
 ॥ प्रा० ॥ ८ ॥ विन पग चलें विन कर अहें विन

१ “वाङ्मलः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽयं किं तापसः ।

किंवा तत्त्वनिवेशपेक्षलभतियोगीश्वरः कोपि किम् ॥

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुत्तरेः सभाष्यमाणा जनै-

नै क्रुद्धाः पथिनैव तुष्टमनसो यांति स्वयं योगिनः” ॥ १ ॥

इत्यादि नानाप्रकारकी कल्पना स्वस्वमतिअनुसार लोक करते हैं और अपनी २ भावना तथा कृति अनुसार ही फल पाते हैं, परंतु ये महात्मा सर्वदाकाल अपनी महिमामें ही विराजते हैं.

२ “धीरस्तु पूज्यमानोऽपि पीड्यमानोऽपि सर्वदा ।

आत्मानं भेदते पश्यन्न तुष्यति न क्रुष्यति ॥ १ ॥

निश्चितः स्तूयमानो वा विद्वानहं न निंदति ।

न स्तौति किन्तु तेषां स्वाद्यया बोधस्तथाऽऽचरेत्” ॥ २ ॥

श्रवण सुनते हैं सही । विन घ्राण रसना गन्ध
 रस लें, दृष्टि विन नयनन कही ॥ प्रा० ॥ ९ ॥
 विन वाक् वचन उचारते, विन चित्त सकल
 विचारते ईहम हैं अलौकिक तज्ज्ञ करणी,
 निगम नित्य पुकारते ॥ प्रा० ॥ १० ॥ युग दि-
 वस रात्री होत उलटे, तज्ज्ञ जडके हरि कही ।
 जगसें परे है ज्ञान अमृत, आप परमेश्वर सही
 ॥ प्रा० ॥ ११ ॥

श्लोकः

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंघ्य वर्तते ।
 आज्ञाभंगी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः ॥१॥

१ शानी अज्ञानीके रातदिन दोनों उलटे हीं गीतामें हरिमें कहें हैं, और उसी
 अर्थ को श्रीसुरेश्वराचार्योंने वातिकमें प्रकट किया है तहां श्लोक ।

“बुद्धतत्त्वस्य लोकोऽयं जडोन्मत्तपिशाचवत् ।

बुद्धतत्त्वोपि लोकस्य जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ १ ॥

काकोल्लिकनिशेवायं संसारोऽज्ञात्मवेदिनोः ।

या निशा सर्वभूतानामित्यबोचत्स्वयं हरिः” ॥-२ ॥ इत्यादि.

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
 आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ २ ॥
 तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते ।
 प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं संच मम प्रियः ॥ ३ ॥
 उदाराः सर्व एवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम् ।
 आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ४
 बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
 वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ ५ ॥

॥ पद ७६ ॥

है कर्मगति अति-कठिन बहु नर, ज्ञानकी
 निंदा करे । सुन ज्ञान नाम हिं तडफडावे, म-
 नसहित-तनुभी जरे ॥ है० ॥ टेक ॥ मुखसें कहें
 हम भक्त स्वामी-वचन तजत न लाज है ।
 होंगे भक्त जगके उदरके, ठगनका हि समाज
 है ॥ है० ॥ १ ॥ है भक्ति स्वामी वचन पालन,
 वचन वहिर न जावना । तनु-रहो चाहे अब

हिं जावो, अल्प भी नहिं चाहना ॥ है० ॥ २ ॥
 श्रीकृष्णजीका वचन ज्ञानी, आत्मा मम सर्वदा।
 ज्ञानी रखें अति प्रेम हममें, हम रखें तिनमें
 सदा ॥ है० ॥ ३ ॥ है ज्ञानसम न पवित्र कोई,
 दोष कारण हरत है। कर जीव भावहिं दूर,
 जो था सोचना सुख धरत है ॥ है० ॥ ४ ॥ सब-
 धर्मका फल अल्पभी है, ज्ञानके भीतर धरा।
 जिस कूप जल फल मिलत सगरो, सहज सा-
 गरमें भरा ॥ है० ॥ ५ ॥ है ज्ञान उत्तम वही
 जासों, एक भावहिं देखते। है ईश-अर्चा अ-
 धम मध्यम, पृथक् भावहिं प्रेखते ॥ है० ॥ ६ ॥
 नहिं तज्ज्ञकों कर्त्तव्य करण, अकरणसें नहिं फल

१ “ न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिदं विद्यते ” इति गीतोक्तेः.

२ सो गीतामें भगवाननेभी कहा है. तहा श्लोक ।

“सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।

यावानर्थोदपाने सर्वतः सष्ठोदके ।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः” ॥ इत्यादि.

तनिक । न रहा प्रयोजन किसीसें, निज विन
 न साचेकी भनक ॥ है० ॥ ७ ॥ निज कर्मसें
 बांधा पडा, संसारसें किसकी चले । फल मंद
 कर्मनका सही, सुन ज्ञानकों जो तलमले ॥
 है० ॥ ८ ॥ निज-ज्ञान परसुखकों न चाहे,
 कर्मकी गति अति प्रबल । अच ज्ञान अमृत
 मस्त रहैं, तज्ज हैं सर्वज्ञ जल ॥ है० ॥ ९ ॥

॥ पद ७७ ॥

जे बोतेहैं संविध तेहि ध्रुव, सफल इष्टकों
 पाते हैं । कर्म अकाम परोक्ष ज्ञानभी, जिज्ञासा
 उपजाते हैं ॥ जे० ॥ टेक ॥ नाश बहिर्मुखताकों
 सहजे, हरि तज्जनका संगहुं दे । जिज्ञासाकों
 जने सकाम हुं, विहित कर्म बुध गाते हैं ॥ जे०
 ॥ १ ॥ जिज्ञासासें इत उत पूछें, साधन ब्रह्म
 विज्ञानहिको । कृष्ण भक्तिसह समित्पाणि हो,

वैदिक गुरु ढिग जाते हैं ॥ जे० ॥ २ ॥ सरल स्वभाव
 अधिक श्रद्धासें, रुचि लख गुरुकों पूज सुखी ।
 आज्ञा भङ्ग न कवहुं करते, तन मन अर्प सुहाते
 हैं ॥ जे० ॥ ३ ॥ श्रवणादिक प्रतिबंधक कर्म-
 नका अधिकार मिटानेकों । आज्ञा पाय संन्यास
 विविदिषा लेतेहीं हर्पाते हैं ॥ जे० ॥ ४ ॥
 सद्भिक्षासें प्राण धारते, आज्ञासें श्रवणादि करें ।
 कृष्ण कृपा अपरोक्ष ज्ञान पा सबहीं तस बुझाते
 हैं ॥ जे० ॥ ५ ॥ प्रारब्धके भोगनकों भी जैसेके
 तैसे रहते । पाछे भी जैसे के तैसे रहें अचल वे
 नाते हैं ॥ जे० ॥ ६ ॥ सदा मस्त अल मस्त
 दिवाने, फिरे न ममता कतहुंभी । ज्ञानामृत
 नित निगम प्रशंसें निख निख हर्पाते हैं ॥
 जे० ॥ ७ ॥

॥ पद ७८ ॥

संतनकी सेवा सुखदायक, जे करते सुख भरे फरे । जीवन्मुक्त विदेह मुक्त हों, ज्ञानी परमानंद भरे ॥ सं० ॥ टेक ॥ परमानंद ब्रह्म है दोई, मायाके मिट जानेसें । पारब्यके तारतम्यसें, वेद पृथक् शुभनाम धरे ॥ संत० ॥ १ ॥ लिपे न कबहुं किसीसें अल्पहुं, जलपङ्कजसें अधिक गती । अलग विदेह कर्मके अनुगुण, जो आवे व्यवहार करे ॥ संत० ॥ २ ॥ कर्म योगसें मध्यममन्द पुरुषनसें है व्यवहार यदि । हो विक्षेप बहिर्मुखतासें, अल्पकाल ध्रुव चित्त जरे ॥ संत० ॥ ३ ॥ यदि उत्तम पुरुषनकी संगति, हो व्यवहार हुं तिनसेंही । है विक्षेप न कारण कलु भी, तारे अवरहिं आप तरे ॥ संत० ॥ ४ ॥ जीवन्मुक्त संदा इक रसहीं, निर्विकल्प सुख लेते

हैं । तनुकी सुधभी कबहूँ आवे, इनसें ध्रुव वि-
 क्षेप टरे ॥ ५ ॥ यद्यपि सुख न विदेह मुक्तकों,
 जीवन्मुक्त समान सही । तौभी कर उपदेश
 जननकों, सकल अविद्या जाल हरे ॥ संत०
 ॥ ६ ॥ विन रचनादि परेश सरिसवल, जीवन
 मुक्तहिं होता है । सो विदेहके निकट नहीं है,
 कारणविन नहिं काज सरे ॥ संत० ॥ ७ ॥ ज्ञा-
 नामृत क्या जीवन्मुक्ति है, कहें विदेह मुक्ति
 किसकों । है सब बातें मायाकी यह, मायासें हैं
 संतपरे ॥ संत० ॥ ८ ॥

श्लोकः

‘स्नातं तेन समंस्ततीर्थसलिले दत्ताच्च सर्वा मही ।
 यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः
 संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ
 यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ?

॥ पद ७९ ॥

सर्वत्र चेतन ध्येय है, ध्याता चिदाभासहि सदा

है भिन्न भिन्न उपाधिकी जो, बात मिथ्या सर्वदा ॥ सर्वत्र० ॥ टेक ॥ कहूँ शुद्ध सत्त्व प्रकाशमें, रवि हरि शिवाशिव सुत बने । निज भक्तकी रुचि अनुग फलकों देत निजसुख भी तने ॥ सर्वत्र० ॥ १ ॥ आकाश आदि उपाधिमें, कहूँ भक्त दुःख विदारते । वैदिक गुरुनमें शक्तिसैं, निज शिष्य तमहिं निवारते ॥ स० ॥ ॥ २ ॥ रजमिश्र सत्त्वहिं लिये कतहुं, सुर सुरेश्वर भी बने ॥ ध्यातहि मिलावत संपदाकों, सकल लौकिक-सुख तने ॥ स० ॥ ३ ॥ कतहुं रजो गुणके लिये राजादि दीत सुहात है । निज भक्तकों दे संपदाकों, निज समान

१ “परमार्माद्वयानन्दः पूर्णः पूर्वं स्वमात्रया ।

स्वयमेव जगद्भूता प्राविशन्जीवरूपतः ॥ १ ॥

विष्ण्वाद्युत्तमदेहेषु प्रविष्टो देवताऽभवत् ।

मत्स्याप्यधमदेहेषु स्थितो भवति देवनाम् ॥ २ ॥

२ अनुसार. ३ विद्यारता है.

१६ प० भा० ५०

वनात है ॥ स० ॥ ४ ॥ कहूँ तमो-गुणसँ गुणी
 वन, भूम्यादि दीप्त सुहावते । सब जीवका
 सुख हेतु, अन्न प्रभृति वस्तु वरसावते ॥ स०
 ॥ ५ ॥ इम-रूपसों सो वने सोसो, काज सहजहि
 करत है । हो वृत्तिमें आरूढ ताके, विषयका तम
 हरत है ॥ स० ॥ ६ ॥ संव पितर उच्चारे यज्ञ
 जप, दान पूजे धाम सुर । सब जगतके हैं
 पूज्य ते जे, ध्यावते इक क्षण अफुर ॥ स० ॥ ७ ॥
 अश्वत्थवट तरु आदिमें, चितसँहिं सब फल लेतहै

१ यह उपासनादि प्रकार सारा पंचदशीकारने सम्यक् दिखाया ॥
 सही श्लोकः—

द्वैशसूत्रविराट्प्रेषोविष्णुर्देवद्वयः ।
 विप्रर्भरवमैरालमारिकायक्षराक्षसाः ॥ १ ॥
 विप्रक्षत्रियविद्वद्भ्रातृ गवाश्च भृगुपक्षिणः ।
 अश्वत्थवटचूताद्या यवग्रीहितृणादयः ॥ २ ॥
 जलपाषाणमृत्पाषाणकुहालकादयः ।
 ईश्वराः सर्व एवैते पूजिताः फलदायिनः ॥ ३ ॥
 यथा यथोपासते तं फलमीयुस्तथा ।
 फलोत्कर्षार्थं ॥ पूज्यभूजानुसारतः ॥ ४ ॥

ध्रुव तारतम्य उपाधिसें फल, तारतम्यहिं देत है

मुक्तिस्तु ब्रह्मतत्त्वस्य ज्ञानादेव न चान्यथा ।
 स्वप्रबोधं विना नैव स्वस्वप्नो हीयते यथा ॥ ५ ॥
 अत्यंतबुद्धिमांसाद्वा सामान्या वाप्यसंभवात् ।
 यो विचारं न लभते ब्रह्मोपासीत सोऽनिष्टम् ॥ ६ ॥
 निर्गुणप्रज्ञतत्त्वस्य ननुपात्तेरसंभवः ।
 सगुणप्रज्ञणीवात्र प्रत्ययावृत्तिसंभवात् ॥ ७ ॥
 इह वा मरणे चास्य ब्रह्मलोकेऽप्यत्र भवेत् ।
 ब्रह्म-साक्षात्कृतिः सम्यग्गुणासीनस्य निर्गुणम् ॥ ८ ॥
 अर्धोऽयमात्ममार्गातायामपि स्पष्टमुद्धारितः ।
 विचाराक्षम आत्मानमुपासीतेति संनतम् ॥ ९ ॥
 साक्षात्कर्तुंमशक्तोऽपि चिन्तयेन्मामसंक्षितः ।
 कालेनानुभवाद्भूतो भवेदाफलितो ध्रुवम् ॥ १० ॥
 यथाऽगाधनिधेः ग्राही नोपायः खननं विना ।
 मातृभेदि तथा स्वात्मचित्तां मुञ्चता न चापरः ॥ ११ ॥
 देहोपलभमावृत्त्य बुद्धि बुद्ध्यलङ्कारानुः ।
 भूत्वा मनोभुवं भूयो गृहीयात्मा निधि पुमान् ॥ १२ ॥
 अनुभूतेरभावेऽपि ब्रह्मास्मीत्येव चिन्त्यताम् ।
 अप्यमप्राप्यते ध्यानाभित्याप्तं ब्रह्म किं पुनः ॥ १३ ॥
 अनात्मबुद्धिरसंयित्यं फलं ध्यानादिने दिने ।
 परममपि न चेज्यायेन्कोऽपरोऽस्मात्परमुदे ॥ १४ ॥
 देहाभिमानं विध्वंस्य ध्यानादात्मानमद्वयम् ।
 परमन्मत्तोऽमृतो भूत्वा सत्र ब्रह्मममभुते ॥ १५ ॥

सर्व० ॥ ८ ॥ जे दृश्यं मात्र उपाधि तज नित,
ब्रह्म निर्गुण ध्यावहीं । इस लोकमें अज लोकमें
वा, ज्ञान अमृत पावहीं ॥ सर्व० ॥ ९ ॥

श्लोकः

आयुः क्षणलवमात्रं न लभ्यते हेमकोटिभिः क्वापि ।
तच्चेद्रच्छति सर्वं मृषा ततः काधिका हानिः ॥१॥
आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं ।
व्यापारैर्वहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते ।
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् २

पद ८० (राग धनाश्री)

जनतें जगमें जियरा जमाया । ताँहिकर परमार्थ
भुलाया ॥ जनतें० ॥ टेक ॥ कूडे कृतकर दिवस
गँवाया, निद्रा नक्तं नशाया । ऊठ प्रभात फ-
रौकत जाकर, दातुन स्नान कराया ॥ जन० ॥१॥

करि भोजन घरबाहिर जाके, लौकिक द्रव्य
 कमाया । सांजसमय पुनि घरमें आके, खाके
 सेज विछाया ॥ जन० ॥२॥ रात दिवस भवचक्र
 मजारी, जीवन जात शराया । कर्म नवीन न
 इच्छत करना, ईतना ठेका लाया ॥ जन० ॥३॥
 सुतवितमंदिरसुंदरनारी, मम इति फिरत फु-
 लाया । पथिकसार्थ इव संगम सारो, ज्यों वाद-
 लकी छाया ॥ जन० ॥४॥ सांजसमय तरु नभचर
 नाना, होत प्रभात उडाय। योग वियोग जनन-
 मरणादिक, देख न भय मन आया ॥ जन० ॥५॥
 गर्भवासमें प्रभुसन्मुखते, क्या क्या कवल कराया ।

१ आहार निद्रा भय मैथुनादि संसार व्यवहार करनेवाहीं ठेकालेके
 आवेहो क्या इतना कर्म तो पदवादिकमेंभी रहना है तहा प्रमाण —“आहारनिद्रा-
 भयमैथुनानि सनानि चैतानि नृणा पशूनाम् । ज्ञानं नराणामधिको विशेषो इन्द्रेण
 द्योता पशुभिः समाना ” ॥ १ ॥ औ “देहसुहृद्य पटुर्बद्ध कुर्यात् केनचित्
 ॥ २ ॥ भामे भामे कथंकारं काने कामे गतिर्भवेत् । रामे रामे परा भस्त्रियामे
 यामे भगाम्यहम् ” ॥ ३ ॥ इत्यादिक विचार मनुष्यमें रहे है पथादिकमें है
 नहि यही विशेषता है. २ जैसे पथिकोका संग आगगाढी आदिमें हो जावे है.

जगमें आय भुलायदिये भव-भोगरोग मनभाया
 ॥ जन० ॥ ६ ॥ लाख हजार पदार्थ जमाय न,
 शुभमगमांहि लगाया । प्राण त्राण उपयोग
 अधिकनर, दुखकर तब उपजाया ॥ जन० ॥ ७ ॥
 यातें निजघर प्रति मनिओर्डर, कर हर नाम
 पठवाया । ज्ञानानंद-प्रदायक सद्गुरु देव सेव
 सुखचाया ॥ जन० ॥ ८ ॥

पद ८१ (राग रासडा)

गुरुशरण हरण संसारहै रे ॥ हरिभजन वृजिनवन
 जारहैरे ॥ गुरु० ॥ टेक ॥ भवसागर कर पार न-
 वारा । श्रीहरिनाम सुनाव सुखारां ॥ कर्णधार
 गुरुकरुणा तारण हारहै रे ॥ गुरु० ॥ १ ॥ मात
 पिता बांधव सुत नारी । करत प्यार स्वारथकर
 भारी ॥ मोहनमंत्र लगाकर नर भरमा रहै रे
 ॥ गुरु० ॥ २ ॥ काम क्रोध लोभादिक वैरी,
 करत विवेक-विकल मति हैरी । ज्ञान ध्यान हर-

नार निरयकर द्वारहै रे ॥ गुरु० ॥३॥ नरतन रतन
 अमोल मिलायो, विषयव्यसन सन्मान गँवायो ।
 भज्यो न भूभर्तार परमसुखकार है रे ॥ गुरु० ॥४॥
 बालपनो खिलखेलन खोयो, भयो युवा मदमदन
 विगोयो । वृद्ध भयो चितचिंतन आग लगारहै रे
 ॥ गुरु० ॥ ५ ॥ श्रीसद्गुरुमहिमा अतिभारा, गिरि-
 धर वेदपुराण पुकारा । ज्ञानदान मुक्तिसुख कर
 दातारहै रे ॥ गुरु० ॥ ६ ॥ गुरुगोविंद एक करि
 मानो, तनिक न अंतर अंतर आनो । ज्ञानामृत
 कर पूरण पारावारहै रे ॥ गुरु० ॥ ७ ॥

॥ श्लोकः ॥

अस्ति स्वयमित्यस्मिन्नर्थे कस्यास्ति संशयः पुंसः ।
 अत्रापि संशयश्चेत्संशयिता यः स एव भवसि त्वम् ।
 नाहमिति वेत्ति योऽसौ सत्यं ब्रह्मैव वेत्ति नास्तीति ।
 अहमस्मीति विजानन्ब्रह्मैवासौ स्वयं विजानाति २
 ब्रह्मत्वमेव तस्मान्नाहं ब्रह्मेति मोहमात्रमिदम् ।

मोहेन भवति भेदः क्लेशाः सर्वे भवन्ति तन्मूलाः ३
 न क्लेशपंचकमिदं भजते कृतकोशपंचकविवेकः ।
 अत एव पंचकोशान्कुशलधियः संततं विचिन्वन्ति ४
 अन्नप्राणमनोमयविज्ञानानंद-पंचकोशानाम् ।
 एकैकान्तरभाजां भजति विवेकात्प्रकाशतामात्मा

पद ८२ (राग रासडा)

कारण पंचक्लेशविनाश विवेक विकाशहैरे । ब्रह्म-
 प्रकाशहैरे ॥ कारण० ॥ टेक ॥ है अतिप्रबल
 कठिन पत्थरसा, परम भयंकर जनुसत्थरसा ।
 ऐसा तनुअध्यास हिं पूरन पाश हैरे ॥ कारण०
 ॥ १ ॥ यदपि वेद मिथ्या जग दशहीं, दृश्यत
 नश्वर स्वप्नसदृशहीं । तदपि न त्यागत राग द्वेष
 मद आश हैरे ॥ कारण० ॥ २ ॥ याको मूल
 अस्मिता कहिये, जांके पाछे सब भ्रम लइये ।

१ “अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशा पंचक्लेशा ” इति पातञ्जलसूत्रम् ॥ इन
 पंच क्लेशोंकी निवृत्तिका साधन अन्नमयादि पंचकोशनर्तों आत्माका विवेक है.

कारण ताको चतुर अविद्या भास हैरे ॥ कारण० .
 ॥३॥ तनुभ्रम मूल क्रिया भ्रमसगरो, ज्ञान ध्यान
 जहिं लों जगझगरो । यही बनावत इनकों सबका
 दास हैरे ॥ कारण० ॥ ४ ॥ जाग समूल देह-
 भ्रम जौलों, होनहार नहिं सतसुख तौलों । यदि
 अजआदिक सुर नर चरण उपास हैरे ॥ कारण०
 ॥ ५ ॥ मूल अविद्या प्रथम नशाईये, जार अ-
 स्मिता देह जराईये । ज्ञानामृतमय निजपदमाहिं
 निवास हैरे ॥ कारण० ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ ।
 दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदांतडिंडिमः ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

जड चेतन दो वस्तु जग तिनकों खूब तपास ।
 चेतन आत्म स्वरूप लखि दृश्य अनात्म निरास ॥२॥

॥ पद ८३ (राग संमयानुसार) ॥

चिद्धन आतम देव संभारो । दृश्य विसारो ॥
 चि० ॥ टेक ॥ जड चेतन दो वस्तु वडो जो,
 सोई रूप तिहारो ॥ चि० ॥ १ ॥ देख विचार
 वडो को इनमें, झूठ लगे सो हारो ॥ चि० ॥ २ ॥
 अचर प्रकाश्य असत्परिणामी, दुःख प्रेर्य सं-
 सारो ॥ चि० ॥ ३ ॥ भासक प्रेरक सत्सुख साक्षी,
 चेतन परम पियारो ॥ चि० ॥ ४ ॥ तुम प्रिय
 तुम विन कवन अवर प्रिय, सब जग जग सों
 न्यारो ॥ ५ ॥ ऐसो सुख नहीं अवर जगतमें,
 यह न्यारो निजद्वारो ॥ चि० ॥ ६ ॥ सकल ज-
 गत्तुमनें सत कीना, तुम सबको सरदारो ॥
 चि० ॥ ७ ॥ जो कलु लखियें सुनियें, गुणियें,
 तुम सबमें सच्यारो ॥ चि० ॥ ८ ॥ तारतम्य
 बलका जो सो सब, माया कृतव्यवहारो ॥ चि०

॥ ९ ॥ सेव्य सकलको, पूज्य सकलको, तुम
 सब प्राण अधारो ॥ चि० ॥ १० ॥ तुम इनका
 आधार इन हिसें, फिर क्या चाहत सहारो ॥
 चि० ॥ ११ ॥ तब माया हीं रच दिखलायो,
 जहिंलौं जगत पसारो ॥ चि० ॥ १२ ॥ भयो
 कुसंग तांहिं बल तुमने, मन धारो मुरदारो ॥ १३ ॥
 भेददर्शिका संग न करियें, दीन करे दुख भारो
 ॥ चि० ॥ १४ ॥ भेद प्रभाव विषयकों चाहत,
 दुखी भयो मुखकारो ॥ चि० ॥ १५ ॥ तज
 दुखभेद करो निज-दर्शन, तुम सत्सुख उजि-
 यारो ॥ चि० ॥ १६ ॥ हे मिथ्या दुखकाहीं दाता,
 जहिं लौं मन विस्तारो ॥ चि० ॥ १७ ॥ निकरोगे
 इस दुखसें तब हरि-सद्गुरुपद मन धारो ॥ चि०
 ॥ १८ ॥ तज मिथ्याकों सत्सुख तुमहीं, सोवो
 पादपसारो ॥ चि० ॥ १९ ॥ ज्ञानामृत क्या चाह
 अवरकी, होहु मस्त मतवारो ॥ चि० ॥ २० ॥

॥ पद ८४ (राग आसावरी) ॥

नर तब अवसर व्यर्थ वयो, बोध न नीठ
ठयो ॥ नर० ॥ टेक ॥ बलकुसंग सब गये सिंह
गुण, अजा स्वभाव अयो । तूं चेतन जड भासक
जडसैं, मिलक्युं जडहिं भयो ॥ नर० ॥ १ ॥ चौ-
दश भुवन भुवनवासी सब, तेरे रङ्गरयो । तब आ-
श्रित सब तुमसैं जीवैं, तुमक्युं शोक ठयो ॥
नर० ॥ २ ॥ हरिहर निगम कहत हैं, निशदिन
तूं सब देव भयो । अवहुं छांड कुसंग मार हठ, क्युं
मन झूठ दयो ॥ नर० ॥ ३ ॥ यह झूठे भेदी जे स
गरे, इनको जन्म गयो । बहुकुमंत्र रच रचके
इननैं, दुखका बीज वयो ॥ नर० ॥ ४ ॥ कह
कह संत सबहिं थक हारे, अब तो मान कह्यो ।
अब तो पड संतनकी पईयां जहिं सुख नित्य
नयो ॥ नर० ॥ ५ ॥ क्युं मिथ्या आरंभ करत

नर तूं इस भेद हयो । ज्ञानामृत-हत मारय
मिथ्या, होवे अचल जयो ॥ नर० ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

अहो मायावलं चित्रमत्ता ह्योदनतां गतः ।

अहो मायावलं चित्रमत्ता चौदनतांगतः ॥ १ ॥

॥ पद ८५ (राग-घनाश्री) ॥

संतो अचरजं वात कहाई । मनमोह सकल
भरमाई ॥ संतो० ॥ टेक ॥ सत चिद आनंद
आप असज्जड दुखके पाछे धाई । वन्ध्या सुवन-
समान जगतनें, साची वस्तु छुपाई ॥ संतो० ॥ १ ॥
अत्ता आप चराचर जगको, ताकों मीच डराई ।

१ दोहाः—नित्य प्राप्त निवृत्तको प्रापण मोचन ज्ञान ।

दशम पुरय माला भुजग प्राप्ति निवृत्ति समान ॥ १ ॥

“नित्यबोधपरिपीडितं जगद्विभ्रमं नुदति वाक्यजामनिः ।

वामुदेवनिहतं धनंजयो हंति कौरवकुलं यथा पुनः” ॥ २ ॥

२ अहो मायाका बल अत्यंत आश्चर्यकारी है जाकरके मृत्युममेत सारे
जगत्का भक्षक परमात्मा देव ओदनबत् मृत्युका भक्ष्य होरहा है. १ तसे मा जो
मथार्य अनुभव ताका बल भी बड़ा आश्चर्यकर है । जा करके सारे जगत्का
भक्षक मृत्युमी ओदम (भात) स्थानीय हो जाये है.

क्या कलु भया कहें अव किनसें, अमृत धूल मि-
 लाई ॥ संतो० ॥ २ ॥ दिखे नहीं कलु जडसें
 मिलके, कैसी जडता छाई । जग स्वामी जग-
 दास बनायो, यह मायावल भाई ॥ संतो० ॥ ३ ॥
 अहो दृश्य दुख तुम सुख द्रष्टा, कस तव मति
 घौराई । जानें नहिं कलु हानि लाभकों, भयो
 निजहिं दुखदाई ॥ संतो० ॥ ४ ॥ माया माया
 कार्य जहिं लों, तहिलों सुख नहि राई ॥ तुमनें
 मिथ्या दुखके कारण, मिथ्या द्वैत बनाई ॥
 संतो० ॥ ५ ॥ जीव जगत् सब तव हिं कल्पना
 कवन कुरीति चलाई ॥ कोशकार जिम आपहिं
 रचके, फसे आप हीं आई ॥ संतो० ॥ ६ ॥ भेद
 जहां है चाह तहां फिर, किसनें दूर बहाई ॥
 चाह जहां सुख तहां कहां है, सुखमार्ग विसराई
 ॥ संतो० ॥ ७ ॥ धन्य धन्य ते सब सुख दाता
 जिन यह द्वैत भुलाई ॥ कहों कहा मुख एक

प्रशंसा श्रुति हूँ कहत सकुचाई ॥ संतो० ॥ ८ ॥
 जाग जाग नर त्याग त्याग यह अंधनकेर वडाई ।
 ज्ञानामृत सागर करमजन, शोक समोह शमाई
 ॥ संतो० ॥ ९ ॥

॥ पद ८६ ॥

अवतो मनवा मेरा निज सुतकों कर हात
 हात ॥ अव० ॥ टेक ॥ आत्म काम तमाम काम
 तज, भज अजरामरमात । निगम गिरा शिरपर
 धर लीजे, श्रीसद्गुरुवचनात नात ॥ अव० ॥ १ ॥ जो
 देखा सो जगमें राता, जगके मधुफल खात । कहें
 कवनसें कवन सुने है, जो है जगकी बात बात
 ॥ अव० ॥ २ ॥ जोथी रात भई दिन जिनमें, दि-
 वसभयो जहि रात । उलट पलट जहि सगरी
 छाई, तहां कहां कुशलात लात ॥ अव० ॥ ३ ॥

१ निज कहिये अपने काम क्रोध लोभ मोहादि पुत्रोंको हाथकर अपना
 अपने यशमें कर.

जग अंधा अंधोंकों पूजे, अंधे याहिं नचात ।
 अंध वडाई जो नर चाहे, तासों ताप न जात
 जात ॥ अव० ॥ ४ ॥ साच झूठ सब झूठ साच
 यह, भयो जगत उत्पात । जगमें सुख चाहे जो
 नरविन-पक्ष आकाश उडात डात ॥ अव० ॥ ५ ॥
 जग मोहित मानत नहिं मानहु, हितकर हमरीबात
 सेवत सद्गुरु-पदरज प्यारे, ज्ञानामृत दरशात
 शात ॥ अवतो० ॥ ६ ॥

॥ पद ८७ ॥

अवतो मनवा मेरा, सुनिये हितकर बात
 बात ॥ अवतो० ॥ टेक ॥ मान वचन मम यदि
 सुख चाहे, तज सब जगसों नात । जगत् मांहि
 दृढ सन्मति जों लौं, सुख मुख नहिं दर शात
 शात ॥ अव० ॥ १ ॥ गए जन्म बहु जगसुख
 खोजत, गयो न सुखलौं हात । अब तो सब
 तज आ संतनढिग, जहिं सुखकी वरसात सात ॥

अव० ॥ २ ॥ चहो नाश दुखका सुखकों भी, हृदय
 विवेक न आत । संस्कार परिणाम तापदुख,
 खात रहा दिन रात रात ॥ अव० ॥ ३ ॥ ब्रह्म-
 लोकलों त्रिगुण सकल हों, सकल निगम मुनि
 गात । रजतम विन नहिं सत्त्व प्रकाशे, रज
 सबताप बनात बनात ॥ अव० ॥ ४ ॥ प्रथम
 सत्त्व रज आश्रय लेकर कर तमगुणको घात ।
 सत्त्वाश्रयसें मार रजो पुनि, सत्त्व शुद्धसें जात
 जात ॥ अव० ॥ ५ ॥ श्रीगिरिधरकर पदरज
 चूमी, गुणमें मारो लात । ज्ञानामृत परि तृप्ति
 निरंकुश, को जग मांहि अघात घात ॥ अव० ॥ ६ ॥

१ "रजोगुणद्वय दृष्टिस्त्वमर्थैवामिवर्धते । न चाधिगम्यते सत्त्वं सत्त्वम-
 ल्यन्तदूरतः" ॥ १ ॥ इति धीरामोक्तिः "तमो द्वाभ्यां रजः, सत्त्वात्सत्त्वं
 शुद्धेन नश्यति । तस्मात्सत्त्वमवद्विष्य स्वाध्यासापनयं कुरु" ॥ १ ॥ इति धी-
 मदाचार्योक्तिः

२ मास मोडव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवेत ॥ स गुणान्समतीर्त्तैतान्मम—
 भूयायवत्पते" ॥ १ ॥ इति गीतोक्तिः

३ "सांत्तुश विपर्यस्तृप्तिरियं तृप्तिर्निरंकुश" । इति पंचदश्या-

पद ८८ (राग धनाश्री)

कुमतसेँ रामहिँ राखनहारा । सुन देख भ्रमत
जग सारा ॥ कुमत० ॥ टेक ॥ क्या जानें यहु कव-
नपापसेँ, वैदिकमत-गलआरा । आया है इस
कल्पित-मतनेँ, छलसेँ जगत उजारा ॥ कु० ॥ १ ॥
क्रोध द्वेषकों उपजावें दृढ, मैत्रीकों संहारा ।
निजनिजमतके बांधेहैं जग, जुदे जुदे आखारा ॥
कु० ॥ २ ॥ निज निज बरदी न्यारी न्यारी, धारी
कर हंकारा । फिरें द्वेषके भरे लडनकों, बांधेहैं
हथियारा ॥ कु० ॥ ३ ॥ जो जो इनके बशमें
आवे, यही रहस्य दिखारा । इतरमतीके दर्शनसेँ
भी, पुरुष होत हतयारा ॥ कु० ॥ ४ ॥ इतरम-
तिनके ढिग मत जाना, संगत दूर निवारा । करो
प्रणाम न कभी इतरकों, करत पाप लगयारा ॥
कु० ॥ ५ ॥ जो जो हमरे मतमें आया, पाया

मुक्तिसुखारा । अवर सकल मत हेतु नरकके,
 साचा वचन हमारा ॥ कु० ॥ ६ ॥ अपने मतिकों
 वैष्णव कहहीं, इतर कुकंटक सारा । हमरा मत
 हिं सनातन है इक, अवर नया सब धारा ॥
 कु० ॥ ७ ॥ सारमंत्र है यही देखना, रखिये गोप
 संवारा । मति कंटकके कान परे यह, हमरा पन्थ
 हिं न्यारा ॥ कु० ॥ ८ ॥ नश्वर तनुके हित जगवंचक
 दृढतर पर जमारा । कल्पित बातें सिखला जगमें,
 द्वेष क्रोध विस्तारा ॥ कु० ॥ ९ ॥ इत मतिय-
 नकी कृपा जगत्का सत्यानाश निकारा । गई
 वृद्धि अब भारतमेंसें, धर्म हुं कीन किनारा ॥
 कु० ॥ १० ॥ द्वेष हेतुसें निशिदिन झगरे, आप-
 समें पचियारा । एक एककों देख न शक्ता,
 देख लगे चंगियारा ॥ कु० ॥ ११ ॥ आपसकी
 निंदाकों करकर, आपसमें हिं विगारा । जौ लों
 मत यह चने न तौ लों, भारतका उजियारा ॥

कु० ॥ १२ ॥ मत हैं ध्रुव युग तीन वर्ग लग,
 एक प्रवृत्ति विचारा । अमृत हेतु ज्ञान इक
 लखिये, वेद निवृत्ति पुकारा ॥ कु० ॥ १३ ॥

पद ८९ (राग लावणी.)

नारायणनें नाटक रचकर, नानारूप दिखाए
 हैं । अपनी मायाकर बहुधा श्रुति, वास्तव एक
 अलाए हैं ॥ ना० ॥ टेक ॥ क्या जानें क्यों मंद-
 मतिनके, सतपथ हाथ न आता है । वसत पाश
 अविनाश विसारी, कितने रूप बनाए हैं ॥ ना०
 ॥ १ ॥ लिये कपाल फिरत हैं केचित, जटाजू-
 टकों बांधे हैं । केचित लुंचित केश भए हैं,
 केचित जटा बढाए हैं ॥ ना० ॥ २ ॥ फलाहा-
 रकों केचित करते, केचिद्विया भूतनकी । केचि-
 द्वातें करत हाथसें, मौनी सिद्ध कहाए हैं ॥

१ एक प्रवृत्तिमार्ग है दूसरा निवृत्ति मार्ग है तामे धर्म अर्थ और काम ए तीन मिलके एक प्रवृत्ति मार्ग है और मोक्षको निवृत्ति मार्ग समझना.

ना० ॥ ३ ॥ केचित् माला तिलक छापकों, पहरे
 फिरें गरूरीमें । केचित नग्न पाद फिरते हैं, केचि-
 न्द्रस्स लगाए हैं ॥ ना० ॥ ४ ॥ केचित्पांच आग
 तपते हैं, बडेसिद्ध कहलाते हैं । केई लिये
 निशान फिरत हैं, केई ध्वजा उठाए हैं ॥ ना०
 ॥ ५ ॥ केचिद्वांधे फिरे मतंगा, केई नाद बजाते
 हैं । केचित मुखकों बांधे फिरते, बहुते हीं बह-
 काए हैं ॥ ना० ॥ ६ ॥ केचिद्भोजन करें न करसैं
 केचित मश्व पिशाच करें । केई आसन बहुत
 लगावें, केचित खडे थकाए हैं ॥ ना० ॥ ७ ॥
 आश न मारें आसन मारें, तन वनमें मनवा
 धनमें । ज्ञानामृतकर श्रीसद्गुरु विन, भव अटवी
 भटकाए हैं ॥ ना० ॥ ८ ॥

॥ पद ९० ॥

नारायणकरुणा विन किसनें, सच्चे सद्गुरु पाए
 हैं । मनमुख नानावेश बना कर, बाबाजी कह-

लाए हैं ॥ नारा० ॥ टेक ॥ वाणविछौना केचित
 करते, केचित नखन वढाते हैं । केचित काठ
 तडागी पहरे, केई भुजा सुखाए है ॥ नारा० ॥
 ॥ १ ॥ इत्यादिक बहु-वेश धरे हैं, भीतर दुखहीं
 भरा धरा । समझ देखले निश्चय करले, सबहीं
 तृष्णा खाए हैं ॥ नारा० ॥ २ ॥ तृष्णा जहां
 तहां परमेश्वर, अपना आप पराता है । तांके
 विना कहां किसने ध्रुव, सुख यह नाम धराए
 हैं ॥ नारा० ॥ ३ ॥ विना कृपा गिरिधरकी सो-
 नहि, मिलता यद्यपि रूप अपन । ताका कारण
 अचल-प्रेम है जांके वश हरि आए हैं ॥ नारा०
 ॥ ४ ॥ आत्मविद्वानोंकी है पहिचान कठिन अ-
 ति दुस्तरहीं । नहिं व्यवहार नियम है इनके
 प्रारब्धोंपर धाए हैं ॥ नारा० ॥ ५ ॥ जिम म-
 णिकी पहिचान होत है, धीरे धीरे तैसेहीं ।

कृष्णकृपानें दृढविविदिषुकों, सहज हि आन
 मिलाए हैं ॥ नारा० ॥ ६ ॥ इनकी साची सेवा
 विन नहि, मिले कदाचित् सुख कतहुं । इननें
 कवहुं अवलों आए, शरण नहीं तरसाएहैं ॥
 नारा० ॥ ७ ॥ जे जे साचे इनकी पदरज चूमें
 ते सुखरूप भए । जे इनसें हैं दूर न तिनकों
 सुखनें मुख दिखलाए हैं ॥ नारा० ॥ ८ ॥ इन
 विन वेद प्रशंसे किसुकों इनके विन सुख रहे
 कहां । ज्ञानामृत जहि जहि सुख देखा इनहीं
 ने वरसाए हैं ॥ नारा० ॥ ९ ॥

पद ९१ (राग धनाश्री.)

संतो श्रोतविचारहिं करिये । श्री सद्गुरु मुख
 संवरिये ॥ संतो० ॥ टेक ॥ दुर्गम मग जाकों
 कवि कहहीं, तामें अव संचरिये, रोक रोक

मन बहुत हिं राखा, झूठ हिं कवलग भरिये ॥
 संतो० ॥ १ ॥ अधुना स्वतः ग्रमाण वेदकी,
 आज्ञा शिरपर धरिए । हितउपदेश करत श्रुति-
 माता, क्यों ताकों नादरिये ॥ संतो० ॥ २ ॥
 सत्यज्ञान सुखरूप वदत श्रुति, नहिताकों वि-
 स्मरिये । वेद बहिर्मुखतामें हठसें, कैसें भव-
 जल तरिये ॥ संतो० ॥ ३ ॥ निगमाज्ञा सुख-
 कर परहर क्युं, त्रिविधतापमें जरिये । अंधोंसें
 मिल हुइ अंधे क्युं, भेद कूपमें परिये ॥ संतो०
 ॥४॥ अंधे जिम लख सर्प रज्जुमें, तिम क्युं भयसें
 मरिये । जिनपर कृष्णकृपा नहिं अंधे, अब तो
 इनसें टरिये ॥ संतो० ॥ ५ ॥ संत मिथ्या हैं
 उलटे इनके, इनसें कवहुं न फरिये । इनका
 संग त्रिविध दुखकर है, कामअनलमें वरिये ॥

१ दोनूवांका यथार्थ स्वरूप ये लोक नहि समजते किंतु विपरीत ही
 समजते हैं, तिनका संग करनेसें सत्य फल मिलना दुर्घट है.

संतो० ॥ ६ ॥ संमझ सीपकों रजतं मृषा हीं,
 पकर असी क्युं लरिये । तजिये जव जग रजत
 मृषाकों, तव हीं सुख विस्तरिये ॥ संतो० ॥ ७ ॥
 ज्ञानामृत पूरण सुख चाहो, वेद वचन अनुस-
 रिये । श्रुति सुख सत्य कहे तो कों हीं, हमहुंभी
 उच्चरिये ॥ संतो० ॥ ८ ॥

पद ९२ (राग रासडा.)

सतसंग जगतमें सार है रे, निजरूप बना-
 वन हार है रे ॥ सत० ॥ टेक ॥ निजगुणकों दे
 संगीमांहीं, अर्थ संगका दूसर नांहीं । गुणा-
 सत्ति संगतकर अर्थ विचार है रे ॥ सत० ॥ १ ॥
 शुद्ध सत्त्वका कार्य हिं मनवा, परम स्वच्छ दर्प-
 णसम जनवा । शाखदृष्टिकर देखत नहिं संसा-
 रहै रे ॥ सत० ॥ २ ॥ दर्पणसंगी रूप करे जो,
 नील पीत या रक्त गृहे सो । यों मन जाको
 संगी तद्रुण धार है रे ॥ सत० ॥ ३ ॥ यह वि-

चार जब टूट हो जावे, नहिं कुसंगमें कवहुं
 आवे । तज रजतम सतगुनमें मन लागा रहै
 रे ॥ सत० ॥ ४ ॥ सज्जन-संग सदा कर प्यारा,
 लहे जन्मफल सो श्रुति सारा । नहि तो जन्म
 निरर्थक हीं जाता रहै रे ॥ सत० ॥ ५ ॥ इस
 विचारकों टूट जो राखे, कर सतसंग ब्रह्मरस
 चाखे । जो सुख अक्षय पूरण पारावार है रे ॥
 सत० ॥ ६ ॥ संतसंग सब किल्बिष नाशे, दे
 हरिभक्ति विज्ञान विकाशे । विष भी सहज सु-
 धारस होबनहार है रे ॥ सत० ॥ ७ ॥

पद १३ (राग मंगल ताल ३)

नारायणमय जान चराचर, भूतान्तर भग-
 वान रे । कर्ता कार्य स्वयमेव भयो प्रभु, साया-
 शक्ति प्रधान रे ॥ ना० ॥ टेक ॥ उपादान उप-
 करण प्रयोजन, बिन योगींद्र समान रे । ऊर्ण-
 नाभि मुख लार प्रसार, विहार ग्रसन अवसान रे ॥

ना० ॥ १ ॥ ज्ञाता ज्ञान भयो स्वपनावी, वि-
 विध विषय विलपान रे । अगुण सगुण स्वयमेव
 विराजे, रंच न अंतर आन रे ॥ ना० ॥ २ ॥
 अगुण सुवर्ण सगुण भूषणगण, खंड खिलौने
 खान रे । गोपरूप धरकर धरणीभर-हरण शरण
 सुखदान रे ॥ ना० ॥ ३ ॥ अतिअद्भुत कृत कर
 दरशावै, सर्वात्मकता सान रे । वत्साहरण द्रुहिण
 जव कीनो, गो गोपादि भवान रे ॥ ना० ॥ ४ ॥
 परमप्रेष्ट परप्रेम निधाना, सार धार मतिमान रे ।
 धनुर्यागमहिं जव पग धारे, पृथकरूप दर्शानरे ॥
 ना० ॥ ५ ॥ शतसहस्रगोपी मंडलगत प्रति तनु
 रास रमान रे । नारदकों प्रतिसदन जनार्दन,
 दे दर्शन भ्रम भान रे ॥ ना० ॥ ६ ॥ युगलरूप
 श्रुतदेव नृपालय, युगपत यो गतवानरे । दुर्यो-
 धन नृपकों निजसेना, कृष्णाकार दिखान रे ॥
 ना० ॥ ७ ॥ ऐसैं जहिँ तहिँ सर्वात्मकता । दर्शा-

वहिं नहि जान रे। हरि सद्गुरु करुणाकर भाजन,
 साजन ईश पिछान रे ॥ ना० ॥ ८ ॥ ज्ञान नयन
 हरिकों निज आतम, जान हान अज्ञान रे। व्यष्टि-
 समष्टिक भेद विभेदी, पावे पद निर्वान रे ॥
 ना० ॥ ९ ॥ माधव सिंधु तरंग सकल जग,
 तजलान श्रुतिगान रे। ज्ञानानंद यशोदानंदन,
 वेदन विंदुप्रमान रे ॥ ना० ॥ १० ॥

॥ दोहा ॥

सर्व गोप्यते गोप्यतम, ज्ञान परम गंभीर ।
 शब्दवादि समुझे नहीं, समुझे सान सुधीर ॥१॥
 श्रोता को संसारमें, वक्ता विरला कोई ।
 दुर्गम सत्पथ कहत कवि, प्राकृत प्राप्य न सोई ॥२॥
 यो श्रवणाय न लभ्य बहु, सुनत बहुत नहि जान ।
 वक्ता लब्धाऽऽश्चर्यमय, ज्ञाताऽऽश्चर्य वखान ॥ ३ ॥
 पश्यति को आश्चर्यवत्, वक्ताऽऽश्चर्य तथैव ।
 श्रोता यूं आश्चर्यवत्, सुनि को जानत नैव ॥ ४ ॥

मनुष्य हजारन मध्यको, ठहै यतमान हिताय ।
 यत्नशील बहु सिद्धमें, जानत मोड़ न प्राय ॥५॥
 ऊर्ध्वबाहु विरोमि मम, सुनत न कश्चित् वेन ।
 निःसंकल्प निर्वाण पद, धियमें कोपि धरे न ॥ ६ ॥
 पुरुष हजार हजारमें, कश्चित् उत्थित वीर ।
 पंजर केसरि सिंह इव, करत वासना कीर ॥ ७ ॥
 यद्यपि दुर्गमदेश यह, कश्चित् गति कुशलात् ।
 श्रुति अनुशासन गामि परि, शनैः शनैः साक्षात् ॥८॥
 साम सनातन नेत यह, विनु साधन नहि बोध ।
 साधन अष्टकवंतकूं, ब्रह्मबोध अविरोध ॥ ९ ॥
 प्रथम विवैक विराग पुनि, शमादि पदसंपत्ति ।
 कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ए चव साधन सत्ति ॥१०॥
 ये चवसाधन बोधके, श्रवणादिक त्रय मेल ।
 तत्पद त्वंपद अर्थको, शोधन अष्टम भेल ॥११॥
 अंतरंग ए अष्ट हैं, यज्ञादिक बहिरंग ।
 अंतरंग धारे तजे, बहिरंगनको संग ॥ १२ ॥

पद ९४ (राग लावणी)

परब्रह्म पद अतिकठिन साधन कठिन वक्ता
 अलभ है । विविदिषु अलभ को आशके मगमें
 न आना सुलभ है ॥ पर० ॥ टेक ॥ बहु वेदकों
 पढ भी न आते वेद मगमें सिद्ध है । वह आत है
 दुर्लभ पुरुष जो पापसें नहिं विद्ध है ॥ पर० ॥ १ ॥
 निजधर्म पुनि हरिनामसें नहिं पाप रहता है
 सही । अनुभूत सब विद्वान्के इतिहास आग-
 मनें कही ॥ पर० ॥ २ ॥ हरिनाम हर्ता पाप
 सबका साङ्ग हीं जब होत है । जिम प्रौढ-दिन-
 मणि-तेज सगरे, अंधकारहिं खोत है ॥ पर० ॥ ३ ॥
 पुनि आत साधन ज्ञानके, हरिभक्तिसें पूरे सजे ।
 पुनि होत निजविज्ञान जासों भ्रम अविद्यां दुख
 भगे ॥ पर० ॥ ४ ॥ जहिं इष्ट इच्छा तहिं हि-
 तांके, हेतुकी अधिकारिता । श्रवणादिमें ताकी
 विवेकादिक चतुरमें धारता ॥ पर० ॥ ५ ॥ हे

सकल साधन हेतु प्रथम, विवेक साधन चारमें ।
 पुनि हैं विराग मुमुक्षुता, संपत्ति पदक विचारमें
 पर० ॥ ६ ॥ सुख ताप नित्य अनित्य चिज्जडका
 प्रसिद्ध विभाग जो ॥ या समुझकों हिं विवेक
 कहते मिलत है बड़ भागकों ॥ पर० ॥ ७ ॥
 जड दुःख नश्वर-विषयकी नहिं, चाह नाम
 विराग है । यह मिलत है तांको हिं जांके, धर्म
 तेज विराज है ॥ पर० ॥ ८ ॥ शम दम ति-
 तिक्षा सत्य-श्रद्धा, समाधान विरामजी । संपत्ति
 पदकी मिलत यह जिहिं, चित्तमें धनश्यामजी
 ॥ पर० ॥ ९ ॥ मन शमन शम दम कहत हैं,
 सब कर्णके हिं निरोधकों । सब इंद्रका सहना
 तितिक्षा, रखत तर्प विरोधकों ॥ पर० ॥ १० ॥
 गुरुवेदवच-विश्वासकों, श्रद्धा कहैं श्रुति पारके ।
 है समाधानहुं चित्तकी, एकाग्रता मन मारके ॥
 पर० ॥ ११ ॥ उपराम विषय मिलाप होते, भी

न इच्छा भोगकी । दृढ मोक्ष इच्छानीव है,
 श्रवणादिमें दृढ योगकी ॥ पर० ॥ १२ ॥ ये
 चार साधन धार सद्गुरु-चरणकी धूली बनि ।
 सो ज्ञान पावे ब्रह्मको, निगमांतगीर्गुरुमुख
 सुनि ॥ पर० ॥ १३ ॥

॥ पद ९५ ॥

गुरुमुख श्रवण कर महावाक्य पावे ज्ञान
 भ्रम तमकों हरे । अथवा श्रवण पदलिंग संयुत,
 दोष नाशक आचरे ॥ गुरु ॥ टेक ॥ पदवृत्तिसँ
 वेदांतका सुख तात्पर्य निहारना । है मुख्य
 साधन श्रवण यह विज्ञानका भव तारना ॥ गुरु०
 ॥ १ ॥ अपरोक्ष ज्ञान हुं जने निजका, शब्द भी
 जगसिद्ध है । जिम दशम तुम इम तुम कहे ।
 कलु छिपा नांहि प्रसिद्ध है ॥ गुरु० ॥ २ ॥ सं-
 शय पुनि विपरीत वासनकी निवृत्ति हिं द्वार-
 कर । है मनन निदिध्यासन श्रवणसहकारितामें

निपुणतर ॥ गुरु० ॥ ३ ॥ है श्रवणसें जो सिद्ध
 ताकी युक्तिसें अवधारणा । कहते मनन हैं
 तां हिं जिसने द्वैतकों संहारणा ॥ गुरु० ॥ ४ ॥
 जो मननसें है सिद्ध तिसहीं मांहिं वृत्ति
 प्रवाहकों । कहते निदिध्यासन न तिसमें
 पांत हैं सुख थाहकों ॥ गुरु० ॥ ५ ॥ यह
 सात साधन ज्ञानके हैं, अंतरङ्गहिं सुख
 करें । तिनमें विवेकादिक चतुर, अधिकारि
 ताकों हीं भरें ॥ गुरु० ॥ ६ ॥ है महावाक्य
 विचार साधन, आठवां सो आरहा । इस श्रव-
 णके भीतर हिं लखके, पृथक् हमनें नहिं कहा ।
 गुरु० ॥ ७ ॥ निज ज्ञानका जो विषय सो ही,
 श्रवण आदिकका सही । इम श्रवण आदिक

१ विवेकादि चार औ श्रवणादि तीन मिलके सात साधन हुवे औ आठवां
 महावाक्य विचार ये आठ ब्रह्मज्ञानके अंतरंग साधन हैं, औ यथादिकों
 बहिरंग कहते हैं । तामे विवेकादि चार साधनसप्त अधिकारी ब्रह्मा जावे है
 १८ प० भा० ३०

अंतरङ्गहिं गुप्त नहि श्रुति बुध कही ॥ गुरु० ॥
 ॥ ८ ॥ पर सप्त यह नहिं होत पूरण-कृष्णकी
 सुख भक्ति विन । इम मुख्य साधन भक्ति हीं
 जो, चाहत नहिं परकां यतन ॥ गुरु० ॥ ९ ॥
 प्रणिधान सूत्र विचारमें, बुध पूज्य वाचस्पति
 कहा । युग योगका इक मुख्य साधन, ईश-प्र-
 णिधान हि रहा ॥ गुरु० ॥ १० ॥ युगयोगके सम
 विषय संयमका प्रकट इस हेतुसैं । हैं अंतरङ्ग
 प्रतापनिधि दुखकों हने सुखकेतुसैं ॥ गुरु० ॥
 ॥ ११ ॥ प्रणिधान विन नहिं होत पूरा, आत
 विघ्न अनेक हीं । प्रणिधानकी सहकारितासैं,

१ “शब्दशक्तिविषयं निरूपणं, युक्तिः श्रवणमुच्यते बुधैः ।

वेस्तुयुक्तविषयं निरूपणं, युक्तितो मननमित्युदीर्यते ॥ १ ॥

चेतसस्तु चित्तिमात्रशेषता, ध्यानमित्यभिबदन्ति वैदिकाः ।

अंतरंगमिदमित्यनीरितं, तात्पर्यं परमात्मबुद्धये” ॥ २ ॥

ऐसें श्रेयोमार्गमें श्रीगर्वशात्ममुनिने भी कहा है.

२ “ईश्वरप्रणिधानाद्वा” इस सूत्रके व्याख्यानमें.

३ हठयोग तथा राजयोगका.

रहे याकी टेक हीं ॥ गुरु० ॥ १२ ॥ है मुख्य
 साधन वही जो नहीं, अवरकों कवहुं चहे ।
 फल दानमें होवै स्वतंत्र न, कवहुं निष्फल हो
 वहे ॥ गुरु० ॥ १३ ॥ प्रणिधान कहते हैं इसे, ह-
 रिभक्तिसैं अभिमुख करे । हरिभक्ति सारे विघ्न
 जारे, योगयुग फूले फरे ॥ गुरु० ॥ १४ ॥ शु-
 भकर्म निज विज्ञानमें, संबंधके सूचन लिये ।
 त्रयकाण्ड गीतामध्य राखी, भक्ति भगवत्सुख
 दिये ॥ गुरु० ॥ १५ ॥ पुनि द्विविधकाण्डहुमें
 कही निज, भक्ति हितसंसारके । इस विन न जै
 हैं विघ्न कवहुं, सुख न हो मनधारके ॥ गुरु० ॥
 ॥ १६ ॥ हरि-भक्ति विन निजज्ञानअमृत-रूप
 नहि मिलता कभी । सो मिलत है सत्संगसैं
 निजधर्मसैं सत्संगभी ॥ गुरु० ॥ १७ ॥

॥ श्लोकः ॥

शवाकारं यावद्भजति मनुजस्तावदशुचिः ।

परेभ्यः स्यात्क्लेशो जननमरणव्याधिनिलयः ।
 यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकार ममलं ।
 तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि ॥१॥
 आत्मा ज्ञानमयः पुण्यो देहो मांसमयोऽशुचिः ।
 तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥ २ ॥

पद ९६ (राग लावणी.)

शिवरूप आतम देव सेवत, शुद्धता पावे
 मति । शिवरूप तन-अभिमान कर, नहिं शु-
 द्धता पावे रति ॥ शिव० ॥ टेक ॥ मलमूत्रको
 भंडार सो में, मानते नहि लाजते । हो भंगी-
 योंका वाप आपें, शुद्ध हम इस गाजते ॥
 शिव० ॥ १ ॥ पथि पतित शूका हाड लख, मग
 छोड दूर पलायते । निजदेह पंजर हाडको लख,
 नां जुगुप्सा जायते ॥ शिव० ॥ २ ॥

क्या धोत मलमल चर्मकों, रहज्यगा यह चर्महीं।
 नहि शुद्धिकी है खबर अंधे-भए करते कर्महीं

॥ शिव० ॥ ३ ॥ है अस्मिता हिँ अशुद्धि जव-
 लग, यह नहीं मिटजांत है । तबलग न होवे
 शुद्ध लखले, वेद भी इम गात है ॥ शिव० ॥ ४ ॥
 हो अस्मितासैं कर्म त्रयविध, कर्म हीं मल है
 सही । होते कर्मके हो न कवहूं, शुद्ध बुध साची
 कही ॥ शिव० ॥ ५ ॥ यदि कर्म कीन परंपरासैं,
 करत हैं धी-शुद्धिकों । तौभी विदित है जव
 तलक यह, करत रहत अशुद्धिकों ॥ शिव० ॥ ६ ॥
 होवे न कोई कर्म त्रिपुटी-भान विन ध्रुव दे-
 खले । है भेद दृष्टि अशुद्धि दुख भी, बुध ज-
 नोंसैं पेखले ॥ शिव० ॥ ७ ॥ इस निर्विकल्प
 समाधिमें भी, चित्तसुत्ता रहत है । जहि चित्त
 है तहि है अशुद्धि हि, चित्तसैं मल बहत है ॥
 शिव० ॥ ८ ॥ जवलग न होवे बुद्धिपर, तबलग
 न शुद्धि दिपे कभी । जव आपडेगा सन्तदरमें,
 समझ आवेगी तभी ॥ शिव० ॥ ९ ॥ अंब छांड

झगडा कर्मका, तज संग प्राकृतका सदा । क्युं
 वेसमझ दुखमें धसा, तुम मोद सच्चित्सर्वदा
 ॥ शिव० ॥ १० ॥ रचती कर्मकों अस्मिता,
 याकों अविद्या हीं रचे । जौं लौं अविद्या जात
 नहि, तौ लौं दुखी दुखमें पचे ॥ शिव० ॥ ११ ॥
 सो ज्ञान विन नहिं जात कबहूं, पूछले श्रुति
 बुध सकल । सो मिलत नहि विन संतसेवन,
 मानले मनमें अचल ॥ शिव० ॥ १२ ॥ पी ज्ञा-
 नअमृत संत सेवी, संत साचे हैं वही । जिनके
 अविद्या यह न वह, मैं तूं न दिखनें को रही
 शिव० ॥ १३ ॥

॥ श्लोकः ॥

अत्यंतमलिनो देहो देही चात्यंतनिर्मलः ।
 असंगोऽहमिति ज्ञानं शौचमाहुर्मनीषिणः ॥ १ ॥
 ॥ ५८ ९७ (राग विहाग)
 अशुचिमें शुचितामति कर लई ॥ टेक ॥

जनक विंधारक मलहीं, मलहीमें है
 मशुचि० ॥ १ ॥ संगज मल क्या मलहीं
 क्वहुं शुद्ध न भई ॥ अ० ॥ २ ॥ गङ्गा
 ममुना न्हाती, सब तीर्थनमें गई ॥ अ०
 बहु प्रतिमाका स्पर्शहुँ कीना, बहुत
 तई ॥ अ० ॥ ४ ॥ गङ्गाजल बहु पान
 बहुत प्रदक्षिण दई ॥ अ० ॥ ५ ॥ यज्ञ
 बहुत खुलाए, रही वही चमडई ॥ अ० ॥
 याकों क्या मलमल धोता है, कवन
 छई ॥ अ० ॥ ७ ॥ क्युं बहु आग्रह
 समें, बुद्धि अविद्या हुई ॥ अ० ॥ ८ ॥
 सब मनके शोधक, समझ न कर क-
 ॥ अ० ॥ ९ ॥ चित्तशुद्धिका चिन्ह यही
 न वासना खई ॥ अ० ॥ १० ॥ मलहीं है
 वासना, कहते वेद न नई ॥ अ० ॥ ११ ॥

ज्ञानामृत भज तज अभिमति सब, पड सन्तन
शरणई ॥ अ० ॥ १२ ॥

पद ९८ (राग लावणी)

ध्रुव है अविद्या चतुरपर्वी, देहमें निजकी
मती । अस्थायिमें नित्यत्वमति, अपवित्रमें शु-
चिताऽसती ॥ ध्रुव० ॥ टेक ॥ दुखमें रहे सुख-
बुद्धि यह सब, वपु अविद्या जानियें । यह अ-
स्मितादिक चारका है मूल, दृढ पहचानियें ॥
ध्रुव० ॥ १ ॥ अविवेकमें ही रहत हैं, अविवेक
यांका हेतु है । दृढ जान ले शठमें यही दृढ,
शठपनेंका केतु है ॥ ध्रुव० ॥ २ ॥ शठ देहकों
निजरूप लख, तनु कर्मका अभिमानि हो । में
तूं अविद्याकों भरे, ममता करे अतिमानि हो
॥ ध्रुव० ॥ ३ ॥ हम सोमका कर पान पावेंगे

१ इसी प्रपंचे (८२) में पदमें पंचक्रेय दिखाय गये हैं जिनमें प्रथम अवि-
द्या सा चार प्रकारकी है —

१ अनात्ममें आत्मबुद्धि । २ अशुचिमें शुचिभावति । ३ अनित्यमें
नित्यत्वमति । ४ दुःखमें सुखबुद्धि ॥ इति ॥

अमरपदकों सही । यह नित्य बुद्धि अनित्यमें
 अविवेकसें हीं हो रही ॥ ध्रुव० ॥ ४ ॥ इस
 देहका है बीज वीर्यसु, ठौर गर्भाशय बना । हैं
 स्थंभ याके अस्थिआदिक, सहज यह इनसें तना
 ॥ ध्रुव० ॥ ५ ॥ झरनें सदा मलको हिं झारे,
 मरेकों नं स्पर्शते । यदि देह शुचि शुद्धिता लिये,
 किम उदक आदिक पर्शते ॥ ध्रुव० ॥ ६ ॥ इस
 है शरीर अशुचि सदा, अविवेकसें नहि जानते ।
 याकों पवित्र करा चहें शठ, कठिन आग्रह ठा-
 नते ॥ ध्रुव० ॥ ७ ॥ आग्रह करें अपनी अविद्या,
 सिद्ध विज्ञानमें करें । इनकी कुसंगत त्यागदे,
 यह इक अविद्याकों भरे ॥ ध्रुव० ॥ ८ ॥ मत
 करे इनमें इष्टमति, यह इक अनिष्ट हिं देत हैं ।
 करके सदा हीं दीनताकों स्वामिता हर लेत हैं
 ॥ ध्रुव० ॥ ९ ॥ सब विषयसुख है रजोगुण
 हीं, रज हिं दुखका रूप है । हैं तापका हिं रूप

यह सब हेतुका हिं स्वरूप है ॥ ध्रुव० ॥ १० ॥ भज
ज्ञानअमृत तज अविद्या, राख श्रद्धा वचनपर ।
तिसकों निजात्मस्वरूप लखते, उमा रवि हरि
गणप हर ॥ ध्रुव० ॥ ११ ॥

॥ श्लोकः ॥

रे जीव जाग्रहि गृहीत इवासि नूनं,
कालेन ते शिशुयुवत्वदशाः क संति ।
श्वः किं करिष्यसि, मरिष्यसि चेदकस्मा-
च्छीर्णं शरीरमरिभिः परिभूतमेतत् ॥ १ ॥
आशायां वध्यते लोकः कर्मणा परिवध्यते ।
आयुःक्षीणं न जानाति तस्माज्जाग्रहि जाग्रहि ॥ २ ॥
माता नास्ति पिता नास्ति नास्ति चंधुसहोदरम् ।
अर्थो नास्ति गृहं नास्ति तस्माज्जाग्रहि जाग्रहि ॥ ३ ॥

१ अविद्याका. २ यदि तू अकस्मात्कल ही मरजायंगा तो क्या करेगा
और यह शरीर बैरियोंकेदबावसे क्षीर्ण होता जाता है.

कामक्रोधौ लोभमोहौ देहे तिष्ठन्ति तस्कराः ।
 हरन्ति ज्ञानरत्नानि तस्माज्जाग्रहि जाग्रहि ॥ ४ ॥
 जन्मदुःखं जरादुःखं जायादुःखं पुनः पुनः ।
 अंतकाले महदुःखं तस्माज्जाग्रहि जाग्रहि ॥ ५ ॥
 ऐश्वर्यं स्वप्नसंकाशं यौवनं कुसुमोपमम् ।
 क्षणचंचलमायुष्यं तस्माज्जाग्रहि जाग्रहि ॥ ६ ॥
 निद्रा हि मूढता जंतोर्ज्ञानं जागरणं परम् ।
 मोहनिद्राविनाशाय हरिसद्गुरुमाश्रय ॥ ७ ॥
 अनात्मदृष्टिरविवेकनिद्रामहंममस्वप्नगतिं
 गतोहम् । स्वरूपसूर्येऽभ्युदिते स्फुटोक्तैर्गुरो-
 र्महावाक्यपदैः प्रबुद्धः ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

जाग जाग जन जाग तूं, त्याग सुपन संसार ।
 मिथ्यामायाऽऽवेश तन, नशत न लागे वार ॥ १ ॥
 मोह नींदगत चकत नर, मरना होन हमार ।
 नींद निवारी सद्गुरु अजर, अमर अविकार ॥ २ ॥

जाग जाग जन जाग तूं, तव न सुपनसैं संग ।
 शुद्ध सनातनरूपमें, चढे न दूजो रंग ॥ ३ ॥
 जाग जाग जन जाग तूं, तूं देवनको देव ।
 देव चतुर्दश देहमें, सदां करें तव सेव ॥ ४ ॥
 जाग्यो सो जन जानियें, जाकों ब्रह्म विवेक ।
 स्थावर जंगम लोकमें, वस्तु विलोकत एक ॥ ५ ॥
 जाग्यो सो जन जानियें, रहनीं सदा सुछंद ।
 प्रीत नहीं पाखंडमें, एक अखंडानन्द ॥ ६ ॥
 हरहुंको जलनांतजो, चलमां चिद्धनध्यान ।
 यह हीं काशी वासफल, मूल तमाकुं तान ॥ ७ ॥

॥ श्लोकः ॥

वासना भवति चेत्फलदात्री, किं करिष्यति
 पुरी मम काशी । व्यापको भवति चेत्परमात्मा,
 तारकं किमिह नोपदिशेन्नः ॥ १ ॥

पद. ९९ (राग प्रभाति)

जाग जाग जन मोह, नींदसैं, सद्गुरु देव

जंगवे । निगम नगारे गुरुघर बाजें, तदपि
 प्रबोध न पावे ॥ जाग० ॥ टेक० ॥ आग लगी
 जा घरमें सोया, सकल साज जलजावे । जा घ-
 रमें तब रत्न-खजाना, सो घर जलता जावे ॥
 जा० ॥ १ ॥ बाल्युवा वय सोवत खोयो, वृद्धा
 धावत आवे । जो जो मेरा मान लिया तें, काल
 अनल नित खावे ॥ जा० ॥ २ ॥ कामादिक तस्कर
 घर लूटे, ज्ञानादिक रतनावे । स्वप्नमांहि ऐश्वर्य
 जमायो, क्षणमें सकल विलावे ॥ जा० ॥ ३ ॥
 आशा तृष्णा मुख डाकिन बहु, हर सुख दुःख
 जनावे । ज्ञानामृत वर्षे गुरु जलधर, तब सब
 आग शमावे ॥ जाग० ॥ ४ ॥

पद १०० (राग प्रभाति)

दिखे नहीं क्या निपुण देख ले, आग लागी
 जाग रे । चेतन विन जो दीखत सुनियें, त्याग रे
 नर त्याग रे ॥ दिखे न० ॥ टेक ॥ चहे जडनको

लाज न आवे, भया हंससैं काग रे । मोहनींदमें
 डसत न दीसे, आशा तृष्णा नाग रे ॥ दिखे० ॥
 ॥ १ ॥ बहुदिन बीते मोह निशामें, जांग रोक
 मन बागरे । किम हो अंधे धावत हो तुम,
 जग मृग-जलंकी झांगरे ॥ दिखे० ॥ २ ॥ हरि
 हरादि हम तुम सब एक हिँ, माया करत
 विभाग रे । तव आश्रित जग सत् हो बैठा,
 तूं मिथ्यासा लाग रे ॥ दिखे० ॥ ३ ॥ तेरी
 माया तोहि नचाया, झूठी लागी आग रे ।
 अबहुँ समुझले मान वचन सत, परिहर
 यामें राग रे ॥ दिखे० ॥ ४ ॥ मरे मिले सुख
 देख समुझले, नहिँ कलु मूली साग रे । यदि
 सुख चाहे ब्रह्म लोक लौं, त्वरित मोहसैं
 भाग रे ॥ दिखे० ॥ ५ ॥ नानामत मायाकी
 छाया, झूठे काचे ताग रे । तुम अतिरथि इनसैं
 किम बांधे, है यह अचरज दाग रे ॥ दिखे०

॥ ६ ॥ अव तो काट संतसंगतिवल, आ घर
सहज सुहाग रे । छांड दीनता तुमसवके प्रभु,
ज्ञानामृत घर फाग रे ॥ दिखे० ॥ ७ ॥

॥ पद १०१॥

अपनो आप भुलाय वक्त नर जाको बार
न पार पयो । विन विचार हंकार मंकारा, हर-
माया बल नीतनयो ॥ अपनो० ॥ टेक ॥ कवहुं
कहते हम हैं आचार्य, दिगंबर हैं हम हैं योगी ।
हो अवधूत न वोलो कवहुं, क्या तुममें उन्माद
बह्यो ॥ अप० ॥ १ ॥ कवहुं कहते हम भक्त
बड़े अव, रही कवन कमती हमको । तिलक
मालके झगडेमें पुनि, कवहुं भयंकर युद्ध अयो
॥ अ० ॥ २ ॥ निर्लज हो बहु करो बनावट,
तृष्णा शोक सदा साथी । तुम परेश आधार
सकलके, दुर्मतिनें दुख बीज बयो ॥ ३ ॥ तौकों

१ ममता. २ “जरठापि क्वचिदसती संदर्श्य गुणान्तरस्य पुरषस्य ।
संगं विनैव हसितैः सर्वस्य हरति हंत किं ब्रूमः” ॥ १ ॥

कीन दीन इन हीनें, रचंकर मिथ्या जग सगरो ।
 याके पाछे लगके तुमनें, व्यर्थहिं अपना आप
 तयो ॥ अ० ॥ ४ ॥ यदि नहिं वनो अवर कलु
 भी तुम, पुना तोहि विन ईश कवन ।
 तुमकों जीव किया मतिनें हीं, बहु अभिमान
 न कीन चयो ॥ अ० ॥ ५ ॥ नीचसंगसें किन
 सुख पायो, मतिसम अवर न नीच अहै ।
 अब तो याको संग छोड दे, रोकै सकल यांको
 हि रयो ॥ अ० ॥ ६ ॥ तोकों वेद सकल समु-
 झावें, संत सहज उपदेश करें । तोकों लाज
 न आवे अब तो, ले इक गिरिधरका हिमयो
 ॥ अ० ॥ ७ ॥ ज्ञानामृत विन वनें न कलु भी,
 तवहिं ईश हम साचे हैं । हममें हीं यह माया
 जगकों, रचे होत हममें हिं लयो ॥ अ० ॥ ८ ॥

॥ पद १०२ ॥

निगम नगारे गुरुघर वाजें, क्या तुम वधिर
 रहाते हो । अब तो सत्य गृहो मिथ्यामें, काहे
 नर तुम राते हो ॥ निगम० ॥ टेक ॥ अंधे हीं
 हो साच झूठकों, उलटे हीं बतलाते हो । गया
 काल बहु रहा तनकसा, अबहूँ नहिं शरमाते
 हो ॥ नि० ॥ १ ॥ लखो तनिक निजदशा
 संभारो, क्युं दुखहीं दुख पाते हो । तुमहिं
 कालके काल भये क्या, इत उत बहुत डराते
 हो ॥ नि० ॥ २ ॥ लोक लोकगुरुमें श्रद्धासें,
 झूठकों सचियाते हो । इनका संग न तजो
 भला क्युं, इतना कठिन हठाते हो ॥ नि० ॥ ३ ॥
 बहुते सुधरे लोक विगारे, जिहिं जग-गुरुहिं
 बताते हो । इनसें डरियो इनसें हीं तुम,
 स्वापरकों हूँ सताते हो ॥ नि० ॥ ४ ॥ इनके
 वशमें आके हीं तुम, वेदविरुद्ध हिं गाते हो ।

संतवचनकों सुनते नहिँ कलु, तिरछी आंख
 दिखाते हो ॥ नि० ॥ ५ ॥ इनसेँ प्यार करनेसेँ
 हीं तुम, बहुते पाप कमाते हो । अविचारीकी
 संगतिसेँ तुम, छले दिवस निश जाते हो ॥
 नि० ॥ ६ ॥ रहे सकलकी सत्ता तुमहीँ, अब
 क्या दशा बनाते हो । जीव बनाए इननेँ हीं
 अब, हाथ जोर धवराते हो ॥ नि० ॥ ७ ॥ मुक्ति
 होयगी मरके पाछे, ऐसे वचन सुनाते हो । मृपा
 पालका यश गाते हो, शठता हीं दर्शाते हो ॥
 नि० ॥ ८ ॥ इनके बल अब भूल आपको, दै-
 शिककों हुँ भुलाते हो । जिनकों दैशिक वेद
 पुकारे, तिनकों लख मुझाते हो ॥ नि० ॥ ९ ॥
 इनकी संगति बहुत विगारा, सुनो न मन सम-
 झाते हो । ज्ञानामृत तज विष हिँ भएहो,
 संतन नाहिँ सुहाते हो ॥ नि० ॥ १० ॥

॥ पद १०३ ॥

मनोरचित संसारधर्म भ्रम-कर निजमांहि
 मिलाते हो । समुझ नहीं अपने घरकी परकों
 निजशिष्य बनाते हो ॥ मनो० ॥ टेक ॥ इमहीं
 तो तुम सन्तचेदकों, नहीं तनिक भी भाते हो ।
 कछु तो समुझो नरतनु है क्युं, परवातोंमें आते
 हो ॥ मनो० ॥ १ ॥ मन हिं रचे जग फसे आ-
 पहीं, दुख पावे तव नाम नहीं । तुम क्युं अपना
 मान सहजहीं, शोकमांहिँ आजाते हो ॥
 मनो० ॥ २ ॥ यांको हो जब शोक साथहीं, तुम
 भी शोकी बन बैठो । हर्ष होतहै यांको तवहीं,
 तुम भी ध्रुव हर्षाते हो ॥ मनो० ॥ ३ ॥ जब
 यह करहीं याद किसीकों, तव हीं तुम भी
 याद करो । किसी हेतुसँ भूले मनवा, तुम भी
 तव हिँ भुलाते हो ॥ मनो० ॥ ४ ॥ जब यह
 भोगे भोग करो तुम, योग करे योगी बनते ।

रोगी हो रोगी बन जाते, सुखी बने मुसकाते
 हो ॥ मनो० ॥ ५ ॥ चलो चले जब बैठे बैठो,
 खावे जब तुम खान लगे । कर्म करे कर्मी
 बन बैठो, ध्यान करे तुम ध्याते हो ॥ मनो०
 ॥ ६ ॥ बद्ध रहे निज बन्धन मानो, मुक्त बनोहो
 मुक्त बने । ज्ञानवान बनते तुम ज्ञानी, भ्रमे
 निजहिँ भरमाते हो ॥ मनो० ॥ ७ ॥

॥ पद १०४ ॥

निज निष्कल निष्क्रिय निःसंगी, संगी ताहिँ
 बनाते हो । गुरुविन ज्ञान नहीं वैदिक गुरु-शरण
 जात शरमाते हो ॥ निज० ॥ टेक ॥ शयन करे
 मन शयन करो हो, जागे जब तुम भी जागो ।
 करत बात बातें करते हो, चुप हो तुमहुँ चुपाते
 हो ॥ निज० ॥ १ ॥ ब्राह्मण बने बनो ब्राह्मण
 हीँ, क्षत्रिय हो क्षत्रिय बनते । वैश्य बने वैश्य
 हिँ बनवैठो, शूद्र बने शूद्राते हो ॥ निज० ॥

॥ २ ॥ ब्रह्मचारि होते बटु तुम भी, बनो गृही
 मन गृही बने । बनी बने बनवासी बनते, यति
 हो यति कहलाते हो ॥ निज० ॥ ३ ॥ नारी
 बने बनो अवला तुम, बने पुरुष पुरुषहिँ
 मानो । बने नपुंसक तुमहुँ नपुंसक, क्या निज-
 रूप छुपाते हो ॥ निज० ॥ ४ ॥ तुम सच्चित्सुख सदा
 एकरस, निर्गुण अक्रिय संगविना । द्वैतरहित
 अद्वैत सहजहीं, क्युं परताप उठाते हो ॥ निज०
 ॥ ५ ॥ करे अवर मानो अपना तत्कारण है अ-
 विवेक सही । सो विवेक विन नशे न सो हरि,
 गुरु विन कब हुँ न पाते हो ॥ निज० ॥ ६ ॥
 हरि अभिमुखता सब साधन फल, करी जि-
 न्होंने अमर भए । तुम भी कर किम सहजे
 हीं नहि, ज्ञानामृत बन जाते हो ॥ नि० ॥ ७ ॥

पद १०५ (राग मंगल ताल ३)

सत्यं ज्ञान मनंतं ब्रह्म हिं, संगसमस्त परो-

ई रे । तासैं भिन्न असज्जड दुख वपु लखो यथा
 मरुतोई रे ॥ सत्यं० ॥ टेक ॥ वेद पुराण सकल
 सज्जनमें, सिद्ध तनिक नहि गोई रे । रज्जुसर्पसम
 सच है तोमें, संग न साचा कोई रे ॥ सत्यं० ॥
 ॥ १ ॥ करे संग क्या सदा असंग हिं, है भी
 मिथ्या सोई रे । शीसछेदसैं स्वप्नमांहिं मति,
 मृषा मृषा हीं रोई रे ॥ सत्यं० ॥ २ ॥ तजो संग
 यहहीं दुखदायक, माया कार्य दोई रे । फिर
 देखो क्या प्रकट होयगी, मृपारहित निजलोई रे
 ॥ सत्यं० ॥ ३ ॥ ममताऽहंता विन नहिं देखे,
 रङ्ग जगतमें कोई रे । तुम विन समझ संग इन-
 केसैं, व्यर्थ खुदाई खोई रे ॥ सत्यं० ॥ ४ ॥
 मायासंग तलक इनका भी, संगहुं सहजे होई
 रे । ज्ञानामृत आच्छादक-माया, यानें विश्व
 विगोई रे ॥ सत्यं० ॥ ५ ॥

॥ श्लोकः ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।
 बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥ १ ॥
 अन्वयव्यतिरेकाभ्यां बंधकृन्मानसं जगत् ।
 सत्यस्मिन्सुखदुःखे स्तस्तस्मिन्नसति न द्वयम् ॥ २ ॥
 स्वप्नेऽर्थशून्ये स्रजति स्वशक्त्या भोक्त्रादिविश्वं
 मन एव सर्वम् । तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषस्त-
 त्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम् ॥ ३ ॥ सुषुप्ति-
 काले मनसि प्रलीने नैवास्ति किञ्चित्सकलप्र-
 सिद्धेः । अतो मनः कल्पित एव पुंसः संसार
 एतस्य न वस्तुतोऽस्ति ॥ ४ ॥ वायुनाऽऽनीयते
 मेघः पुनस्तेनैव नीयते । मनसा कल्प्यते बन्धो
 मोक्षस्तेनैव कल्प्यते ॥ ५ ॥ न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽ-
 तिरिक्ता मनोह्यविद्या भवबन्धहेतुः । तस्मिन्वि-
 नष्टे सकलं विनष्टं, विजृम्भतेऽस्मिन्सकलं विजृं-
 भते ॥ ६ ॥ स्वात्मन्येव सदा स्थित्वा मनो न-

इयति नान्यथा । यथा निरिधनो वह्निः स्वयो-
नावुपशाम्यति । तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोना-
वुपशाम्यति ॥ ७ ॥

॥ दोहा ॥

विनु आत्मदर्शन किये, जीत्यो जाय न चेत ।
बिना चित्तके जय किये, देव न दर्शन देत ॥ १ ॥

मनरिपुके जीते बिना, जीते वैरि अनेक ।
मनरिपु जीत्यो जासनें, तास न वैरी एक ॥ २ ॥

मनरिपु जीता सब रिपु जीते । मनरिपु जीते सब
रिपु जीते ॥ निज मन जीता सबजग मीता ।
मन व्यापारत आप अतीता ॥ ३ ॥

जो मन शीतल आपनो, सब जग शीतल जान ।
जो संतप्त मन आपनो, तो संतप्त जहान ॥ ४ ॥

जब मन शीतलता ग्रहे, तब सुखसागर नात ।
कामकोपवृद्ध मन भयो, दुख सागर दरशात ॥ ५ ॥

जो मन समसंतोष युत, भवति भिक्षु भूपाल ।
 जो मन तृष्णावश भयो, भवति भूष कंगाल ॥ ६ ॥
 शुद्ध न हो मन कोलसा, गंगाजलमें नात ।
 ज्ञान अनलमें परतहीं, सपदि शुद्ध हो जात ॥ ७ ॥
 मनोअयस कंचन भयो, पारस गुरुवच संग ।
 चंचल इयाम कठोरता धर्म त्रिविधकरभंग ॥ ८ ॥
 मन भूषक पंगू भयो, शारद-पारद पाय ।
 रंचक मात्र न चल शके निजपद निष्ठ रहाय ॥ ९ ॥
 मानस सुखदुख मित्र रिपु, मानस तिमिर प्रकाश ।
 मानस भीत अभीतता, बंध मोक्ष प्रतिभास ॥ ११ ॥
 स्वर्ग नरक मनके रचे, साधन साध्य तथैव ।
 मन हि अविद्या मानिये, विद्या अपि मनसैव ॥ ११ ॥
 मानस गुरु ईश्वर तथा, मानस एक अनेक ।
 मानस राग विरागिता, सारासार विवेक ॥ १२ ॥
 मायिक मानसनें रच्यो साचो नहि संसार ।
 सत्य परम सुख एक हरि सोऽहं कर निर्धार ॥ १३ ॥

॥ पद १०६ राग लावणी, छंद हरिगीति ॥

मनका रचा संसार झूठ, विमूढ इसमें क्यों
 फसा । बुध फसे नहि कत हूं कदा विन, स-
 मुझ तूं दुखमें धसा ॥ मनका० ॥ टेक ॥ मन
 सत्त्व पाछे हीं जगत्का, सत्त्व दिखता देखले
 जाग्रत्स्वपनमें मन बना सबजगत्कों भी पेखले
 ॥ मन० ॥ १ ॥ अब लख असत्य न सुतिमें,
 मन जा अविद्यामें मिले । तहिँ विन अविद्या
 क्या दिखे, तुम व्यर्थ हीं दुखमें तले ॥ मन० ॥
 ॥ २ ॥ मनकों अविद्याहीं रचे, मनहीं रचे जग
 श्रुति कहि । माया रचित मन हीं मृषा, मनका
 रचा कव हो सहि ॥ मन० ॥ ३ ॥ अब समुझ
 कलु ले मान हमरी घात साची नां तजे ।
 तुमनें अनादी-कालसें केवल मृषा हीं दुख भजे
 ॥ मन० ॥ ४ ॥ अब तज मृषाकों एक साचा
 तूँ है जग है मृषा । तुझकों विगाडा जाहिनें

लख भृपा हीं यह है तृपा ॥ मन० ॥ ५ ॥
 किसको चहेहै देख तुज विन, अन्य को जग
 साच है । अब क्यों लडेहै व्यर्थ हीं, यह विश्व
 कूकरकाच है ॥ मन० ॥ ६ ॥ जग झूठ है झूठी
 तृपा भी, क्यों घुसा है मूढ जी । निजरूप ज्ञाना-
 नंद लखिये श्रौत वचना रूढ जी ॥ मन० ॥ ७ ॥

॥ श्लोकः ॥

संसारे च महाघोरे सुखं नैव च नैव च ।
 आत्मज्ञानं विना देवि गर्भवासो न मुच्यते ॥ १ ॥
 आत्मानं ब्रह्मरूपेण सर्वदा स्मर सुन्दरि ।
 संसाररोगनाशाय नान्योपायोस्ति कश्चन ॥ २ ॥
 आचक्ष्व शृणु वा तात नानाशास्त्राण्यनेकशः ।
 तथापि तव न स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ॥ ३ ॥
 अनात्मचित्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम् ।
 चिंतयात्मानमानंदरूपं यन्मुक्तिकारणम् ॥ ४ ॥
 न वरमाकुलशास्त्रविचारणं, न च वरं परकार्य-

विवेचनम् । न वरमग्र्यकथाक्रमवर्णनं, स्थि-
तिमुपैति हि यत्र सतां मनः ॥ ५ ॥

॥ पद १०७ ॥

श्रुतिसार आप विसार जगसँ क्युं भुलाया
भाइ जी । है असत जड दुखरूप यामें सुख
न दीखे राइ जी ॥ श्रुति० ॥ टेक ॥ दुखरूप
जग सत सुख लखी, तें दीन पर फशाय जी ।
सुख सत्य आप अखंड अक्षय, एकरूप सदाय
जी ॥ श्रुति० ॥ १ ॥ अव लों लिया क्या समुझ
कहिये, तापमें तपता रहा । मरुवार-मृगकी
रीत भटक्यो, मान अव हमरा कहा ॥ श्रुति०
॥ २ ॥ कर श्रवण मनन विचार गुरुसँ, असल
आप लखाय जी ॥ जब जान लेगा रूप अपना,
आप एक रहाय जी ॥ श्रुति० ॥ ३ ॥ तब आप
हीं मुखसँ कहेगा, साच है जो तुम कही ।
सुखसार-पारावार भूमानंद जामें दुख नहीं ॥

श्रुति० ॥ ४ ॥ शृणु शास्त्र वेद पुराण व्याख्या
 कर सुनावो और हीं । हठयोग सिद्धि कमाय
 ऊडो व्योम वासवठौर हीं ॥ श्रुति० ॥ ५ ॥
 सुरराज इंद्र कुवेर ब्रह्माका मिले अधिकार भी ।
 विन सकलके भूले सुखी नहि, होत भव दुख
 पारभी ॥ श्रुति० ॥ ६ ॥ सो भूलनां विन
 आपके, जाने कदा नहि होत है । जो जानता
 नहि आपको, नरजन्म दुखमें खोत है ॥ श्रुति०
 ॥ ७ ॥ मिथ्या विसारा जग जिन्होंने, ते हि
 निश्चल हैं सुखी । अच ज्ञानअमृत छाड़ मस्ती,
 अवर नर सब हीं दुखी ॥ श्रुति० ॥ ८ ॥

॥ पद १०८ ॥ (राग बिहाग)

शिवंकर गुरुरव, भवभय हरे ॥ टेक ॥ ध्रुव
 कुसंगनें हीं मतिमारी, तेरो मोद चरे ॥ शिवं
 कर० ॥ १ ॥ जीव बना है दीन भया है, मिथ्या

शोक करे ॥ शि० ॥ २ ॥ शोक विषय कर्त्ताकों
 लखले, तुम सब-त्रिपुटि परे ॥ शि० ॥ ३ ॥
 यह माया हीं मिथ्या हीं तव, नानारूप धरे ॥
 शि० ॥ ४ ॥ तव स्वरूप निष्क्रिय निर्गुण नहि,
 मायासें विगरे ॥ शि० ॥ ५ ॥ नहि तुझमें आ-
 भास अविद्याके पहुँचें झगरे ॥ शि० ॥ ६ ॥
 नहि तोमें गुन भयो कदा जिम, रज्जु सर्प उ-
 जरे ॥ शि० ॥ ७ ॥ तुम सच्चित्सुख सदा एक-
 रस, क्युं निजकों वीसरे ॥ शि० ॥ ८ ॥ क्या
 अब यत्न करो चतलादो, क्या यह अचल फरे
 ॥ शि० ॥ ९ ॥ लौग न आवे झूठ बनावे, विगरे
 जो सुधरे ॥ शि० ॥ १० ॥ कर्म शक्ति क्या फले
 तोहिमें, तुम सब संग तरे ॥ शि० ॥ ११ ॥
 सहज स्वभाव आपहिसें सब, मायाजाल टरे ॥

१ क्या यह कर्मितवस्तु मलयल देमछा है, वा आप अवलम्ब
 हो सच्चा है. २ अव्यक्तपदार्थका अधिष्ठानसे वास्तवगर्भ तो है नहि.

शि० ॥ १२ ॥ बंध्यासुत शशशृंग धनुष खे, पुष्प-
माल पहरे ॥ शि० ॥ १३ ॥ घेर नगर गंधर्व
सेरसें, खप्पे मांहिं लरे ॥ शि० ॥ १४ ॥ तिम
मायाजग जीतनके हित, मृषा तुमहुं विचरे ॥
शि० ॥ १५ ॥ मिथ्या कर आरंभ सकल हीं,
मृषा सदा हीं जरे ॥ शि० ॥ १६ ॥ ज्ञानामृत अजात
संगत विन, सब पच पच हिँ मरे ॥ शि० ॥
॥ १७ ॥ यह भी कथन सुपन हैं को बुध, झूठी
साख भरे ॥ शि० ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

स्वप्नसमर्चित ईशते स्वप्निक फलकी सिद्धि ।
साधक साधन साध्य सब स्वप्न सर्वथा विद्धि ॥ १ ॥
सर्वशास्त्र शोधन करो विना सुपन नहिवात ।
त्रिविध अवस्था स्वप्न त्रय वेदवचन विख्यात ॥ २ ॥
सर्वेश्वरता स्वप्नमें, स्वप्न सृष्टि संहार ।
स्वप्न स्थिति संसारकी, व्यष्टिसमष्टि विकार ॥ ३ ॥

स्वप्न-जीवताऽध्यासते स्वामिक-संस्तुति शोक ।
 स्वामिक मोहाऽऽवेश वश, शक्त न वस्तुविलोक ४
 स्वामिक वर्णाश्रम सर्वे, जात गोत कुल कर्म ।
 विविध विपाक विचित्रगति, सकस स्वप्नकर भर्म ५
 बद्धमुक्तता स्वप्नमें, स्वामिक गुरु शिष्यादि ।
 शिक्षक शिक्षा स्वप्नगत, स्वप्न वादि प्रतिवादि ॥६॥
 स्वप्न शास्त्र-संवाद सब, स्वामिक वेद-विधान ।
 अबुध विबुधता स्वप्नमें, जागे सर्व समान ॥ ७ ॥
 द्वैताद्वैत न वस्तुगत, खाली खेंचातान ।
 सकल व्यवस्था स्वप्नमें, जागे मौन मकान ॥ ८ ॥
 नित्यानंद प्रज्ञानघन, देव सनातन शुद्ध ।
 जामें स्वप्नारोप यह, सोमें परम प्रबुद्ध ॥ ९ ॥
 अभारूप संसारका, भासन्निधि विन भान ।
 क्वापि कदापि न संभवे, सोहमेव चिद्भान ॥१०॥
 सत्ता सिद्धि न भान विन, नहि चिद विनु जडभान
 चित्संवंध न भ्रांति विन, सोहं अद्वयज्ञान ॥ ११ ॥

॥ श्लोकः ॥

ब्रह्माज्ञानादीशजीवादिभावा-

द्भ्रान्तं जाग्रत्स्वप्नसुषीर्विभर्त्ति ।

स्वात्मज्ञानादज्ञताया निवृत्तौ,

नान्यो जीवो नास्ति चाज्ञातमन्यत् ?

अज्ञातसत्त्वं नेष्टुं चेद्व्यवहारः कथं भवेत् ।

न ह्यदर्शनमात्रेण विषण्णो नाशनिश्चयात् ॥ २ ॥

· आकाशादौ सत्यता तावदेका

प्रत्यक्तत्वे सत्यता काचिदन्या ।

तत्संपर्कात्सत्यता तत्र चान्या-

व्युत्पन्नोऽयं सत्यशब्दस्तु तत्र ॥ ३ ॥

सत्त्वत्रयं वदन्वादी प्रष्टव्योऽत्र मयाऽधुना ।

सत्यं द्वैतमसत्यं वा नासत्ये त्रिविधं कुतः ॥ ४ ॥

स्वप्नवदृष्टिस्तृष्टः सन् सर्व-व्यवहृतिक्षमः ।

प्रपञ्चो नात्र दोषोऽस्ति तस्य परिहृतत्वतः ॥ ५ ॥

दृष्टिकालीनसृष्टिस्तु दृष्टिसृष्टिरिति स्मृता ।
 दृष्टिरेव भवेत्सृष्टिर्दृष्टिसृष्टिर्मताऽधिका ॥ ६ ॥
 द्वैतभेदे प्रतिज्ञानं प्रत्यप्रज्ञा कथं वद ।
 दशानां युगपत्सर्प-भ्रमे यद्वत्तथैव सा ॥ ७ ॥
 प्रतीतिमात्रं सत्त्वं चेत्सत्त्वं प्रातीतिकं मतम् ।
 अविरोधान्ममापीष्टं तद्भेदे वद का प्रमा ॥ ८ ॥
 प्रत्येतव्यप्रतीत्योश्च भेदः प्रामाणिकः कुतः ।
 प्रतीतिमात्रमेवैतज्जाति विश्वं जगच्चरम् ॥ ९ ॥
 ज्ञानज्ञेयप्रभेदेन यथा स्वप्नं प्रतीयते ।
 विज्ञानमात्रमेवैतत्तथा जाग्रच्चराचरम् ॥ १० ॥
 तन्तोर्भेदे पटो यद्वच्छून्य एव स्वरूपतः ।
 आत्मनोऽपि तथैवेदं भानमात्रं चराचरम् ॥ ११ ॥
 रज्जुर्यथा भ्रान्तदृष्ट्या सर्परूपा प्रतीयते ।
 आत्मा तथा मूढबुद्ध्या जगद्रूपः प्रकाशते ॥ १२ ॥
 आत्मन्येव जगत्सर्वं दृष्टिमात्रं सतत्त्वकम् ।
 उद्भूय स्थितिमास्थाय विनश्यति मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥

अविद्यायोनयो भावा सर्वेऽमी बुद्बुदा इव ।
 क्षणमुद्भूय गच्छन्ति ज्ञानैकजलधौ लयम् ॥ १४ ॥
 सर्वं मायेति यज्ज्ञानमज्ञानं परिकीर्तितम् ।
 सर्वं शिव इति ज्ञानं ज्ञानं ज्ञानविदो विदुः ॥ १५ ॥

घटपटशकटाऽवभासजाल-
 मसदिति विदितं भवेदविद्या ।

घटपटशकटाऽवभासजालं ।

सदिति सुविदितं भवेद्धि विद्या ॥ १६ ॥

गगनपवनतेजोवारिमह्यो विवर्त्ता
 भगवत इति सिद्धं सर्ववेदांतजाले ॥
 न हि तृणमपि विष्णोर्भिन्नसत्तां लभेत
 विधिशतमपि तद्वन्नैव विष्णोर्विभिन्नम् ॥ १७ ॥

अधिष्ठानात्मसत्तासंध्यस्तसत्ता जुदी नहीं ।
 शुक्तिकारज्जुसत्तासं सर्परूपा जुदा कहीं ॥ १८ ॥
 अव्यावृत्ताऽननुगतं वस्तु ब्रह्मेति भण्यते ।
 ब्रह्मार्थो दुर्लभोपि स्याद्द्वितीये सति वस्तुनि ॥ १९ ॥

सिद्धांतशिखरारूढः पूर्वपक्षान्निरीक्षय ।

उत्तरं तत्र मादेहि सिद्धांतच्यवनं यतः ॥ २० ॥

शिव एवास्ति नैवान्यदिति यो निश्चयः स्थिरः ।

स एव शास्त्रसिद्धांतः पूर्वपक्षास्तथेतरे ॥ २१ ॥

दोहा ।

द्वैतसिद्धि अज्ञानसें, न वा ज्ञानसें होत ।

निजसुत-मौन निहारके, द्वैतीमाता रीत ॥ २२ ॥

पद १०९ (राग लावणी)

नहि सत्य है तुझविना किंचित, मानले श्रुति
मानले । पाछे करो जो चहो पहिले, आपकों
पहिचानले ॥ नहि० टेक ॥ प्रतिभाससत्ता प्रा-
तिभासिक, शुक्तिरजत विजानियें । व्यवहार
है सव जगत, मायाकी निपुण पहिचानियें ॥
नहि० ॥ १ ॥ परमार्थ सत्ता आपसत् अद्वैतकीहीं
है सही । सत्ता युगल हो आपसें हीं, सिद्ध
श्रुतिबुध भी कही ॥ नहि० ॥ २ ॥ कर कल्पना

अपनी अविद्या, जगत्का कल्पन करे । विन
 ज्ञानके नहि नशे यह तव, सत्त्वके हीं अनुसरे॥
 नहि० ॥३॥ व्यवहारवेलामांहि सत् हो के सकल-
 कों भासता । इस हेतुसें बुध व्यावहारिक, कहें
 ज्ञान हि भासता ॥ नहि० ॥ ४ ॥ तवमांहि
 तिसहि उपाधिसें यह, निजअविद्या हीं रचे ।
 नभनीलतादिक प्रातिभासिक, ज्ञानसम काल
 हि वचे ॥ नहि० ॥ ५ ॥ है हेतुजन्य उपाधिसें
 हीं, भेद इनका बुध कहें । केचित् विशुद्धसुको-
 टिके, व्यवहारसत्ता नहि सहें ॥ नहि०
 ॥ ६ ॥ नहि सर्पजगका भेद कलु भी, दृष्टि
 सृष्टि उत्तम कही । साजात्यसें हो प्रत्यभि-
 ज्ञा, ठीक हीं है मत यही ॥ नहि० ॥ ७ ॥ ईश्व-
 रदृष्टिमें जगत्के हिं, अदृष्ट फलतक रहतहैं । ते

१ विवरणाचार्यादिकोंने तीन सत्ता कथन करी है । परंतु सो केवल प्रात
 पुराणके संतोष करावनेके लिये हीं है साभिप्रायसें नहीं.

रचें दृष्टिहिँकालमें, सम हीं नियम बुध कहत हैं ॥
 नहि० ॥ ८ ॥ अव समझले तुजविना सत्को वस्तु
 हो सो देखले । क्युं प्रीतकरता झूठसैं, अपनी
 महत्ता पेखले ॥ नहि० ॥ ९ ॥ गुरु ज्ञानअमृत
 देत पीत न, जवतलक निजरूपको । कैसें
 तजे वह मान मिथ्या, तापके हीं कूपको ॥
 नहि० ॥ १० ॥

॥ पद ११० ॥

बिन ज्ञानके साधक कवन, जगका तनिक
 पहिचानले । निजज्ञानके पहले न पाछे रहतहे
 सच मानले ॥ बिन० ॥ टेक ॥ संवंध संवंधी
 सकल हैं, प्रातिभासिक हीं सही । इस द्विविध
 सत्तामें कवन, अव बात बाकी है रही ॥ बिन०
 ॥ १ ॥ जव देखतेहैं निपुणतासैं, ज्ञान भी साधक
 नहीं । यदि ज्ञानमात्र हि हेतु है नहि, अति-
 प्रसक्ति छिपी कहीं ॥ बिन० ॥ २ ॥ घटज्ञान

साधक घटहिंका, यदि परस्पराश्रय होतहे । जो
 समझताहे सत्य जगकों, मूढ व्यर्थहिं रोतहे ॥
 ॥ विन० ॥ ३ ॥ अजलोकलों संसार लखले,
 सिद्ध होत न मानसैं । जे प्रीत करते झूठसैं
 दुखहीं मिले अभिमानसैं ॥ विन० ॥ ४ ॥ अव
 तज मृषा अभिमानकों, अभिमान होवे द्वैतमें ।
 लख द्वैत रहताहे कहां, तव रूप निज अद्वैतमें
 ॥ ५ ॥ जगसत्त्वसैं अभिमान हो, अभिमानसैं
 तृष्णा जगे । तृष्णाहिं सब दुखमूर, मारं निहार
 सुख सगरे भर्गे ॥ विन० ॥ ६ ॥ मुनि ज्ञानअमृत
 सिंधु ताहिं न, चाह अंधे कूपकी । वे आप ईश्वर-
 रूप तृप्ति निरंकुशा निजरूपकी ॥ विन० ॥ ७ ॥

॥ श्लोकः ॥

प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयः प्रमितिस्तथा ।
 यत्सांनिध्यात्प्रसिद्ध्यति तत्सिद्धौ किमपेक्ष्यते ॥१॥

प्रमात्रादित्रयं यस्मात्संविन्मात्रवपुर्भृतः ।
 भाति पूर्वमभातं सत्तद्भाने किमपेक्ष्यते ॥ २ ॥
 अहंकारः प्रमाता स्याद्धीवृत्तिर्मानमुच्यते ।
 घटादिकं प्रमेयं स्याच्चिन्नासा भाति तत्रयम् ॥ ३ ॥
 परोक्षमपि देहादि यस्य भासांऽपरोक्ष्यवत् ।
 विभात्यात्मेव तस्य स्यादापरोक्ष्यमहेतुकम् ॥ ४ ॥
 अज्ञानमपि निःशेषप्रमेयव्यवधानकृत् ।
 येनाव्यवहितं भाति तत्केन व्यवधीयते ॥ ५ ॥
 यत्साक्षादपरोक्षं तद्ब्रह्मेति ब्रह्मणः श्रुतौ ।
 मुख्यापरोक्ष्यमुदितं पारोक्ष्यं शङ्क्यते कथम् ॥ ६ ॥
 अहमालंबनसिद्धं कस्य परोक्षं भवेदिदं ब्रह्म ।
 तदपि विचारविहीनैरपरोक्षयितुं न शक्यते मुग्धैः
 मानं प्रबोधयंतं बोधं मानेन ये बुभुत्सन्ते ।
 एधोभिरवे दहनं दग्धुं वाञ्छन्ति ते महात्मानः ८
 मानादिसाधकात्मानं मातुमिच्छसि मानतः ।
 अन्योऽन्याश्रयतापत्तिर्दुर्निवारा स्वयंभुवा ॥ ९ ॥

यावन्ति सन्ति मानानि व्यवहारप्रवृत्तये ।
 तेषां मोहापसरणाद्व्यापारोऽन्यो न विद्यते ॥१०॥
 अद्वयानंदरूपात्मातत्तमोहंति शास्त्रधीः ।
 बोध्यबोधकसंबंधो द्वैताभावेन तद्वति ॥ ११ ॥
 सत्यत्वं बाधराहित्यं जगद्बाधैकसाक्षिणः ।
 बाधः किंसाक्षिको ब्रूहि न त्वसाक्षिक इष्यते १२
 स्वरूपमेव मे सत्त्वं न तु धर्मो न भस्त्ववत् ।
 मदन्यस्य सतोऽभावान्नहि सा जातिरिष्यते ॥१३॥
 स्वरूपमेव मे ज्ञानं न गुणः स गुणो यदि ।
 अनात्मत्वमसत्त्वं वा ज्ञेयाज्ञेयत्वयोः पतेत् ॥ १४ ॥
 वृत्तेः साक्षितया वृत्तिप्रागभावस्य च स्थितः ।
 बुभुत्सायां तथाऽज्ञोत्सीत्याभासाज्ञानवस्तुनः ॥१५॥
 असत्यालंबनत्वेन सत्यः सर्वजडस्य तु ।
 साधकत्वेन चिद्रूपः सदाप्रेमास्पदत्वतः ॥ १६ ॥
 आनंदरूपः सर्वार्थसाधकत्वेन हेतुना ।
 सर्वसंबद्धवत्त्वेन संपूर्णः शिवसंज्ञितः ॥ १७ ॥

॥ पद १११ ॥

अपना स्वरूप अखंड चिद्धन, जान मान मिला-
 यके । है गुहा गूढ अगूढभी लख, युक्ति गुरुगम
 पायके॥ अपना० ॥ टेक ॥ अपरोक्ष चेतनरूप निज-
 की सिद्धिकी शंका नहीं । होवै अवरसें सिद्धिशंका
 अन्यजो होवैकहीं । अ० ॥१॥ है सर्वको परकाश-
 कारण, तास भासकको बने । रविआदि ज्योति
 समस्त चेतन, भानसें तमकों हने ॥ अ० ॥ २ ॥
 पदमानं साधक आतमाकों, मान कैसें भासहीं ।
 श्रुतिमानभी अज्ञानहा, नहि वस्तुकों परकाशहीं ॥
 अ० ॥ ३ ॥ खंडेन न साक्षी अवधि विन हो,

१ जइचेतन दोई पदार्थ हैं तामें जइकीसिद्धि चेतनाधीनहै सोतो चेतनकों सिद्ध
 करसके नहीं । औ चेतनतो आपहीं है सो आपआपकों प्रकाशेतो कर्तृकर्मतादोषकी
 प्राप्ति । तैसे पदप्रमाणोंका साधकभी चिदात्माहींहै तिनसें चिदात्माकी सिद्धिमानेतो
 अन्योऽन्याधयदोषापत्ति और उपनिषद्प्रसङ्गप्रमाणजन्य प्रमाश्रुतिभी आत्माके
 अद्वयानंदादिरूपविशेषाज्ञानके आवरक अज्ञानका नाशक है प्रकाशक नहीं ।

२ आत्माका नाश किया बाध साक्षी तथा अवधिकेविनातो होवेनहीं सो
 सर्वभावाभाय रूप पदार्थनद्या साक्षी तथा अवधिरूप तौ एक आत्माहीहै ताका
 खंडन कैसें घने औखंडन कर्ताका अपना स्वरूप ॥ तो आत्मा है ।

सिद्धनिश्चय जानले ॥ साक्षीअवधि जो सो सहज,
 निजआतमा पहिचानले ॥ अ० ॥ ४ ॥ जो अ-
 न्यदीखे सो न सत, हठ छांड मम वच मानले ॥
 यदि हठ करेगा सुख न होगा, भस्महीकों छा-
 नले ॥ अ० ॥ ५ ॥ होगा असत्य न अचलभाव
 जब, छूट जावेगी तृप्ता ॥ फिर अचल निज आनंद
 होगा, दिखेगा नहि दुखमृत्पा ॥ अ० ॥ ६ ॥
 कर ज्ञानअमृत पान गुरुमुख, सर्व दुख मिटजात
 है ॥ करिये अनंत उपाय गुरुविन, होत नहि कुश-
 लातहै ॥ अ० ॥ ७ ॥

॥ श्लोकः ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति सर्वे वेदा यत्र चैकीभवंति
 इत्यादिश्रुतयः प्राहुः सूत्रं तच्च समन्वयात् ॥ १ ॥
 त्रयीसांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति ।
 प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।

रुचीनां वैचित्र्याद्भुजुकुटिलनानापथजुषां ।
 नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ २ ॥
 साक्षादायांति वेगेन वा परंपरयापि च ।
 समुद्रं सरितानाथं सर्वातिशयवर्जितम् ॥ ३ ॥
 यत्परो यो भवेच्छब्दस्तस्यार्थस्तु स एव हि ।
 इति न्यायेन वेदार्थो ब्रह्माद्वैतं न चापरः ॥ ४ ॥

शुद्धिद्वारा कर्मकाण्डस्थवाक्यं
 चित्तैकाग्र्यद्वारतोऽध्यानवाक्यम् ।
 साक्षादेतत्तत्त्वमस्यादिवाक्यं
 नित्यानन्दे स्वप्रकाशे प्रयाति ॥ ५ ॥

उपक्रमादिभिर्लिङ्गैस्तात्पर्यमवसीयते ।
 उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् ।
 अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥ ६ ॥
 प्रत्यक्षाद्यनवगतं श्रुत्या प्रतिपादनीयमद्वैतम् ।
 द्वैतं न प्रतिपाद्यं तस्य स्वयमेव लोकसिद्धत्वात् ७

अद्वैतं सुखरूपं दुःसहदुःखं सदा भवेद्वैतम् ॥
 यत्र प्रयोजनं स्यात्प्रतिपादयति श्रुतिस्तदेवाऽसौ
 अज्ञातज्ञापकं मानं श्रुतिस्तु मानमस्तकम् ।
 अज्ञातमद्वयं ब्रह्म तत्रैव श्रुतिमानता ॥ ९ ॥

पद ११२ (रागधनाश्री)

संतो वेद^१अखंड लखाई । एक एव अद्वय
 इम गाई ॥ संतो० ॥ टेक ॥ जीवईश जग ब्रह्म
 ध्रुवंति, भोक्ताभोग्य सुनाई । मूर्तामूर्त दिखाय
 निषेधत, नेति नेति समुजाई ॥ संतो० ॥ १ ॥
 वेदसिद्ध यदि भेदहि होवे, वेदन कवन वडाई ।
 भेद प्रसिद्ध सकल जीवनमें, जहि तहि द्वैत

१ सजातीय विजातीयस्वगत भेदरहितत्वं अखडत्वं ।

२ वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादिभिः । वृक्षातरात्सजातीयो विजातीयः
 शिलादितः ॥ तथा सद्रस्तुनो भेदनयं प्राप्तं निवार्यते । ऐक्यावधारणद्वैतप्रतिषेध-
 त्रिभिः क्रमात् ॥ २ ॥

३ भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च भत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् । जीवेशानी
 सृज्यमानं जगच्च सर्वं ब्रह्मेत्याह वेदान्त-वाणी ॥ १ ॥

दिखाई ॥ संतो० ॥ २ ॥ भेद विना व्यवहार
 न होवे, यद्यपि है भ्रमताई । में तूं यह वहगोप्प
 कहां है, क्युं हो श्रुति सफलाई ॥ संतो० ॥ ३ ॥
 सिद्धजनाई प्रमाण न होवे अनुवादकता आई ।
 दिखलावे अज्ञात मानसो, मानशीर्ष श्रुतिमाई
 संतो० ॥ ४ ॥ ईश सिद्धि अनुमाननसें भी,
 ध्यान धरन मुनि जाई । कर्मकांड कहि कर्म स-
 फल किल, चरितार्थता पाई ॥ संतो० ॥ ५ ॥
 रहा वेदका सार कर्मका, कहंते शेष बनाई ।
 मायावश जे दीन विषयके, जिनके मन मल छा-
 ई ॥ संतो० ॥ ६ ॥ भिन्न प्रकरण न देखे तिननें,
 दोषकुदृष्टि उठाई ॥ विन अद्वैततत्त्वके माने, होत
 न श्रुतिमनभाई ॥ संतो० ॥ ७ ॥ निंदे भेद
 हि श्रुति जग सगरो, सुख नाशक दुखदाई । आ-
 गम अद्वयज्ञान प्रशंसत, लखिये पक्ष चिहाई ॥ सं० ८

४ वेद यचन सारे कर्मपरहैं उपनिषद् भाग साक्षा शेष (उपपारक) है ऐसे
 पूर्ण मांसासक मानते हैं, परंतु वेधुति सात्पर्यको जानतेही नहि. है.

॥ श्लोकः ॥

विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यंतिकं गते ।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसंतं कः करिष्यति ॥१॥

पद ११३ (राग धनाश्री)

संतो भेद तजत सुख पाई, विन त्याग न
अन्य उपाई ॥ संतो० ॥ टेक ॥ निजअज्ञानप्रभव
भ्रम-सगरो, तत्त्वबोध परलाई । भयका कारण
भेदभरम यह, लोकवेद प्रकटाई ॥ संतो०॥ १ ॥
भेद तजे विन भय न पलावे, निगमागम समु-
झाई । जहिँ अभेद तहिँ सुखहीं छाया, भेद
समूल विलाई ॥ संतो० ॥ २ ॥ सदा प्रसन्न
रूप निज माते, चाह सहेतु उठाई । भए अक-
ल्पित तत्त्व एकरस, कल्पित-ताप मिटाई ॥
संतो० ॥ ३ ॥ सुखके सुख चेतनके चेतन, देव
देवता छाई । चढा नित्य निज अमल अलौ-
किक, सबहीं विश्व भुलाई ॥ संतो० ॥ ४ ॥

फिरें मस्त अलमस्त दिवानें, रोक टोक नहि
 राई । विधिनिषेधका झगरा चूका, श्रुतिप्रशंस
 झरलाई ॥ संतो० ॥ ५ ॥ स्वस्थ भए सब अमर
 अमरपति, समुझत. स्वात्मताई । श्रद्धा अनुगुण
 देत सबहिँ फल, भई प्रबल-प्रभुताई ॥ संतो०
 ॥ ६ ॥ मायाप्रेरक मायास्वामी, अचल भए
 विलगाई । लेखें तमाशा आप आपनां, हानि
 लाभ नहि कांई ॥ संतो० ॥ ७ ॥ ग्रहें न त्यागें
 सदा एकरस, महिमा वर्णि न जाई । इंद्रिय
 चिन इंद्रियकी करणी, परम-अलौकिकताई ॥
 संतो० ॥ ८ ॥ जैहिँ जहिँ चरण धरें वह भुवपें,
 परम पुनीत सुहाई । सकल पूज्य ते धन्य धन्य
 ते, वेदहुं देत दुहाई ॥ संतो० ॥ ९ ॥ ब्रह्मनिष्ठ

१ आत्ममये महति पटे विविधजगच्चित्रमात्मना लिखितम् ।

स्वयमेव केवलमसौ पश्यन्प्रमुद प्रयाति परमात्मा ॥ १ ॥

पश्यामि चित्रमिव सर्वमिदं द्वितीयं, तिष्ठामि निष्कलञ्चिदेकवपुष्यनन्ते ।

आत्मानमद्वयमनन्तमुच्चैरूपं, पश्यामि दग्धरसानामिव च प्रपन्नम् ॥ २ ॥

२ यत्र यत्र स्थितो ज्ञानी स देशः सर्वतीर्थभूः ॥

सद्गुरु संगत विन, किनकों मिली भलाई ।
 ज्ञानामृत पीवे, सत्संगी, भंगी भर्म उडाई ॥
 संतो० ॥ १० ॥

पद ११४ (राग काफ़ी)

कर मिथ्या, तन-अभिमाना, निजरूप नहीं
 पहिचाना ॥ कर० ॥ टेक ॥ जा तनकों मानत में
 मेरा, कर्मयोग दोदिनका डेरा । व्है अंतसमय
 शमशाना ॥ निज० ॥ १ ॥ मात पिता बांधव
 सुत नारी, परमारथ-पथके बटपारी । कर
 ममता यों मरजाना ॥ निज० ॥ २ ॥ सतचिद-
 आनंद आप विसारा, दुःख असज्जड निजकर
 धारा । होकर दाना मर्दाना ॥ निज० ॥ ३ ॥
 माया मायाकार्यहि जो है, सब मुरदार भयंकर
 सो है । तव सत्ताकर बलवाना ॥ निज० ॥ ४ ॥
 कर विचार को थे तुम भाई, मिल जड कैसी दशा
 कराई । राजाहि रंक कर माना ॥ निज० ॥ ५ ॥

अब तो ले संतनका शरना, मिले ज्ञानसुख भवजल
तरना । पावो निज पद निर्वाना ॥ निज० ॥६॥

पद ११५ (राग रासडा)

दूजा कर्ता कवन भुवनमें तनु हंकार है रे ।
भवभर्तार है रे ॥ दूजा० ॥ टेक ॥ जो कछु दीखे
सुनिये जनमें, लोकवेदमें सुरअसुरनमें । मान-
मेयमुख यावत् जग-व्यवहार है रे ॥ दूजा०
॥ १ ॥ यानें ब्रह्मा सृष्टि लगाया, श्रीपति पालन-
मांहि झुकाया । हर होकर संसार सकल संहार
है रे ॥ दूजा० ॥ २ ॥ भास्कर होकर जग उजि-
यारे, एष इंद्रु वन पोषणधारे । ईश सूत्र सुर-
असुर सकलसरदार है रे ॥ दूजा० ॥ ३ ॥ रच
विराटकों यहि दिखलावे, लखचोराशी देह
वनावे । घटघटमें में मेरा माननहार है रे ॥
दूजा० ॥ ४ ॥ पंडित मूर्ख यही वन जावे,

अज्ञानी ज्ञानी दर्शावे । वन गुरु शिष्यनि ज्ञाना-
मृत-दातार है रे ॥ दूजा० ॥ ५ ॥

पद ११६ (राग ऊपरका)

जगमें कर्ता हर्ता एष मृपाऽहंकार है रे ।
दोषांगार है रे ॥ जगमें० ॥ टेक ॥ यही काम व्है
कर्म करावे, ध्यानीमें यह ध्यान लगावे । स्वर्ग-
नरकमें सुखदुख भोगनहार है रे ॥ ज० ॥ १ ॥
यानें शिवकों जीव बनाया, वर्णाश्रम झगडा
मचवाया । बहुतनका यह शीपकटावनहार
है रे ॥ ज० ॥ २ ॥ इसनेंहीं मत बहुत चलाय,
निजानंदसें पकड भुलाय । शत्रु मित्र गुणदोष
बनावनहार है रे ॥ ज० ॥ ३ ॥ मात तात सुत
योपित भाई, नाम रूप जहि लों जग आई ।
स्वारथकारण भेद छेद भर्तार है रे ॥ ज० ॥ ४ ॥
मात तातकों मिलन पधारे, अपनो सब व्यापार
विसारे । सुतिनाम निगमांत करत उच्चार है रे

॥ ज० ॥ ५ ॥ तात गोदमें बैठत यहीं, सहवि-
कल्प सुख भोगत तर्हि । तत्र शयनमें सुख अ-
विकल्पाकार है रे ॥ ज० ॥ ६ ॥ मात सहित लय
पावे जवहीं, एकल तात विराजे तवहीं । महा
प्रलय निगमांत पुरान पुकार है रे ॥ ज०
॥ ७ ॥ याको जीवन बंध कहावे, मरण याहिको
मोक्ष मिलावे । ज्ञानांभोधितरंग शमावत वार
है रे ॥ ज० ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

अहंकारस्य तादात्म्यं चिच्छायादेहसाक्षिभिः ।
सहजं कर्मजं द्वाभ्यां भ्रांतिजा साक्षिणा शुजा १
ब्रह्माहमिति बोधेन भ्रांति-जन्यं निवर्तते ।
प्रारब्धभोगपर्यन्तं तादात्म्यद्वय-संस्थितिः ॥ २ ॥
अहंकारविमूढात्मा विवेकविकलो नरः ।
तद्धर्मान् जन्मनाशादीन् स्वात्मन्येवाभिमन्यते ॥ ३ ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ४
 तवैवाहं ममैव त्वं त्वमेवाहमिति त्रिधा ।
 शरणार्थो बुधैः प्रोक्तस्तत्रांत्यो हरिसंमतः ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥

जीवन तनमें श्रानका, मर्यो भ्रमजहंकार । -
 जीवन्मृत सो जानियें, वेद वचन अनुसार ॥१॥
 मरनां लोक पुकारते, अर्थ यथार्थ न जान ।
 ज्ञानमरन ताकों कहै, यत्र न जन्म-निदान ॥२॥
 हेतु जन्मके पांच हैं, मूलतमोऽहंकार ।
 काम कर्म ईश्वर मिली, तत्त्वबोध हंतार ॥ ३ ॥

॥ पद ११७ ॥ (राग हरिगीति छंदमें ला०)

जीता जगतमें एक ज्ञानी, अवर नर मुरदार
 हैं । जिन जानलीना शुद्धसच्चिद, आत्मा अवि-
 कार है ॥ जीता० ॥ टेक ॥ जीता मरे जो संत-
 मतमें, वही जीता है सही । जीता रहा मुरदा
 पडा है, काल वशता लगरही ॥ जीता० ॥ १ ॥

है जीवनाऽहंकारकाहीं, मरणभी कहते इसे ।
 मरते अहं पद अमर पाया, धर्मके कागज खिसे
 ॥ जीता० ॥ २ ॥ असि मारताहै काल शिर में-
 रहनसें गलमें सदा । फिर कहे मैं जीता रहा
 यह, घात झूठी सर्वदा ॥ जीता० ॥ ३ ॥ जब मैं
 गया गल नांरया, तलवारका आत्मा भया ।
 गलके बिना आत्मा बली, तलवारका बल गल
 गया ॥ जीता० ॥ ४ ॥ चिह्नयोमकों हथियार
 काटें, नां कभी हुतभुग्दहे । जलवात छेद न

१ मरण चार प्रकारका है.

१ देह प्राणका वियोगरूप सो (पामरलोकोंका) है ।

२ अपयश सो (विपविजनोंका) है ।

३ प्रमाद सो (मुमुक्षुरूपोंका) है ।

४ मधिभेदन सो (मुक्तपुरुषनका) है.

क्योंकि:—वाक्यवसें तो “ न कोपि जायते जंतुर्न च कोपि विलीयते ॥ यथा
 सतो जनिर्नैवमसतोपि जनिर्न च ” इत्यादि प्रमाणसें न कोई जन्मता है न मरता
 है केवल मोहकाहीं सारा प्रभाव है. सो तत्त्वबोधनें मार दिया तब सन्मात्रवंस्तुहीं
 शेष रहता है. जब मृतहीं नही तब अमृतभी कैसे कहा जावे.

शोष केशर्व संतभी ऐसैं कहें ॥ जीता० ॥ ५ ॥
 अब मानले कलु कहा संतनका निरादर नां
 करे । अम्बर गिरे काल हूँ टरे पर संत कहनां
 नांदरे ॥ जीता० ॥ ६ ॥ निजज्ञान-दाता संत
 सेवत मोह मारा जायगा । मिटजायगा यह
 द्वैत पुनि यह में न मनमें आयगा ॥ जी०॥ ७ ॥
 अवशिष्ट एकाकार शिवमें, ठोरनाऽहंकारको ।
 मुनिज्ञान-अमृतसिंधुमें विपविंदु नां संसारको ॥
 जीता० ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

“आत्मौपम्येन सर्वत्र दयां कुर्वीत मानवः ।
 समत्वमाराधनमच्युतस्य । सर्वाणि मद्भि-
 ष्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता
 ध्रुवाणि । संभावितव्यानि पदे पदे वो

१ “ नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि । न शोषत्योयनिह्रिदच्छेदाधिपमसो मम । सर्वेऽप्ये
 निराम्यमं शस्त्रे किमुत वत्पितै ॥ ” इत्यादि वचनों करके

विविक्तदृग्भिस्तदुत्तार्हणं मे । येन केन
प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः । प्रसादं
जनयेद्विद्वांस्तदेव हरिपूजनम्” ।

॥ पद ११८ ॥

पूजा अनेक प्रकार आगम उक्त अंग अपार
है । हम आत्मपूजा कहत सो सब-सार पर
सुखकार है ॥ पूजा० ॥ टेक ॥ है बुद्धिसें परठौर
पूजाकी, जहां हम रहत हैं । है आप साधन
आपका, विद्वान जन सब कहत हैं ॥ पूजा० ॥ १ ॥
हम पूजते हैं आप अपनेको सदा मस्ती भरे ।
बिन आपके नहि देखनां, यह पूजनां सबसें परे
॥ पूजा० ॥ २ ॥ सबको समझ निजरूप सबपर
दया करनी सार है । अपराध परका मन न
लानां, पूजनां सरदार है ॥ पूजा० ॥ ३ ॥ सबको
सदा सुखदान फसना, अल्प भी कतहूं नहीं ।
यह पूजनां विद्वानका अभिमान नहि करनां

कहीं ॥ पूजा० ॥ ४ ॥ इम करतभी दीखें सदा
 पर हैं अकर्ते हीं सही । मैं के विना नहि बने
 कर्त्ता, युक्ति आगमभी कही ॥ पूजा० ॥ ५ ॥
 होवैं अहंताऽऽभाससैं हीं, कर्म हमरे सर्वदा ।
 अब हम अहंता नां करें, सब कर्म मनके हैं
 सदा ॥ पूजा० ॥ ६ ॥ जिनके अभेदाध्यास है
 ते परबला शिरपर धरें । हमरे भई हरिगुरु कृपा
 अब हम अहंता क्यों करें ॥ पूजा० ॥ ७ ॥
 जिनके अहंता उठगई ते हैं महेश्वर-रूपहीं ।
 विद्वान पूजन-योग्य सबके, योंहि वेद निरूपहीं
 ॥ पूजा० ॥ ८ ॥ रहनां सदा निजरूपमें हीं,
 मस्त अवर न देखनां । है कहां माया जगमृपा
 यह पूजनोत्तम पेखनां ॥ पूजा० ॥ ९ ॥ यह
 ज्ञान अमृत वात दुर्गम, निगममग अति कठन
 है । वह समझता है सार जिसके ब्रह्मकाहीं पठन
 है ॥ पूजा० ॥ १० ॥

॥ श्लोकः ॥ १, २

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंघ्ये वर्त्तते ।
 आज्ञाभंगी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः ॥ १ ॥
 हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्न-
 तनुः । इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भव-
 सागरमुत्तरति ॥ २ ॥

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
 भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ३ ॥
 सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरः
 स एकः । इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते ब्र-
 ज तान्विहाय दूरात् ॥ ४ ॥ अहं हरिः सर्वमिदं जना-
 र्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम् । ईदृजनो यस्य
 न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वंद्वगदा भवंति ॥ ५ ॥

॥ पद ११९ ॥

हरिदासपूरा सोइ जो हरिवचन नहि लोपे कदा

लोपे न वैष्णवभक्त तापें, मार्यतो कोपे तदा ॥
 हरि० टेक ॥ है संत शूरकसाई पूरण मारकेऽहंकार-
 कों । निजकों लखे परमात्मामें डारके संसारकों ॥
 हरि० ॥१॥ वैष्णव वही जो ध्येय व्यापक, विष्णु हीं
 बनजात है । सो ध्यान मानसमेत जो निज-ध्ये-
 यरूप बनात है ॥ हरि० ॥२॥ गति कीटभृंगप्रसिद्ध
 जगमें, ध्यान मानो चाहिकों । है श्रेष्ठ वैष्णव
 सोइ हरि विन, दिखत नहिं कछु जाहिकों ॥ हरि०
 ॥ ३ ॥ मैं तूं सकल जग है हरि, ताविन न होगा है
 भया । देखे अखिलजग आपहीमें, सर्वमें राखे

- १ "समिन्दाऽसति नामवैभवकया श्रीशेषयोर्भेदधी-
 रप्रदायुतिशास्त्रदेशिकगिरा नाश्रयैवाद्ग्रमः ॥
 नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितस्वांगी च धर्मातरैः ।
 साम्यं नाग्नि च शंकरस्य च हरेर्नामापराधादश ॥ १ ॥
 सतां निश नाग्नः परममपराधं वित्तुते ।
 यतः ध्याति यातं कथमु सहते तद्विगत्ताम्" ॥ २ ॥

इत्यादि अपराधरहित होके हरि भजन करनेसे हीं प्रभु प्रसन्न हो कर वांछित
 फल देता है । अन्यथा क्षोभ करता है । दोहा । राम राम सबको कहे, दशरित
 कहे न क्षोभ ॥ एकवार दशरित कहे, कोटियह फल होय ॥ ३ ॥

दया ॥ हरि० ॥ ४ ॥ कलु तिलकमाल न करत वैष्णव,
 जगतका वैष्णव बना । यह राख या नहिं राख
 लखले, विष्णु जो सवमें तना ॥ हरि० ॥ ५ ॥
 वैष्णव कहेंगे संत पुनि हमभी शपथ करके कहें ।
 ते मूढ वंचे आप केवल तिलकसें प्रभुपद चहें ॥
 हरि० ॥ ६ ॥ प्रभुपद मिले है कव सहज विन-शि-
 रकटे मिलता नहीं । दिखता नहीं संसारमें विनु,
 अस्मिता के शिर कहीं ॥ हरि० ॥ ७ ॥ हैं पुण्य-
 भागी विष्णुध्याता, विष्णुभागी अस्मिता । सो
 ज्ञानअमृतरूप ईश्वर मुक्तिकी फैली लता ॥ ह-
 रि० ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।
 सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः ॥ १ ॥

१ “शिव शिवोहमस्मीति वादिनं यं च कंचन । आत्मना सह तादात्म्यभागेन
 कुरते भूशम् ॥ मद्रक्षा यांति मामपि” इत्यादि प्रमाणसें ध्याता ध्येयरूपताको
 पावे है. २ कदाचित्.

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं खानमाचरेत् ।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत् २

॥ पद १२० ॥

भजियें सदा भगवान तन ~~भक्त~~ अभिमान भान
भुलायके । उपकारकों संभार प्यारे, जान मान
मिलायके ॥ भजिये० टेक ॥ जिसनें करी ऐसी
कृपा, बुध किये दुखसें मोदभी । तिस कृष्णका
पद क्या भुलानें, योग्य है क्षण एक भी ॥ भ० ॥ १ ॥
मुखसें जपो श्रीकृष्ण केशव, मांगलो अधिकारिता ॥
अधिकार पावो भजनका, इम जगत निज उ-
पकारिता ॥ भ० ॥ २ ॥ संभार पूरव निज दशा, तुम
जीव वन तनमें बँधे । मिथ्या गुणनकी आगसें,
दिनरात पच पच ही रँधे ॥ भ० ॥ ३ ॥ हरिकी
कृपासें भई अव जो, दशा तांहि निहारिये ।
बंधन कहां गुन हैं कहां, अनुभूत वात विचारिये
॥ भ० ॥ ४ ॥ अशनादि सब व्यवहार भेदाऽऽभाससें

जिम हो सही। तिस भेदसें हरिकों भजो, जानें
 अविद्या हर लही ॥ भ० ॥ ५ ॥ यों दोषभी न
 कृतघ्नताका, रहे निजयश भी बढे। मस्ती अलभ
 निजभजन सुखकी, हो सुलभ दिन दिन चढे
 ॥ भ० ॥ ६ ॥ लीला शरीरहिँ धार लेवैं भंजन-
 सुख भवमुक्तभी। श्रीभाष्यकार-कृपालुनेँ धर,
 चित्तमें इति उक्तभी ॥ भ० ॥ ७ ॥ यह ब्रह्म-
 विद्यामुख सकल सुख, कृष्णसेंहीं मिलत हैं।
 मुनि ज्ञानअमृत कृष्णसागर, सुखहिमें नित
 झुलत हैं ॥ भ० ॥ ८ ॥

पद १२१ (राग हरिगीति छंदमें लावणी)

सो साधु जो आकाश धोकर, क्षीर पीवन
 हारहै। मथतांहिमेंसें घी निकासी, तांहिमें

१ "आत्मारामार्थं मुनयो निर्मया अप्युरुक्मे ।

कुर्वत्यहैतुकीं भक्तिमित्यंभूतगुणो हरिः ॥ १ ॥

२ यज्ज्ञानिनां विषयसारविचारणोत्पन्नैराग्यदान्यजसमाधिमुखानुभूतिः ।

विसारयत्यखिलबाह्यमुखांशहेतुंस्वं श्रीमुकुंदमनिशं हृदि भावयेद्दहम् ॥ २ ॥

मिलजा रहै ॥ सो० ॥ टेक ॥ है जीव वह जीता
 मरेकों, करे आप असंगहीं । कर्त्ता अकर्त्ता नां
 बने, सबकों लखे निज-अङ्गही ॥ सो० ॥ १ ॥
 है गृही वह निजरूप-गृहमें, सर्वदा वासा करे ।
 निज-ब्रह्मविद्या-शक्तिसैं, संसारकी तपतैं हरे ॥
 सो० ॥ २ ॥ वह ब्रह्मचारी जो निगम पढ,
 जानके निजरूपकों । विचरे सदा निजब्रह्ममें,
 मारी असुरके भूषकों ॥ सो० ॥ ३ ॥ सो बनी
 जो निर्जने सहज, निजरूपमें रहता सदा ।
 निजज्ञान-तपसा पूत धूता, वासना संसारदा ॥
 सो० ॥ ४ ॥ है सोइ संन्यासी अविद्या लों, जगद्
 भ्रम नाशके । सबकों लखे निजरूपहीं, निज-
 मांहि सम्यक् आसके ॥ सो० ॥ ५ ॥ परहंस
 मुनि अवधूत ब्राह्मण, आदि नाम अनेकधा ।

हरिभक्त वैष्णव संत योगीं, ज्ञानअमृत एकधा
॥ सो० ॥ ६ ॥

पद १२२ (राग लावणी)

सच्चित्सुख-निजरूप न समुझा, क्या तुम
योग कमाते हो । एकल अकल नभोनिभ पूरन,
वस्तुनि दाग लगाते हो ॥ सो० ॥ टेक ॥ वदत
वेद विद्वान तथापि, झूठ न हठ परिहरते हो ।
है कलु अवर बात निजघरकी, नाक मूंद क्या
करते हो ॥ सो० ॥ १ ॥ प्राण यमनसें मन तनु
होवै, सत्य वचन उच्चरते हो । तुम असंग सच्चि-
त्सुख मनसें, कवन न्यूनता भरते हो ॥ सो०
॥ २ ॥ मूढ़ रहो विक्षिप्त क्षिप्त वा, मन एकाग्र
निरुद्ध लयी । तुम असंगमें क्या यह करि है,
तुम किहि लग आचरत नयी ॥ सो० ॥ ३ ॥
ज्ञान ध्यान सब खेल मनोमय, क्यों अपनेमें
लाते हो । मनके साक्षी बनकर देखो, क्यों

जगरेमें आते हो ॥ स० ॥ ४ ॥ जडचेतनमें दुःख
 न दीखे, कर अभिमति दुख पाते हो । बालक
 अहिकों पकड खिलावे, मेंसेंहीं मुझति हो ॥
 स० ॥ ५ ॥ में विन मुर्दा तरत सरित जल, तन
 अभिमान डुवाता है । में मेरो अभिमान हान
 विन, सुख नहि मुख दिखलाता है ॥ स० ॥ ६ ॥
 मानो निजकूं मुक्त अवर नर, बंधे यों दिल
 धरते हो । रही अविद्या गई कहां है, व्यर्थहि
 आप उछरते हो ॥ स० ॥ ७ ॥ मुनिजन आत्मा
 एक विलोकें, बंध मोक्ष कलना टारी । ज्ञानामृत
 भेदक-तम शिरमें, तत्त्वं असि गुरुवर मारी ॥
 स० ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

देहाक्षादौ विरक्तिर्यमइहनियमः स्वात्मतत्त्वेऽनु-
 रक्तिर्वाह्योदासीन्यमेवासनमसुनियमस्त्वक्षरायों-
 मृपार्थात् ॥ प्रत्याहारः स्वबुद्धेर्विषयविमुखता

धारणास्वात्मनिष्ठा । ध्यानं ब्रह्माहमस्मीति च
परमसुखे स्वात्मसंवित्समाधिः ॥ १ ॥

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालंबतया स्थितिः ।
ध्यानशब्देन विख्याता परमानंददायिनी ॥ २ ॥
यं हि ध्यात्वा च ज्ञात्वा च मन्यन्ते कृतकृत्यताम् ।
पुण्य पुंजा महात्मानः सोऽहं ज्ञानसुखान्मुधिः ॥ ३ ॥

पद १२३ (राग काफ़ी)

जन क्या तें योग कमाया, जडमायामें
मन लाया ॥ जन० ॥ टेक ॥ योग शक्तिसें आव
बढावै, चिरजीवनसैं क्या फल पावै । मिथ्या तनु-
मार्हिं फसाया ॥ जन० ॥ १ ॥ दुःख भवन तनु
मेढ्यो चाहिये, तज तनुतीन परमपद लहिये ।
जगसिद्धिनमें लपटाया ॥ जन० ॥ २ ॥ मिथ्या
जगकी प्रीत न तोड़ी, परमात्मपदमें नहि जोड़ी ।
उलटा अभ्यास बढाया ॥ जन० ॥ ३ ॥ मिथ्या
जग साचोकर मान्यो, गुरुगम अपनो रूप न

जान्यो । किनमें मनध्यान लगाया ॥ जन० ॥
 ॥ ४ ॥ निजपद पूरन व्योमसमाना, जामें यो-
 गवियोग न नाना । कर भेद भाव धवराया ॥
 जन० ॥ ५ ॥ आंख मूंद रोकत मन जवहीं, ना-
 नारंग दिखावत तवहीं । यह पंचतत्त्वकी माया
 ॥ जन० ॥ ६ ॥ कबहुँक अंतरदेख प्रकाशा,
 मानलेत आतम अविनाशा, मनभासक भास्य न
 भाया ॥ जन० ॥ ७ ॥ ज्ञेयध्येय तूं सबको खामी,
 अजर अमर अजअंतर्यामी । तवरूप निगमगिर
 गाया ॥ जन० ॥ ८ ॥ ज्ञानी गुरुका संग न कीना,
 मन मुखता हठमें मन दीना । निजघरकी खबर
 न पाया ॥ जन० ॥ ९ ॥ राजयोगकी रीत न जानी,
 योहीं बनवैठा तूं ध्यानी । ज्ञानामृत दूर रहाया
 ॥ जन० ॥ १० ॥

॥ श्लोकः ॥

दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधा तु मधुरैव ।

सर्वं यस्मान्मधुरं तं मधुरं को न जानाति ॥ १ ॥
 आत्माभिमुखधीवृत्तौ स्वानन्दः प्रतिविंवति ।
 स एव विषयानन्दो ब्रह्मात्मानन्दविन्दवः ॥ २ ॥
 अहमेव सुखं नान्यदन्यच्चेन्नैव तत्सुखम् ।
 अमदर्थं नहि प्रेयो मदर्थं न स्वतः प्रियम् ॥ ३ ॥
 य आत्मा सर्ववस्तूनां यदर्थं सकलं जगत् ।
 आनन्दाविधः स्वतंत्रोऽसावुपादेयः स एवहि ॥ ४ ॥
 प्राज्ञे सुखं समनुभूय समुत्थितः सन् ।
 सर्वप्रकार-विषय-प्रतिपत्ति-शून्ये ॥
 सुप्तोऽहमत्र सुखमित्यनुसंदधानः ।
 सर्वोऽपि जंतुरवगच्छति तस्य सौख्यम् ॥ ५ ॥
 न द्वैतं भासते नापि निद्रा तत्रास्ति यत्सुखम् ।
 स ब्रह्मानन्द इत्याहं माधवः पांडवं प्रति ॥ ६ ॥

पदं १२४ (राग लावणी)

परानन्दघन रूप आपनों, ताहीमें मन
 लाइयेजी । जग मिथ्या दुखरूप असज्जड, तत्र

न प्रीत लगाइयेजी ॥ परा० ॥ टेक ॥ ब्रह्मलो-
 कतक खोजलिया सुख, आपहिमें इकपाइयेजी ।
 अपने विन न कतहुँ किंचित्सुख प्रणकी भुजा,
 उठाइयेजी ॥ प० ॥ १ ॥ सुख विषयनमें दिखे
 भला क्युं मिथ्या बात बनाइयेजी । ज्ञानहीन
 इसविध कहते हैं, तिनपर नहिं पतियाइयेजी ॥
 प० ॥ २ ॥ आत्म अभिमुखसात्विकधियमें, सुख
 प्रतिविंब लखाइयेजी । कामशमन विन सुख न
 कहीं मुनि, त्यागेसंतबुलाइयेजी ॥ प० ॥ ३ ॥
 सत्ताभानसुप्रिय सुखजगमें वर्णाकार विलाइ-
 येजी । अन्यतजे विन सुख न सुपनमें निजघरमें
 आजाइयेजी ॥ प० ॥ ४ ॥ जो आगम-अनुभवसैं
 संमत, सो साची वतराइयेजी । श्रुति सुख इक
 भूमाकोंभाखे, निज अनुभव दिखलाइयेजी ॥
 प० ॥ ५ ॥ तम होते भी जग-अभाव हे, अपनी
 नींद सुनाइयेजी । तहिं सुखतम विन क्या ल-

खतेहो, तनिक हमें समुझाइयेजी ॥ प० ॥ ६ ॥
 तम नहि रहे समाधिकालमें, कहिये पक्ष विहा-
 इयेजी । विन आनंद तहां क्या भासे, निजपदमें
 हुलसाइयेजी ॥ प० ॥ ७ ॥ शपथ खिलाइ पूछें
 हम प्यारे, कर विचार संचियाइयेजी । जहिं देखा
 जगमें तुमनें सुख, निजमुखकहि दर्शाइयेजी ॥
 प० ॥ ८ ॥ क्युं भटकत सत मान वचन अब,
 निजमें निज परचाइयेजी । लखिये श्रुति शिर-
 सार तुमहि हो, अपनां हीं यश गाइयेजी ॥ प०
 ॥ ९ ॥ ज्ञानामृत वर्षे नहि तौलों, जौलों सब
 न भुलाइयेजी । अपनी मस्ती चडे बिना किम,
 तृप्णा आग बुजाइयेजी ॥ प० ॥ १० ॥

॥ श्लोकः ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यात्० । नैव तस्य कृतेनार्थो
 नाकृतेनेह कश्चन० भ० गी० अ० ३-श्लो० १७-१८
 ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।

नैवास्ति किंचित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥

निर्वाण पारावार भूमानंद चिद्विद्वान हैं ।
 रति तृप्ति तोष प्रमोद-आस्पद आपमें गुलतान
 हैं ॥ निर्वाण० टेक ॥ तिनकों न कलु कर्तव्य ऐसैं
 निगमगीता गाजते । अव नां रहा कलु प्राप्य
 इनकों आप सुखमय राजते ॥ नि० ॥ १ ॥ न रहा
 प्रयोजन करणसैं न अकरणसैं कलु भीरया ।
 उद्युक्त प्रचुर प्रबोधसूर समस्त कर्म भ्रम तम
 गया ॥ नि० ॥ २ ॥ अव फल किसीसैं क्या च-
 हैं. फल आपहीं सबके भये । कामादि तस्कर
 भेद सगरे, सहित चित्त शमा गये ॥ नि० ॥ ३ ॥

१ उद्युक्ते प्रचुरप्रबोधतरणी माया निशाऽस्तंगता । आता दृक्मसोर्भिदा मल-
 भुजोऽसद्वादिनकंचराः ॥ सुप्ता यामिव दासवञ्चुतिरियं कामादयोदस्ययो लीना
 इन्द्रियतारका गतद्वचः क्षीणो मनश्चन्द्रमा ॥ १ ॥ यया सूर्यस्तमः सर्वं प्रकाशी-
 कुदते तथा । अनुशता जगत्सर्वं स्वात्ममात्रं करोति हि । दाढ्यं दग्ध्वा यया बहि-
 र्निर्व्यापारोऽवशिष्यते । अनुक्तेकरसत्त्वदधिन्मात्रः परिशिष्यते ॥ ३ ॥ इत्यादि.

प्रारब्धकों तनु अर्पके व्हे अलग आप विराजहीं
 ग्रहते न त्यागत हैं न कलु, अभिमान कतें लाज
 हीं ॥ नि० ॥ ४ ॥ जो होत है व्यवहार तामें, गुण
 हिं वर्ततहैं सदा । इमसमुझ मुनिजन उदासीन
 समान रहते सर्वदा ॥ नि० ॥ ५ ॥ सबज्ञान
 आत्म भान मनविधु क्षीण तासप्रकाशमें । जिम
 काष्ठभेद निवार अग्नि, धूमजिम आकाशमें ॥
 नि० ॥ ६ ॥ नविलोकते नहि अंधहै, न च मौन
 नां उच्चारहैं । कलुभये अद्भुतरूप जिनको,
 पाशके को पारहै ॥ नि० ॥ ७ ॥ विपरीत जगसें
 वात । इनकी, समजते ते आपहीं । वा
 तुल्यबलके ते लहैं, जे मोक्षपदकामी सही ॥
 नि० ॥ ८ ॥ मुनिज्ञानअमृत आप ईश्वर, जांहि
 आगम पूजते । इनकीकृपा विन कब किसीकों,
 विश्वमें सुख सूजते ॥ नि० ॥ ९ ॥

॥ श्लोकः ॥

स्वानुभूतेश्च यो विन्दुः सुखसिन्धुः स एव हिं ।
 संसारः सिन्धुतुल्योपि विन्दुमात्रं जलं न मे ॥१॥
 यथा पूर्वं माया-परिकलितदृष्टिर्निजसुखम् ।
 स्वयंभातं पश्यन्नपि न परिपश्यामि सहजम् ॥
 तथेदानीं ज्ञानांजनविमलचक्षुर्जगदिदम् ।
 चिदाकाशे पश्यन्नपि न परिपश्यामि वितथम् ॥२॥

॥ पद १२६ ॥

अनुभूतिविंदू सौख्यसिन्धु, तत्र मज्जन मान-
 नसें । भवसिन्धु नहि जलविंदु केवल कल्पना
 अज्ञानसें ॥ अनु० ॥ टेक ॥ इनविंदुनें सागर
 पियो जलकल्पना भी नां रही । क्या देखनां
 विद्वानका नहि, खेल लडकोंका कहीं ॥ अनु० ॥१॥
 मुनि वसत हैं उस ठौरमें जहिं, ठौर ठौर न
 पात है । नहि दीखताभी है किसीकों, कोइ नहि
 दर्शात है ॥ अनु० ॥ २ ॥ हे दृष्टि इनकी अगम

अद्भुत, लोकपरतर जानियें । जाकर निहारें
 सौख्यपूरन, विश्वदर्शन हानियें ॥ अनु० ॥ ३ ॥
 सुखदुःखभेदअभेद, बंधनमोक्षकी कलना हरे ।
 भ्रमकामकर्म कलाप हरणी, तरणतारण नावरे
 ॥ अनु० ॥ ४ ॥ यहमिले कब किसकों कहां, वि-
 नसंग संतनके भला । जिम जौहरीके संगविन
 है, कवन प्रस्तरमें खुला ॥ अनु० ॥ ५ ॥ है क-
 ठिन अतिबारीक सो, किमु सहजमें मिलजा-
 वहीं ॥ या दृष्टिके दातारहीं जगमाहिं गुरुपद
 पावहीं ॥ अनु० ॥ ६ ॥ यह दृष्टि जिनके पास नहि,
 गुरुबनत हैं अभिमानसें । परकों विगाड़ें आप
 विगड़ें, कूट वानवखानसें ॥ अनु० ॥ ७ ॥ इसदृष्टिकी
 जो चाह सेवो, पादरज गुरुरायकी । गुरुभीमिलें
 चूमे जवी, गोपालधूली पायकी ॥ अनु० ॥ ८ ॥ इस-
 दृष्टिपर सुखरूपपर, हमहुं निछावर होत हैं । मुनि
 ज्ञानअमृत आपभवके, तापसगरे खोत हैं ॥ अनु० ९

॥ श्लोकः ॥

विमानमालम्ब्य शरीरमेतद्-
 भुनक्त्यशेषान्विषयानुपस्थितान् ।
 परेच्छया बालवदात्मवेत्ता
 सदाचिदानन्द-पदे निमग्नः ॥ १ ॥
 न खिद्यते नो विषयैः प्रमोदते
 न सज्जते नापि विरज्यते च ।
 स्वस्मिन्सदा क्रीडति नन्दति स्वयं
 निरन्तरानन्दरसेन तृप्तः ॥ २ ॥

क्वचिन्मूढो विद्वान् क्वचिदपि महाराजविभवः ।
 क्वचिद्भ्रान्तः सौम्यः क्वचिदजगराचारकलितः ॥
 क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतः काप्यविदित-
 श्रत्येवं प्राज्ञः परमसुखसिंधौ गलितधीः ॥ ३ ॥

पद १२७ (राग लावणी.)

हरियुरुदयाम-चरणरज चूमत, सुखसें काल
 वितातेहम् । है कलु रीत विलक्षण जगसें, आप

आपमें रातेहम् ॥ हरि० ॥ टेक ॥ निजानंदनि-
 र्मग्न मनोभव-शांत कांत लयलातेहम् । बाधित
 बोधप्रभाव विकल्पन, तनुवर्तन दर्शातेहम् ॥
 हरि० ॥ १ ॥ कवहुं उत्तमभोग जगतके, विन-
 मांगे मिलजाते हैं । कवहुं जलभी मिले न मांगे
 सदा ब्रह्मरस मातेहम् ॥ ह० ॥ २ ॥ कवहुं पीनस
 गजरथवाजी, चढ विचरें वनवागनमें । कवहुं
 गाडी दशघोडेकी, हर्षशोक नहि लातेहम् ॥ ह०
 ॥ ३ ॥ कवहुं दुशाला कवहुं नग्नतन, कवहुं सु-
 धारसभोजन है । कवहुं उपवासी रहजाते, परा-
 नंदमयभातेहम् ॥ ह० ॥ ४ ॥ कवहुं शय्या फूल-
 नकीपर, कवहुं भूमिशिलातलपें । सदानंदसें
 शयन करे हैं, दुःख न कलु हर्पाते हम् ॥ ह० ॥
 ॥ ५ ॥ कवहुं राजे बडे पूज्य भी, ईश्वरसम
 हमको पूजें । कतहुं देत धिक्कार कुमानी, सुखं-
 दुखको नहि पातेहम् ॥ ह० ॥ ६ ॥ कवहुं सज्जन

स्तवन करे हैं, दुर्जन करत निरादरहीं । माया-
मय-जगरचना सारी, नहि मदकोष बनातेहम्
॥ ह० ॥ ७ ॥ ज्ञानामृतसागरकी लहरी, निरख
नहीं घबराते हैं । सोऽहं हंसो हंसःसोऽहं, यही-
गीतडे गातेहम् ॥ हरि० ॥ ८ ॥

पद १२८

श्रीहरिसद्गुरु-श्यामकृपावल, समता-सोमल
खातेहम् । मार विपमताऽहंता ममता, अमृत रूप
रहातेहम् ॥ श्री० टेक ॥ ज्ञान-गरुडमुख त्रिशिर
प्रदाकु, अहमाकार युकार मरे । गली गांठ
तदपि प्रतिभासन, कलना कर्म करातेहम् ॥
श्री० ॥ १ ॥ जाग्रतआदि दशात्रय त्यागी,
चौथेपद लयलाते हैं । कवहुं जावें पंचमपदमें
पुनि जागर दर्शाते हम् ॥ श्री० ॥ २ ॥ कवहुं
रोगसें पडे रहे है कवहुं अरोग प्रणवजापी ।

१ तीनगुण रूपतीन मस्तकवाला अङ्काररूप प्रदाकु (सर्प) शानरूप
गरुड के मुखमें आगयाजबजीवनेकी आशा रही नहीं.

है कलु वात अलोकिक ऐसी, उभयमांहि नहि
 आतेहम् ॥ श्री० ॥ ३ ॥ सकल जगत्में
 मानवडाई, अथवा निंदा सन्मुखभी । व्है असं-
 गकों मोद कहां कव, अल्पहुं नहि घवरातेहम्
 श्री० ॥ ४ ॥ वर्त्तमानमें जो हो सो हो माया
 नैव विवेक कहां । पुण्यपाप कहते हैं किसकों,
 अल्प न मद न लजातेहम् ॥ श्री०॥५॥ देनेवाला
 देता हीं है, संप्रदान नहि बनते हैं । श्रद्धाअनु-
 गुण फलकों देवें, वनें कदापि न दातेहम् ॥
 श्री० ॥ ६ ॥ विन रसनाके बोल रहे हैं, पाद
 विना पहुचें घरमें । विना नयन निजरूप निहारें
 विन आनन फल खातेहम् ॥ श्री० ॥ ७ ॥
 हम नहि कलुभी वनें कदापि, ऐसा रूप हमारा
 है । परके मनमें जो कलु आवे, भाव अनुग बन
 जातेहम् ॥ श्री० ॥ ८ ॥ कवन तुमें हमकों
 जोभाखो, आत कहांसें मौनहिसें । कहां जात हो
 पादनहीं हैं, योंहीं लोक हसातेहम् ॥ श्री० ॥ ९ ॥

यदि होता दूसरभी कोई लख हमभी इस
नां करते । ज्ञानामृतसागर करलहरी, आपहिमें
हुलसाते हम् ॥ श्री० ॥ १० ॥

॥ श्लोकः ॥

दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः ।

यस्तिष्ठति स तु ब्रह्मन्ब्रह्म न ब्रह्मवित्स्वयम् ॥१॥

पद १२९

विनासमुल्ल मूढनका झगरा, मुनिजन निज-
पदमांहि चरे । दिख व्यवहार करें कल्पनबहु,
ज्ञानी अक्षयमोदभरे ॥ विना० ॥ टेक० ॥ क्षण-
क्षण बदले वातजिनांकी, इनसें कैसें कवन लरे ।
गुनभीतर है झगरा सगरा, संतसहज गुनतीन-
परे ॥ विना० ॥ १ ॥ संत कहत हैं ब्रह्मरूपकों,
ब्रह्म सदा गुणपार वसे । ज्ञानार्थक गुणकर्म क-
ल्पना, कर्मगुणानुग नाम धरे ॥ विना० ॥ २ ॥
कल्पितधर्म रहें कल्पितमें, आपअकल्पितरूप

सदा । साक्ष्यविना साक्षी नहिं कर्त्ता, कार्यविना
 क्या नाम फरे ॥ विना० ॥ ३ ॥ ईशितव्य विन
 ईश न ताविन, ईशितव्य भी होत नहीं । उपद्रष्टा
 अनुमंता भर्त्ता, भोक्ताभाव निरास नरे ॥ विना०
 ॥ ४ ॥ परभ्रमसें आधार कहावै, अधिष्ठान तैसें
 जानो । कल्पित भी आत्मसत्तासें, सत्यबनी
 व्यवहार करे ॥ विना० ॥ ५ ॥ विना द्वैत अद्वैत
 न होवै, विना वंध नहि मोक्षवने । सकलवात
 आपातमनोहर, कल्पितकलना संततरे ॥ विना०
 ॥ ६ ॥ इनका महिमा है इनहीमें, अवर वहां कव
 पौचशके । उरंग लखे क्या वात रज्जुकी, सत्य होत
 सत्संग अरे ॥ विना० ॥ ७ ॥ बुद्धतत्त्वकी वात अलौ-

१ साक्षी आदिक नाम सारे सापेक्ष होनेसे मिथ्याही हैं परंतु ये आत्म
 वस्तुके लप्तावर्त्तन वास्ते साक्ष्य कारणों कल्पे हैं तहां प्रमाण “चेत्योपरागरूपामे
 साक्षितापि न तात्त्विकी । उपलक्षणमेवेयं निहारणविदंनुचे ” ॥ १ ॥ इत्यादि-
 १ “बद्धोमुक्त इति ध्याय्या गुणतो मे न वस्तुनः । गुणस्य मायामूलत्वात्त मे
 मोक्षो न वन्धनम्” ॥ १ ॥ इत्यादि ३ सर्ग-

किक, नामरूप भक्षणकरके । ज्ञानामृतसागरहिं
शमावत; सरिता सैधव नाम टरे ॥ विना०॥८॥

पद १३० (ब्रह्मात्मवस्तुदर्शनोपायप्रदर्शकपद्यानि)

इन्द्रियाणि पराण्याहु रिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥१॥ देहः
स्थूलो जडोऽयं जनिमरणयुतो नायमात्मा कदा-
चित् । सूक्ष्मो लिंगापराख्यो भ्रमशतवर्लितो वै-
कृतो नायमात्मा ॥ सुप्त्यादौ भावहीनस्तडिदिव
गलितोऽज्ञानमात्रैकहेतुः ॥ साक्षी तस्याप्यभावं
सुखघनवपुषा वेत्ति तद्भिन्नबोधः ॥ २ ॥ विश्वो
वैश्वानरोऽयं व्यभिचरति यतो जागरे विप्रणष्टे ।
सूत्रात्मा तैजसोपि स्वयमिह गलति प्रत्यहं संप्र-
सादे । प्राज्ञेशौ संप्रबोधे सुखघनविषये संलयं
प्राप्नुतश्च । प्रत्यग्ब्रह्माद्यात्मा स्वयमिह निगमा-
च्छिद्यते भ्रांतिशून्यः ॥ ३ ॥ सदेवाहं० ३ न दे-

हकः । चिदेवाहं ० ३ न देहकः ॥ ज्ञानानंदधनश्चा-
ह महंकारप्रकाशकः ॥ ३ ॥

॥ पद १३१ ॥

द्रष्टुर्देहाक्षयुक्तस्य लिंगं दृश्याघटादयः । द्रष्टुर-
क्षविशिष्टस्य लिंगं स्थूलशरीरकम् ॥१॥ द्रष्टुर्मनो-
विशिष्टस्य लिंगमिन्द्रियसंहतिः । द्रष्टुर्बुद्धिविशिष्टस्य
लिंगं स्वांतं बहिर्मुखम् ॥ २ ॥ द्रष्टुरहं विशिष्टस्य
लिंगं धीर्निश्चयात्मिका । दृश्यत्वादहमप्येवं लिंगं
स्याद्रष्टुरात्मनः ॥३॥ दृश्यत्वादिकलिंगानि त्वंपदा-
र्थावबुद्धये । जगज्जन्मादिलिंगानि तत्पदार्थावबु-
द्धये । सत्तामात्रशरीरस्य लिंगमेतच्चराचरम् ॥४॥
कामित्वमालोचकत्वं स्मृतत्वं च प्रवेष्टृता । भोग्या-
कारत्वं पंचैते ब्रह्मसद्भावहेतवः ॥ ५ ॥ न लिंगं
न च दृष्टांता निर्विकल्पावबुद्धये । मनसो वच-
सोऽगम्यं ज्ञानानंदात्मकं पदम् ॥ ६ ॥

पद १३२ (आत्मतत्त्वानुसंधानविष्णुप्रतीक)

दृश्यरूपेण यो भाति सोहं साक्षी सदाशिवः ।
 द्रष्टृदर्शनरूपात्मा सो० ॥१॥ स्थूलरूपेण यो भाति
 सो० । सूक्ष्मरूपेण यो० ॥२॥ व्यक्तस्वरूपेण विवर्त्त-
 मानः सोहं साक्षी सच्चिदानंदरूपः । अव्यक्तरूपेण
 वि० सो० ॥ ३ ॥ धरारूपधरो देवः सोहं साक्षी
 सदाशिवः । वारिरूपध० । वह्निरूपधरो० ॥ ४ ॥
 वायुरूपध० । व्योमरूप० ॥५॥ सर्वरूपधरो देवः
 सो० । सर्वरूपपरो देवः सो० ॥६॥ न जगत्सच्चि-
 दानंदः सो० । नाज्ञानं स० ॥७॥ न ज्ञानं स० ।
 भावाभावविहीनात्मा सोहं० ॥ ८ ॥ अथात
 आदेश इति श्रुत्यासन्योऽवशेषितः । सर्वबाधा-
 वधिः साक्षी चिन्मात्रोहं सदाशिवः ॥ ९ ॥ अखं-
 डैकरसालोका अखंडैकरसं मनः । अखंडैकरसं
 विश्वमखंडैकरसोऽस्म्यहम् ॥ १० ॥ अखंडसच्चि-
 दानंदो निर्विकल्पो निरंजनः । मनसो वचसो दूरे

सोहं ज्ञानसुखानुभूः ॥ ११ ॥ पौनरुक्त्यं न दो-
षोऽत्र शब्देनार्थेन वा भवेत् । विनाऽभ्यासं हि को
विद्वान् गहनार्थं प्रपद्यते ॥ १२ ॥

पद १३३.

शैलूपो वेपसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान् ।
तथाऽवस्थात्रयेऽप्येकः सोहं साक्षी सदाशिवः ॥१॥
देहादिव्यतिरिक्तत्वं स्वप्नप्रभं त्वंसंगता ।
स्वप्नप्रसंगतो यस्य सोहं साक्षी सदाशिवः ॥२॥
अद्वैतत्वं दृष्ट्यलोपोऽसंगचित्सुखरूपता ।
सुप्तौ विभासते यस्य सोहं साक्षी सदाशिवः ॥३॥
सुप्तौ यथा निर्विकारस्तथाऽवस्थाद्वयेऽपि च ।
द्वयोर्मात्रादियोगेन न विकारी भवाम्यहम् ।
सर्वदैकस्वरूपोहं ज्ञानाकारः स्वयंप्रभः ॥ ४ ॥

॥ पद १३४ ॥ (पूरणब्रह्मविलासमां एराग)

मालिकर्णे मल्याविना, जीवपणूं नव जाय ।
जीवपणूं टाल्याविना, भवमां भटकाय ॥ मा० ॥

टेक ॥ मालिक सहुनो आतमा, सर्वांतर भरपूर ।
 नधुररसालयखांड छे, घृतपयसि प्रचूर ॥ मा० ॥१॥
 मेंदीपानपतंगमां रातुं रंग रहाय । वन्हि पीन पा-
 पाणमां, स्वामि तेम समाय ॥ मा० ॥२॥ श्रीसद्गुरु-
 करुणाविना, देव दूर सदाय । गुरुगम ज्ञान मिला-
 वतां, निजरूप लखाय ॥ मा० ३ ॥ भावधरीनें
 जे भजे, भवंभुंजनु भगवान । संगत साचा
 संतनी, ज्ञानानंदनिदान ॥ मा० ४ ॥

॥ पद १३५.॥ (लावणी)

कवन तुमें हम हैं परदेशी, सारादेश हमारा है ।
 सबके निकट रहें तोभी नहि, हमरा मार्ग उ-
 गारा है ॥ क० टेक ॥ मिलना हमरा कठिनखो-
 जका, मिलनांहीं निस्तारा है । अगम निगम हमकों
 कहते हैं, ज्ञेयध्येय उपचारा है ॥ क० ॥१॥ नाम-
 रूप सगरे हमरे हैं, हमसेतम उजियारा है । नाम-
 रूपके वनत न संगी, भंगीभर्म निवारा है ॥ क० २

चौरोंकेभी चौर हमें हैं, गुणवैरी बनजारा है॥ लोग
 हमें खोजत फिरते हैं, किनें न रूपनिहारा है॥ क० ३
 स्वार्थप्रेष्ट हम हैं भवभक्षक, लक्षकवेदविचारा है ।
 गगन पवन नहि हम वैश्वानर, वारधरासें पारा है ॥
 क० ॥४॥ तनमनअक्ष न असुगन तम हम, अं-
 तर्वारकनारा है, ब्रह्मचार घरवार बनीनहि, यतिसें
 रूपनिआरा है ॥ क० ॥५॥ हम न वियोगी, योगी,
 भोगी, शांति हमारी दारा है । ज्ञानगगनघर-
 वास हमारा, यत्र न वाच प्रचारा है॥ क०॥६॥ ह-
 मरामगदर्शक विरलाजग, लाभनताससुखारा है ।
 ज्ञानानंदयशोदानंदनवन्दनवाटदिखारा है॥ क०७

पद १३६.

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
 मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ १ ॥
 सदा सदानन्दपदे निमग्नं मनो मनोभावमपाक-
 रोति । गतागताऽऽयासमपास्य सद्यः परापरा-

तीतमुपैति तत्त्वम् ॥ २ ॥ ज्ञेयवस्तुपरित्यागे विलयं याति मानसम् । मानसे विलयं याते कैवल्यमवशिष्यते ॥ ३ ॥ दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम् । संपन्नं चेत्तदुत्पन्ना ज्ञाननिर्वाणगा मतिः ॥ ४ ॥

पद १३७ (राग लावणी.)

सदानन्दश्रीकृष्ण भजो, भवभोग मनोभव-
भाव तजो । एकल अकल सकल वपुधारण, का-
रणरूप अरूप अजो ॥ सदा० टेक ॥ सात्त्विकश्र-
द्धा धियमें धार, निवार तमो दुखरूप रजो । श्रद्धा
अनुगुणकृतिफलदाता, ॥ सदा० ॥ १ ॥ नित्य-
निमित्तक जो बनि आवे, करो कर्म फल-
काम तजो । तनकी मनकी जानत जनकी
॥ सदा० ॥ २ ॥ प्रेमनियमसें सज्जन सेवो, दु-
र्जनसंगति दूर तजो । श्रीसद्गुरु निजलक्ष्य
लखावै ॥ सदा० ॥ ३ ॥ कारण-सूक्ष्म-स्थूल

शरीर, समष्टिव्यष्टि-अभिमान तजो । जीव ईश-
 मुखभेदभरम तजि ॥ सदा० ॥ ४ ॥ ज्यों जल-
 पूरित पात्र अनेकनमें रवि एक अनेक नजो ।
 भासक भास्य भयो स्वयमेकल ॥ सदा० ॥ ५ ॥ मन-
 की कलना मात्र निवारो तजन भजन अभिमान
 तजो । ज्ञानामृतसागरनिःस्पंदन ॥ सदा० ॥ ६ ॥

श्लोकः

धर्मो मे चतुरंगिकः सुचरितः पापं प्रणाशं गतम् ।
 कामक्रोधमदादयो विगलिताः कालाः सुखावि-
 ष्कृताः ॥ ज्ञानानंदमहौपधीः सुफलिताः कैव-
 ल्यनाथे सदा । रम्ये मानसपुंडरीकनगरे राजा-
 वतंसे स्थिते ॥ १ ॥

पद १३८ (राग बिहाग.)

शुद्धसत्त्व विस्तरी, सदाशिव वांछा पूरण
 करी ॥ टेक० ॥ करि करुणा हृदयाब्जविराजे,
 मनोमोह संहरी ॥ सदा० ॥ १ ॥ धर्मसुचरित

दुरितसंहारे, मंत्र मिलेशावरी ॥ स० ॥ २ ॥ जा-
 तिनीतिकुलशील सुधारे, मारे सारे अरी ॥ स० ॥ ३ ॥
 पावनता मुख-प्रभा भजनसें, विगरी सवहिं सु-
 धरी ॥ स० ॥ ४ ॥ अतिअज्ञानी भेदीखेदी, हं-
 ता ममंता भरी । स० ॥ ५ ॥ हरनें हियमें धूनि
 लगाई मायाग्रंथीगरी ॥ स० ॥ ६ ॥ रागद्वेषमद-
 लोभस्पर्धा कामक्रोधकी झरी ॥ स० ॥ ७ ॥ व-
 हुदुख पायो इनसें अवतो, हेतु अविद्यामरी ॥ ८ ॥
 घोरअंधेराघेररहाथा-अवमायाभीतरी ॥ स० ॥ ९ ॥
 शमसंतोष सफलतरराजें, तृष्णासंगतलरी ॥ १० ॥
 शिव शंकर उच्चार अखंडित, अन्यवाचपरहरी स०
 ॥ ११ ॥ धन्यभजनहै २ धन्यशिवामावरी ॥ स० ॥ १२ ॥
 गई जीवता ईशकृपानिज ब्रह्मवेलिसुखफरी
 स० ॥ १३ ॥ मन कलनाचिह्नगनविलानी, स-
 ताधीऊखरी ॥ स० ॥ १४ ॥ ज्ञानामृतमयफली-

औषधी, गई तापकीघरी ॥ स० ॥१५॥ सुखसा-
गरमें वाच विलानी, ज्ञानलवनकीडरी ॥ स०॥१६॥

श्लोक.

यदा सत्यरूपस्तदा भीर्न मृत्योर्यदा चित्स्व-
रूपः पराधीनता का । यदाऽसंगता मे भयं कर्मणो
नो यदा नो द्वितीयं भयं मे कुतस्त्यम् ॥ १ ॥

पद १३९ (प्रकीर्णपद्य)

तव लग संसृतिजाल जब लग नहि अनुभूतिनिज ।
माया कर्म न काल बाधित बोध प्रसूतितें ॥१॥
आदिअंत अनुभूतिविन, व्यर्थहिँ करत विवाद ।
मुंच कल्पना मध्यकी, पावहु परम प्रसाद ॥२॥
आतम-अनुभवके उदे, भेद भर्म उपशांत ।
अद्वयबोध-प्रभावतें, नश्यत भीतनितांत ॥ ३ ॥
काल भयानक तव लगें, जब लग तन-अध्यास ।
छूटे तन-अध्यासके, नही कालको त्राश ॥ ४ ॥
कर्म शुभाशुभ तव लगें, जब लग लिंग प्रसंग ।
लिंगभंगके होत हीं, कहां कर्मको संग ॥ ५ ॥

मायाको भय तब लगें, जब लग उर-अज्ञान ।
 मूल अविद्या बाधतें, नहि माया कछु आन ॥६॥
 ईश्वरको भय तब लगें, जबलग भेद प्रतीत ।
 भेद गयो अद्वय अयो, गइ ईश्वरकी भीत ॥७॥
 कहां ईशता जीवता, पूरन चिद्धन भान ।
 छोटीमोटीलहरजल, संत न बनते आन ॥ ८ ॥
 देवनको भय तब लगें, जबलग जगकी आश ।
 आशविनाशी बोधसैं, निर्जरआत्मविभास ॥ ९ ॥
 लोकनको भय तब लगें, जबलग हियमें दोष ।
 लोकविलोके आत्मा, स्वापरउदयनरोप ॥ १० ॥

विद्यते न खलु कश्चिदुपायः

सर्वलोकपरितोषकरो यः ।

सर्वथा स्वहितमाचरणीयं

किं करिष्यति जनो बहुजल्पः ॥ ११ ॥

लोका निन्दन्तु निन्दन्तु किम्मूर्ख कथया मम ।

शतधा स्तौति मां वेद इति विश्रान्तिमागतः ॥१२॥

कोणी वंदा कोणी निंदा माझा स्वहिताचा धंधा ।
 कोणी वंदा० माझे गोविंदा गोविंदा ॥ १३ ॥
 किंकर वेदविधानको, तवलग एषपुमान् ।
 जवलग दृढउरमें वसे, वर्णाश्रमअभिमान ॥१४॥
 भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे विशीर्णे ।
 मायामोहौ क्षयमधिगतौ नष्टसंदेहवृत्तेः ॥
 शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं ।
 निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥१५
 खूबखबरकर खोजते मनवच पावनपार ।
 श्रीहरि सद्गुरु-श्यामपद ज्ञानानन्दागार ॥ १६ ॥
 मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च माभव ।
 भावनामखिलां हित्वा ज्ञप्तिमात्रः सदा भव ॥१७॥
 यदस्ति यद्भाति तदात्मरूपं
 नान्यत्ततो भाति न चान्यदस्ति ॥
 स्वभावसंवित्प्रतिभाति केवला
 ग्राह्यं गृहीतेति मृषा विकल्पः ॥ १८ ॥

॥ श्लोकः ॥

शांतस्य स्वांतमेकांतं तेऽनंते विश्रान्तिमाप्नुयात् ॥
 यथा चंद्रमसः सौर्चिः शरत्काले विहायसि ॥ १ ॥

पद १४० (हंवलहारि गुरुदेवनी एराग)

परमानंद प्रमोदकी, लुपी रहे न छाकजी । शांति
 लखावत सैनमें, वरनीशकत नवाकजी ॥ पर० टेक ॥
 दो दमडीकी भांगको, मादक मन उपजंतजी । पर-
 म रसायन पानतें, क्यों नहि मोद उद्यंतजी ॥ प० १
 जो सुख होत समाधिमें, सो मुख कह्यो न जा-
 तजी । परिचय जीवनमुक्तको, स्वसंवेद्य साक्षा-
 तजी ॥ प० २ ॥ दुर्गमदेश विदेहको, अंवरमग-
 संचारजी । मनवानी पहुंचे नहिं, निगमागम
 परपारजी ॥ प० ३ ॥ अहोवात अद्भुत अहै, सु-
 खसें कही न जातजी । आप समासत आपको,
 वृत्तिविलय हो जातजी ॥ प० ४ ॥ अहो० बोलशके
 मुख कौनजी । जिनकों भई पहिचानसो, ग्रहि रहे
 मुख मौनजी ॥ प० ५ ॥ अहो० शब्दातीत समा-

सजी । यत्र न गोधी जाशके, करनो तत्र निवासजी
 ॥ प० ६ ॥ अहो० आशय परम अगाधजी । अ-
 गम सुगम हम क्या कहैं, बोलत आवै बाधजी
 ॥ प० ७ ॥ अहो० मर्म परम गंभीरजी । आप श-
 मावे आपमें, समुझे सैन सुधीरजी ॥ प० ८ ॥
 अहो० निर्गुन पद निर्वानजी । साम स्वयं परमा-
 गति आगे मौन मकानजी ॥ प० ९ ॥

पद १४१

परमपदविजित्यै नेव सद्वंशभूतिर्मतिरपि न
 वयो वा सद्गुरुः किंत्विहैकः । इति कथयितुमीशः
 संसदः स्तंभमध्याद्गुरु गुरु गुरु शब्दं व्याहरन्नावि-
 रासीत् ॥ १ ॥ नगघटितं चलघटितं जडोपर-
 चितं च तत्कलोपचितम् । मिथ्या सकलजगदिदं
 सत्यं किंतु प्रतिष्ठितं ब्रह्म ॥ २ ॥ ब्रह्मप्रत्ययसं-
 ततिर्जगदतो ब्रह्मैव सत्सर्वतः । पश्याध्यात्मदृ-
 शा प्रशांतमनसा सर्वास्ववस्थास्वपि ॥ रूपादन्य-
 दवेक्षितं किमभितश्चक्षुष्मतां दृश्यते । तद्वद्ब्रह्म-
 विदः सतः किमपरं बुद्धेर्विहारास्पदम् ॥ ३ ॥

पद १४२ (दिंडी)

श्रौतस्मार्ततत्त्ववित्कवीशवाणी ।
अतिअगाधबोधवारिधिप्रमाणी ॥
मथिनिकासियाअमूल्यरत्नसार ।
पद्यमालिकामञ्जारसंदधार ॥ १ ॥

दोहा

पद्यरत्नकरखचितवर, माललालअनमोल ।
संतजोहरीजानहीं, इनको मोलअतोल ॥ २ ॥
सद्गुरुकर परखायके, पूरणप्रेम लगाय ।
धारगरेजिज्ञासुजन, शांतियुवतिगरलाय ॥ ३ ॥

मनोनिधानी निगमो धनश्च
गुरुश्च शिल्पी सुमतिश्च मुद्रा ।
सत्संप्रदायः खलु टंकशाला
क्रीत्वाऽमृतं ब्रह्म निषीय मायेत् ॥ ४ ॥

सद्बोधसौख्यकलितां ललितप्रबंधां ।
गीर्वाणमानवगिरा गुणगुंफितां च ॥
सत्पद्यरत्नखचितां परमार्थमालां ।
शांतिं लभेत्स कुरुते निजकंठगां यः ॥ ५ ॥

अत्र यत्संमतं भाति तद्गुरुणां महात्मनाम् ।
 पद्यप्रबंधरचनासंशुद्धिः पदटिप्पणी ।
 तत्कृपालब्धसद्बुद्धेर्ज्ञानानंदयतेः कृतिः ॥ ६ ॥
 तत्रापि नर-धीदोषादयोग्यं भाति चेत्कचित् ।
 संशोधयंतु सुधियः साधवः सारदर्शिनः ॥ ७ ॥
 गच्छतः स्वलनं कापि भवेद्यदि प्रमादतः ।
 हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः ॥ ८ ॥
 उपाधिपरिहारेण यः सर्वत्र प्रकाशते ।
 उपाध्याहितरूपेण स एवात्मेश्वरो गुरुः ।
 सर्वबुद्धिप्रचारज्ञः सर्वाशापूरकोऽस्तु वः ॥ ९ ॥
 हरेरभिमुखस्येह नैव स्यात्संमुखी कदा ।
 यथा छाया तथा माया नमनाद्याति लीनताम् ॥ १० ॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिश्रीश्यामभगवज्ज्ञानानंदाभ्यां
 संकलित संस्कृतप्राकृतग्रंथरत्नसमेता पद्यरत्नसं-
 ग्रहात्मिका पद्य(पद)रत्नावलिः समाप्ता ॥

श्रीविश्वेश्वरार्पणमस्तु

॥ हरिः ओम् तत्सत् ॥